CERTIFIED CIRCULATION EXCEEDS 15,000 COPIES

जून, १९३०

वर्ष ८,
खण्ड २

संख्या २
पूर्ण संख्या
९२

चाँद

Pt. Moti Lal Nehru :
I welcome the appearance of the Urdu CHAND. It supplies a real want. I hope it will fulfil the expectations raised by the excellence of its Hindi parent. I wish it every success.

Sir Abdul Qadir :
......congratulate you on your resolve to serve Urdu as well as Hindi, and wish you all success in your laudable enterprise.

THE FINE ART PRINTING COTTAGE, CHANDRALOK—ALLAHABAD.

सम्पादक :—श्रीरामरखसिंह सहगल श्रीशुकदेव राय

विषय सूची

चित्र-सूची

* * *

राष्ट्रीय गान

यह पुस्तक पाँचवीं बार छप कर तैयार हुई है, इसी से इसकी लोक-प्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस में सने हुए देश-भक्तिपूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है, इन्हें पढ़ कर आपका दिल फड़क उठेगा। सभी गाने हारमोनियम पर भी गाने क़ाबिल हैं। ये गाने बालक-बालिकाओं को कण्ठस्थ कराने के योग्य भी हैं। ५६ पृष्ठ की पुस्तक का दाम केवल ।) चार आने !! सौ पुस्तकें एक साथ मँगाने से २०) रु०। एक पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जाती। एक पुस्तक मँगाने के लिए ।−) का टिकट भेजना चाहिए।

ग्रह का फेर

[मूल-लेखक—श्री० योगीन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०]

इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नाम ही से प्रकट हो जाती है। यह बङ्गला के प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद है। लड़के-लड़कियों के शादी-विवाह में असावधानी करने से जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका इसमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी इसमें अङ्कित की गई है कि अनाथ हिन्दू-बालिकाएँ किस प्रकार ठुकराई जाती हैं और उन्हें किस प्रकार ईसाई अपने चङ्गुल में फँसाते हैं! पुस्तक पढ़ने से पाठकों को जो आनन्द आता है, वह अकथनीय है। मूल्य आठ आने, स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र!

देवदास

[मूल-लेखक—बाबू शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय]

देवदास को उपन्यास न कह कर, यदि विविध अवस्थाओं के मानवी हृद्गत भावों का जीता-जागता चित्र कहें तो विशेष सार्थक होगा। देवदास पर पार्वती का अगाध प्रेम तथा धनी और निर्धन के कुटिल प्रश्न के कारण पार्वती का देवदास के साथ विवाह न होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक दावा देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़ कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या का धर्ममय जीवन को अपनाते देख चमत्कृत हो जाना पड़ता है। मूल्य २) स्थायी ग्रा० से १॥) मात्र!

विहार

सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वही, या जमुना के तीर॥

—(कविवर) बिहारी

(चित्रकार—श्री० मथुरादास जी गुजराती)

की

लोकप्रियता

'चाँद' के उर्दू और हिन्दी-संस्करण के सम्बन्ध में विगत जनवरी मास के 'चाँद' में पं० मोतीलाल नेहरू, सर अब्दुल क़ादिर, मिस्टर विल्सन, मुन्शी ईश्वर सरन एम० एल० ए०, श्री० सी० वाई० चिन्तामणि तथा (डॉक्टर) सर तेज बहादुर सप्रू आदि अनेक प्रतिष्ठित नेताओं तथा व्यक्तियों की बधाइयाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। गत

मई के अङ्क

में अङ्गरेज़ी के पत्रों में से *Express, Bombay Chronicle, Hindu Herald, Vaitarni, Pioneer* आदि पत्रों के अतिरिक्त उर्दू के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों की राय प्रकाशित की गई थी। अगले पृष्ठों में और भी अनेक सम्मतियाँ दी जा रही हैं। यदि इससे भी 'चाँद' की लोकप्रियता प्रगट न हो

<u>स्वयं ग्राहक बन कर परीक्षा कर लीजिए</u>

सम्पादक :—
मुन्शी कन्हैयालाल जी,
एम० ए०, एल-एल० बी०

वार्षिक चन्दा ८)
छमाही चन्दा ५)

के उर्दू-संस्करण के सम्बन्ध में

लोग क्या कहते हैं ?

मतवाला

यद्यपि हमारा इलाहाबादी सहयोगी 'चाँद' इधर कुछ दिनों से सुधार के कण्टकाकीर्ण पथ पर आँखें मूँद कर दौड़ने के कारण साहित्य-प्रेमियों की आँख की किरकिरी हो रहा है, परन्तु हिन्दी-साहित्य की जो-जो अमूल्य सेवाएँ उसने की हैं उनसे इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रसन्नता की बात है कि गत जनवरी मास से सहयोगी ने अपना एक उर्दू-संस्करण भी छापना आरम्भ किया है। इसकी प्रथम संख्या को देख कर ही हम यह बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के कह सकते हैं कि हिन्दी के समान ही सहयोगी का यह उर्दू-संस्करण भी सर्वाङ्ग सुन्दर है। इण्डियन प्रेस से निकलने वाले 'अदीब' के अकाल काल-कवलित हो जाने के बाद हमारे प्रान्त को उर्दू ज़बान के एक ऐसे ही सुन्दर रिसाले की ज़रूरत थी और इस ज़रूरत को पूरी करने के कारण 'चाँद' के सञ्चालक उर्दू-प्रेमी जनता के धन्यवाद के पात्र हुए हैं, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। हम अपने इस नए सहयोगी का हृदय से स्वागत करते हैं और इसकी उन्नति की कामना करते हैं। वार्षिक मूल्य ८) है और सम्पादक हैं मुं० कन्हैयालाल एम०ए०, एल्-एल्० बी० ऐडवोकेट।

* * *

आर्य

'चाँद' के सञ्चालक श्री० सहगल जी ने इसका एक उर्दू-संस्करण प्रकाशित करके उर्दू सामयिक साहित्य में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। उर्दू-संस्करण हिन्दी 'चाँद' का उलथा नहीं है, प्रत्युत एक नई चीज़ है। जनवरी मास का प्रथमाङ्क हमारे सामने है। १२९ पृष्ठ का सचित्र $\frac{२०\times३०}{८}$ आकार का बड़ा सुन्दर और मनोहर छपा हुआ है। लेख, कविताएँ तथा कहानियाँ सब एक से एक भावपूर्ण हैं।

विश्वास करना चाहिए कि सहगल जी का यह प्रयत्न हिन्दी 'चाँद' द्वारा प्रचालित क्रान्ति की धारा का वेग दुगुना कर देगा और मुस्लिम-समाज में क्रान्ति करने में सुफल होगा। ऐसा बढ़िया और अनूठा अङ्क निकालने पर हम सञ्चालकों और सम्पादक महोदय को बधाई देते हैं। हमारी हार्दिक इच्छा है कि 'चाँद' के सञ्चालकों का यह नया प्रयत्न दिन दुगुना और रात चौगुना फूले-फले।

वार्षिक मूल्य ८) एक अङ्क का मूल्य १) है।

* * *

बाबू गजपतसरन दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट, देहरादून :—

फ़िर्ते-शौक़ से मैंने कुल रिसाले को एक नशिस्त में शुरू से आख़ीर तक पढ़ा। मेरा ही दिल जानता है, जो लुत्फ़ उठाया। रिसाला क्या है, एक बज़्मे अदब है। जिसमें हर मज़ाक़ का सामान मुहय्या है। संजीदा असहाब के लिए कॉङ्ग्रेस और सोशल रिफ़ॉर्म, सिस्टर निवेदिता और फ़ितरत-निग़ार तुलसी का नासहाना कलाम, अज़हद दिलचस्प और ग़ौर-तलब हैं, पं० कृष्ण-प्रसाद साहब कौल ने 'मजज़ूब की बड़' में अपनी क़ुदरती बसीरत और रोशने-ज़मीरी की दाद बदर्जा अत्म दी है। इस मौज़ू पर इससे ज़्यादा जामाए दिलचस्प और मुकम्मिल मज़मून होना मुश्किल है। उनवान के साथ सादा और सलीस मिसरा—"कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई" किस क़दर मौज़ूँ, पुर-फ़िदाक़ और मानी ख़ेज़ है, लाला नानकचन्द 'नाज़' फ़िसानानिगारों के माइयह नाज़ हैं, उनका फ़िसाना 'औरत का आँसू' निहायत बरजस्ता और सबक़-आमोज़ है। जा-बजा क़िस्से के अजज़ा को ज़ेहन बना देने से हज़रत नाज़ ने इबारत-आराई में अजब लुत्फ़ पैदा कर दिया है। जनाब मौलवी इस्लामअहमद साहब का मज़मून 'एक शाम' आलम जज़्बात, मुश्तमिल मुरक़्क़े और अदबीयात का दिल-पज़ीर गुलदस्ता है। सच तो यह है कि कूज़े में दरिया को बन्द किया है। 'लम्बी-दाढ़ी' का ख़्याल दिमाग़ में चक्कर काट ही रहा था कि समन्द-नाज़ को इक और ताज़याना लगा। मिस्टर श्रीवास्तव का मज़मून 'लतख़ोरी लाल' नज़र पड़ा। सुभानअल्लाह!! क्या तबीयत पाई है! मज़मून अज़ सर ता पा कुरत ज़ाफ़रान है। आइन्दा अक़्सात का बेसबरी से इन्तज़ार है कि जनाबा 'श्रीमती जी' का हाल मालूम हो।

नज़्में कुल पाकीज़ा हैं। कलामे अहसन, फ़िलसफ़ा हस्ती और कलामे आरज़ू का पाया निहायत बुलन्द है। 'घण्टा नहीं बजेगा' अपने रङ्ग की बेनज़ीर नज़्म है। महाकवि कालिदास की नज़्म मेघदूत के "हीरो-विक्सन" की फ़िर्ते मुहब्बत का रहजान जानिब दिमाग़ था, जिसकी वजह से कैफ़ियत जुनून पैदा हुई। 'बेसी' ने इश्क़ ने अमल की जानिब रुख़ किया। शर्मा जी ने तर्जुमे को असल से ज़्यादा दिलकुश जामा पहना दिया है। हज़रत 'बासित' की नज़्म 'सन्दल का टीका' हस्ब मामूल जद्दत और नदरत का ख़ज़ाना है। ज़बान और जज़बात दोनों लाजवाब हैं। यह शैर किस ग़ज़ब का है :—

"बहुत अहले मुहब्बत का चिता तक साथ देता है।
कि उनके साथ ख़ुद जल कर अदम की राह लेता है॥"

ज़रा इस मिसरे को मुलाहिज़ा फ़रमाइए :—
"ज़रा-सी चीज़ ऐ ज़ालिम, बलाए आस्माँ निकली।"

'तितली' इस्म बामुसम्मी है। रवानी और अन्दाज़ में तितली की परवाज़ का लुत्फ़ अयाँ है।

तसावीर में 'स्वराज्य का पैग़ाम' देखने से तआल्लुक़ रखती है। सच तो यह है कि मुसव्वर ने दिल निकाल कर रख दिया है। 'अपटूडेट ग्रेजुएट बीबी' और 'ग्रेजुएट शौहर' मुँह बोलती तस्वीरें हैं। परमात्मा 'चाँद' को चश्मे-बद और हवादिस ज़माना से महफ़ूज़ रक्खे।

* * *

मिसेज़ ख़ादिर, जबलपुरी :—

कई दिन के इन्तज़ार के बाद कल उर्दू-'चाँद' मौसूल हुआ, दिली शुक्रिया। 'चाँद' देख कर मुझे जिस क़दर मसर्रत और हज़ हासिल हुआ है, उसका इज़हार ग़ैर मुमकिन है। इस वक़्त हमारी जिन्स के मुतादिद रसाइल शाया हो रहे हैं, लेकिन इन्क़लाब ज़माने और मुल्क की बदज़ौक़ी के हाथों सब के सब कमबरसी आलम में फ़िलमिला रहे हैं। इसमें शक नहीं कि इनमें से बाज़ ऐसे ज़रख़ुशिन्दा सितारे भी हैं, जो अपनी चमक और दमक से इस पुर-आसूब ज़माने में हमारी फ़िलाह और बहबूदी से मुतअलिक़ रहनुमाई कर रहे हैं, लेकिन इस हक़ीक़त से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह हलाल नूजिब माहे कामिल बन कर आसमाने सहाफ़त पर जलवह फ़ुगन होगा, तो उसकी ग़ैर-मामूली आबो-ताब से तमाम सितारे माँद पड़ जायँगे और इस बक़िया नूर की ज़ियाबारियाँ हमारे तीरह-तारीक क़ुलूब को जग-मगा कर छोड़ेंगी।

मायूसी के आलम का मसरक़ा देखने के बाद मुझ पर एक वजदानी कैफ़ियत तारी हो गई है। तस्वीर देखती हूँ और ग़ालिब का यह शैर पढ़-पढ़ कर सिर धुनती हूँ :—

"मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद !
नाउम्मीदी उसकी देखा चाहिए !!"

* * *

मुन्शी नारायण स्वरूप बी० ए०, 'गुमनाम' सिकन्दराबादी फ़रमाते हैं :—

क्या ख़ूब 'चाँद' निकला है हुस्नो-बहार में,
जो रश्क बा मुसम्मा है नक़्शो-निगार में ॥
उस चाँद ने ज़मीन को रौशन अगर किया,
यह 'चाँद' दिलफ़रोज़ है शहरो-दयार में ॥
वज़ो-फ़िशाँ ज़मीं पै और यह क़लूब पर,
जो हर घड़ी चमकते हैं लैलो-निहार में ॥
मज़मून देख-देख के बढ़ता है इश्तयाक़,
पढ़-पढ़ के हाल दिल न रहे इख़्तियार में ॥
इक-इक सतर में इसके भरी हैं लताफ़तें,
है हुस्न दिलफ़रेब ख़त मुश्कबार में ॥
हैरानी है हर कोन से मज़मूँ को फ़ौक़ है,
हरएक दिलफ़रेब के शानो-वक़ार में ॥
सोशल ख़राबियों के मिटाने के वास्ते,
अख़बार यह निकाला है ख़ते बहार में ॥
तदबीर और तरीक़ यह ही पुरख़ुलूस है,
हर नेको-बद जताता है इसके-शआर में ॥
तूफ़ाने ग़म का सीनए सोज़ाँ में जोश है,
अहसास होश रफ़्तः नहीं हाल-ज़ार में ॥
इस क़ौम के नविश्ता को क्या पढ़ सके कोई,
है सर-ब-सर लिखा हुआ ख़ते-ग़ुबार में ॥
क्या जानें मस्त ख़्वाब ज़माने की हालतें,
जो करवटें बदलता है लैलो-बहार में ॥
क्योंकर हो दामने गुले सदचाक पर रफ़ू,
जब उलझे हर जगह वह तब्रदार ख़ार में ॥
सोशल ख़राबियों का यह आला इलाज है,
अख़बार गर मदद करे इस्लाहकार में ॥
'गुमनाम' की दुआ है रिसाला हो बाअसर,
अक्स उसके रङ्ग का पड़े चश्मेनज़ार में ॥
हाज़िर रहे यह क़ौम की ख़िदमत में हर घड़ी,
दौरे ज़बाँ का दौर है जब तक बहार में ॥
ख़ालिक़ दे उनको हौसला बरकत अता करे,
हिम्मत से जो मदद करें इस्लाहकार में ॥
इश्क़े-वतन है जिनके मुख़ालिफ़ हैं वह बुज़ुर्ग,
है फ़ख़ ज़िन्दगी उन्हें ख़ुद इन्तशार में ॥

* * *

बाबू जगजीवन लाल साहब भटनागर, बी० ए०, देहलवी लिखते हैं :—

'चाँद' आया। पानी भरे कटोरे में या मुनअक्सि करने वाले आइने में नहीं, बल्कि मुजस्सिम। मसल मशहूर है 'चाँद' की माँ चाँद में बैठी चरख़ा कात रही है, लेकिन इस 'चाँद' में 'भारत' माँ बैठी चरख़ा कात रही है। लड़कों ने पुकारा—'चाँद-चाँद' दिल में सोचा—या ख़ुदा! यह क्या उलूल जुलूल बक रहे हैं। दिन में चाँद कहाँ? लेकिन फिर ख़्याल आया कि सितारए-चाँद नहीं २८, एडमॉन्स्टन रोड—चन्द्रलोक इलाहाबाद से निकलने वाला, वह चाँद, जो इल्म की रोशनी से हिन्दुस्तान का गोशा-गोशा रोशन कर देगा। हर वक़्त पर चाँद की कमान से निकलने वाले तीर और अब्रू की कमान से निकलने वाले तीर नज़र की एक शिद्दत थी। शैर है:—

"तिरछी नज़रों से न देखो आशिक़े दिलगीर को।
कैसे तीरन्दाज़ हो सीधा तो कर लो तीर को॥"

जैसे गाय-भैंस अपने चारे को पहले खा लेती हैं, लेकिन फिर इतमीनान से बैठ कर जुगाली करती हैं उसी तरह पहले शुरू से आख़ीर तक नज़र दौड़ाई। मज़ामीन और तसावीर का जाएज़ा लेने से दिल बल्लियों उछलने लगा और बे साख़्ता ज़बान से यह शैर निकल गए:—

"हलाल भी है बद्र भी ज़याफ़गन है यह।
ज़मीन हिन्द यह सरताज अन्जुमन है यह॥
सरूरो-नूर से भरपूर 'चाँद' ज़िन्दाबाद।
तपीदा दिल के लिए पुरफ़िज़ा चमन है यह॥"

शायरी-वायरी के नाम तो सुभान अल्लाह हैं। लेकिन ख़ैर, दिल का जोश तुकबन्दी में ही निकल गया। आपको और 'चाँद' को यह रोज़े-सईद मुबारक हो। 'चाँद' अहले इस्लाम में भी तक़दीस की चीज़ है और मुझे उम्मीद है कि अगर इसमें मज़ामीन का बेहतरीन इन्तख़ाब, सुलहकुल पॉलिसी और हर दिल-अज़ीज़ी का पूरा अहतमाम जनाब फ़रमाएँगे, तो यह बहुत मक़बूल होगा। बहरहाल आपकी इस क़दर जाँफ़िशानी अहले-क़लम अहले-अदब और अख़बार-बीन तबक़े से मुबारिकबाद हासिल करने की मुस्तहक़ है। जिन ज़बानों का फ़ेल एक है, वह एक ही चीज़ हैं। हिन्दी और उर्दू का

फ़ेल (Verb) एक है, लिहाज़ा यह दो ज़बानें बजुज़ तर्ज़-तहरीर और संस्कृत और फ़ारसी के कसरत-इस्तेमाल के एक हैं और इनमें जो भी तरक़्क़ी की जायगी, वह मुल्क के लिए मुफ़ीद साबित होगी और राष्ट्र-भाषा या क़ौमी ज़बान—इन दोनों के इत्तसाल से ही मुम्‍किन होगी। परमात्मा से दुआ करता हूँ कि जल्द वह ज़माना आए कि इन दोनों ज़बानों के सङ्गम पर भी बड़ा भारी कुम्भ हो !!

* * *

जनाब इस्लामअहमद साहब 'हावी' क़ुरैशी, रोहतक :—

आज रिसाला 'चाँद' का जनवरी-नम्बर बड़े इन्तज़ार के बाद मौसूल हुआ, निहायत शुक्रिया ! रिसाला 'चाँद' निहायत दिलफ़रेब और दीदए-ज़ेब है और उसके तमाम मज़ामीन दिलचस्प, मुफ़ीद और पुर-अज़-मालूमात हैं। तसावीर भी दिलकुश और नज़रे-नवाज़ हैं। ग़रज़े इस्म बामुसम्मी है। उर्दू में इस शान का और ऐसा ज़ख़ीम पर्चा आज तक शाया न हुआ था। इसलिए मुबालग़ा न होगा, अगर मैं यह कहूँ कि उर्दू ज़बान में 'चाँद' का उर्दू लिटरेचर की तरक़्क़ी का सब से बड़ा क़दम है और हामियाने-उर्दू के लिए मुक़ामे फ़ख़्र व मुसर्रत !! फ़िलहक़ीक़त 'चाँद' ने उर्दू रिसालों का मेयार और भी बुलन्द कर दिया है !!! × × × मेरी दिली दुआ है कि ख़ुदावन्द करीम 'चाँद' को आसमान सहाफ़त पर अपनी पूरी ताबानियों के साथ हमेशा जल्वए गस्तर रक्खे ! आमीन !!

* * *

मैनेजर डिस्ट्रिक्ट गज़ट, बिजनौर :—

आपने इस रिसाले के जारी करने से उर्दू-दाँ पब्लिक पर बड़ा अहसान किया है। इसमें शक नहीं कि यह रिसाला मुल्क के लिए बड़ा मुफ़ीद साबित होगा।

* * *

सैयद रज़ाअहमद साहब जाफ़री, मथुरा :—

पर्चे की हुस्न तरतीब व ज़ाहिरी सूरत बेहद क़ाबिले तारीफ़ है। उर्दू-ज़बान की इस तरह ख़िदमत करके आप एक निहायत अहम क़ौमी ख़िदमत अञ्जाम दे रहे हैं। ख़ुदावन्द आलम आपको इसका नेक अज्र दे !

* * *

मौलाना मेहदीहसन साहब नासिरी, हेड मास्टर गवर्नमेण्ट स्कूल, अलीगढ़ :—

'चाँद' का पहला नम्बर मौसूल हुआ। हुस्न तरतीब क़ाबिल क़दर है। ख़ुदा तरक़्क़ी अता फ़रमाए। आपको मुबारकबाद देता हूँ कि आपने गराँ-क़दर काम किया है।

* * *

हज़रत साक़िब जालन्धरी :—

रिसाला 'चाँद' का पहला नम्बर और फिर वह उर्दू में देख बहुत ज़्यादा ख़ुशी हुई। उम्मेद करते हैं कि उर्दू-'चाँद' भी मुल्क के वास्ते एक मुफ़ीद चीज़ होगा !

* * *

मिर्ज़ा 'यगाना' साहब लखनवी :—

['चाँद' निकलने के पहले]

बड़ी मसर्रत हुई कि आप लोग इलाहाबाद ऐसे मरकज़ी मुक़ाम से एक ऐसा अदबी रिसाला निकालने पर मस्तूर हुए हैं, जो आप हज़रात के अदबी ज़ौक़ का मशाहद आदिल होगा। मुझे क़वी उम्मीद है कि इलाहाबाद की हौसला-अफ़्ज़ा फ़िज़ा और अदब उर्दू के मुन्तख़िब और चुनीदा अहले-क़लम आपका साथ देंगे।

['चाँद' निकलने के बाद]

'चाँद' का पहला नम्बर पहुँचा। लूह पर एक हुस्न पुर आशोब की तस्वीर देख कर अपना एक शेर याद आया :—

"पैदा न हो ज़मीं से नया आस्माँ कोई।
दिल काँपता है आपकी रफ़्तार देख कर॥"

मुझे तो यह देख कर मसर्रत हुई कि इन नफ़्शानफ़्शी के ज़माने में, जबकि हिन्दुस्तानियों में फ़िर्क़ाबन्दियों का बाज़ार गर्म है 'अरबाब-चाँद' ने हिन्दी के साथ-साथ उर्दू-दाँ पब्लिक को भी इस्लाह मुआशरत व तहज़ीब इख़लाक़ का दरस अमल देने के लिए कुशादादिली व आला हौसलगी से काम लेना चाहा है। यक़ीनन् यह आसार उम्मीद अफ़्ज़ा हैं।

* * *

बाबू कैलाशचन्द्र 'अख़गर', हुसेनआलम :—

'चाँद' के उर्दू-एडीशन की इशाअत पर मुबारकबाद अर्ज़ करता हूँ और परमात्मा से दस्त बदुआ हूँ कि इल्म अदब के मुतअल्लिक़ आपकी मसायी जुम्ला कामयाब हो।

* * *

बाबू मनोहरलाल कुलभास्कर, ग्वालियर :—

आपका अज़्म मुबारक है और मुझे यक़ीन है कि आपकी यह उलुलअज़्मी उर्दू अदब के आसमान पर एक नया 'चाँद' पैदा करके शामनेहाद व शमशो-क़मर की आरज़ी रोशनी को माँद कर देगी।

* * *

प० इन्द्रजीत साहब शर्मा, माचेहरा :—

'चाँद' मिला, शुक्रिया अर्ज़ है, आपका नख़्ल-मुराद बावर हुआ। मेरे पास वह अल्फ़ाज़ नहीं कि इसकी तारीफ़ कर सकूँ।

* * *

हकीम सैयद मुहम्मद अहसन साहब, इलाहाबाद :—

माहाना सहीफ़ए कैफ़ 'चाँद' ज़ेर नज़र जनाब मुन्शी कन्हैयालाल साहब, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट, इलाहाबाद जनवरी १९३० से इशाअत पज़ीर हुआ। मैंने उसे बग़ौर पढ़ा। उर्दू में अपने क़िस्म का यह पहला रिसाला है, जो एक तरफ़ रङ्गीन व शुगुफ़्ता तसावीर का वजूद सहीफ़ा को दोबाला कर रहा है, तो दूसरी तरफ़ क़लम की कशिश एक मुस्तक़िल नतीजए दिलफ़रेब पैदा कर रही है। उमीद है कि मज़ामीन का तनूअ रिसाले को हर मज़ाक़ के तबक़े में मक़बूल बनाने में हर तरह से कामयाब होगा।

एन हुआ अञ्जमन व अज़जुम्ला जहाँ आमीनबाद।

* * *

लाला नानकचन्द साहब 'नाज़' सम्पादक दैनिक 'प्रताप' :—

मैं हर वक़्त 'चाँद' की क़लमी ख़िदमत करने के लिए तैयार हूँ। मुझे ख़ुशी है कि हिन्दी का एक उर्दू-एडीशन जारी हुआ है।

* * *

सैयद नियाज़ अहमद साहब रिटायर्ड एक्साइज़ इन्सपेक्टर :—

वाक़ई इस क़िस्म का पर्चा अब तक मेरी नज़र से नहीं गुज़रा था। इसमें दिलचस्प मज़ामीन के अलावा तसावीर एक ख़ास कशिश पैदा करती हैं। दरहक़ीक़त ऐसे पर्चे की इस पुरआशोब ज़माने में ज़रूरत है, जबकि हिन्दू-मुसलमानों के क़लूब नासाफ़ हो चुके थे। मुझे यक़ीन है कि यह रिसाला दोनों क़ौमों के दरमियान इत्तिहाद क़ायम करने में पूरी सई करेगा। ताकि हर काम में हिन्दू-मुस्लिम दोश-बदोश रह कर लायहा-अमल क़ायम कर सकें।

* * *

जनाब सहराई सरवरी साहब साबिक़ एडीटर 'क़ौस क़ज़ह' :—

मुझे यह मालूम करके बेहद मुसरंत हुई कि आपने एक क़ाबिल क़दर रिसाले का इजरा फ़रमाया है।

* * *

जनाब 'शबाब' साहब, सीतापुरी :—

रिसाला बिलाशुबह निहायत ही आला पैमाने पर शाया हुआ है। लिखाई-छपाई, मज़ामीन सभी दीदःज़ेब हैं। तसावीर का तो क्या ही कहना—जीती-जागती मूरतें मालूम होती हैं। ख़ुदा आपके मक़सद दिली में कामयाबी बख़्शे।

ज़ुल्मते-हिन्दोस्ताँ को दूर करने के लिए।
तीरह व तारीक शब पुरनूर करने के लिए॥
ख़ूब इलाहाबाद से निकला ग़ज़ब का 'चाँद' है।
कैसा नूरानी यह दुनियाए-अदब का चाँद है॥
दूर कर देगा यह तारीकीए-आलम के निशाँ।
नूर से मामूर होगा फिर दिले-हिन्दोस्ताँ॥
आस्माँ पर था ही लेकिन यह ज़मीं का चाँद है।
रोशनी माहे-फ़लक की जिनके आगे माँद है॥
देखिए इसके ख़यालात फ़लके रफ़अत का हाल।
इब्तदा ही में यह निकला बन के माहे बा कमाल॥
साफ़ कहती है यह इसकी रोशनीए-पुरज़या।
है अवामुन्नास के ख़ातिर यह चश्मा फ़ैज़ का॥
इत्तिहादे हिन्दू-मुस्लिम को बढ़ाने के लिए।
चश्मए गङ्गो-जमुन बाहम मिलाने के लिए॥

जाँनिसार व ख़िदमत क़ौमी का बेशक है वकील ।
हिम्मत व अफ़राइश जुरायत बेशक है कफ़ील ॥
इसका मक़सद है कि अहले-हिन्द का दिल शाद हो ।
दौलत ईमान व इशरत से हर एक आबाद हो ॥
सदक़े-दिल से यह दुआ ख़ालिक़ से करता है 'शबाब' ।
सफ़हे-दुनिया पै चमके 'चाँद' मिसले आफ़ताब ॥

* * *

बाबू गिरीशचन्द्र, एम० ए०, एल-एल० बी०, मुन्सिफ़, लखनऊ :—

उर्दू 'चाँद' के मज़ामीन पढ़ कर मुझको इस क़दर ख़ुशी हुई और लुत्फ़ आया कि आपको सोशल मैदान में इस नुमायाँ जद्दो-जेहद का मुबारकबाद दिए बग़ैर मुझसे रहा नहीं जाता। आपका 'चाँद' सोशल कमज़ोरियों और नुक़ाइस को पेश नज़र ख़लाइक़ तो करता है; मगर इसकी यह मन्शा हर्गिज़ नहीं है कि किसी क़ौम ख़्वाह शख़्स का मज़ह्का उड़ाए। बल्कि आइनादार ऐयूब को तसहीह की ग़रज़ से आँखों के सामने धर के उनके सुधार के लिए होशियार व ख़बरदार कर दे कि दूसरे अङ्गुश्तनुमा न कर सकें। इसके मज़ामीन एक साथ ही इस्लाहकुश और दिलचस्प हैं। मैं दस्त बदुआ हूँ कि इसकी ख़ूब इशाअत हो और घर-घर में हाथों-हाथ नज़र आए, जिस इज़्ज़तो शर्फ़ का वाक़ई वह मुस्तहक़ है। मैं आपके इस क़ाबिले-क़दर सताइश काम में कामयाबी हासिल करने के लिए बिला दरेग़ मदद करने को तैयार व ख़्वास्तगार हूँ।

* * *

डॉक्टर आज़म 'करीवी' :—

'चाँद' का उर्दू-एडीशन नज़र अफ़रोज़ हुआ। यह पर्चा 'नज़्मो-नसर', 'किताबत व तबायत'—ग़र्ज कि हर लिहाज़ से लाजवाब है। सनफ़ लतीफ़ की आयत में आपकी कोशिश क़ाबिल सताइश है। 'चाँद' का उर्दू-एडीशन निकाल कर आपने उर्दू दुनिया पर अहसान किया है। मैं उम्मीद करता हूँ इसका दूसरा नम्बर पेश्तर से ज़्यादा शानदार निकलेगा। मैं इस पर्चे को देख कर बहुत ख़ुश हुआ। ख़ुदा इसको रोज़ अफ़्ज़ों तरक़्क़ी अता करे। मैं इस रिसाले की इशाअत पर दुदिया मुबारकबाद पेश करता हूँ।

* * *

बाबू रघुपतस्वरूप, एक्साइज़ इन्स्पेक्टर लिखते हैं :—

पहले ही नम्बर की ज़ियाए-नूरफ़ुगन ने आँख को चौंधिया दिया। 'पूत के पाँव पालने में' जान लिए जाते हैं। ज़रा पुरवाँ चढ़े फिर उम्मीद वासिक़ है कि यह माहे दुरख़्शाँ को शर्मिन्दा करेगा। जिस हलाल की यह शान, उसकी बद्र होने पर क्या शौकत होगी—अभी ख़्याल में भी नहीं आ सकता।

जिस जलवए-रानाई से यह 'चाँद' निकला है, उससे अयाँ है कि शोहरत के आसमान पर और उर्दू इल्मो-अदब की ज़मीन पर इसकी चाँदनी हज़ार-हज़ार दिल-फ़रेबी पैदा करेगी। उर्दू-ज़बान में इस आनबान का कोई रिसाला नहीं था। अब यह कमी पूरी हो गई। परमात्मा करे कि कारकुनान की उम्मीद व हौसले पूरे हों और इस उर्दू-'चाँद' की रोशनी लाज़वाल रहे।

* * *

बाबू कैलाशबिहारी लाल साहब एडवोकेट :—

वाक़या है कि आपने ख़ूब 'चाँद' निकाला। मेरा तो यह ख़्याल है कि उर्दू में इस सजधज का कोई दूसरा रिसाला नहीं है। मज़ामीन भी ख़ूब हैं। ख़ुसूसन 'मज-ज़ूब की बड़', 'हिन्दू-लॉ में औरतों के हक़ूक़', 'बघटा नहीं बजेगा', 'जवाहरलाल नेहरू' और कलाम आर्ज़ू। मैं उम्मीद करता हूँ कि आपकी एडीटरी में यह रिसाला उर्दू अदब और हिन्दुस्तानी सुसाइटी की गिराँ बहा ख़िदमात करेगा। मैं दस्त बदुआ हूँ कि रिसाला 'चाँद' हिन्दुस्तान के हर गोशे को रोशन कर दे।

* * *

मौलाना अब्दुलशकूर, इण्टरमीडिएट कॉलेज मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़ :—

'चाँद' का जनवरी-नम्बर पहुँचा। मज़ामीन की तर-तीब क़ाबिल सताइश है। मुझे उम्मीद है कि रिसाला आगे चल कर निहायत कामयाब होगा और जल्द हिन्दुस्तान के सोशल रिफ़ॉर्म का 'आरगन' हो जायगा। इस काम में बड़ी-बड़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। मगर मुझे उम्मीद है कि आप इन दिक़्क़तों का कामयाबी के साथ मुक़ाबला करेंगे। ख़ुदावन्द करीम आपको कामयाबी अता फ़रमाएँ।

* * *

डॉक्टर जानकीप्रसाद साहब :—

'चाँद' बहुत ही उम्दा और दिलचस्प रिसाला निकला। उसकी ज़िन्दगी की दुआ करता हूँ।

* * *

सैयद अबूमुहम्मद साहब 'साक़िब', कानपुरी :—

इलाहाबाद से किसी उर्दू रिसाले का न निकलना हक़ीक़त में उसकी पेशानी पर एक कलङ्क का टीका था। आप दुनिया-ए उर्दू की तरफ़ से मुस्तहक़ मुबारिकबाद हैं कि आपने इस शदीद ज़रूरत का अहसास फ़रमा कर इस कमी को पूरा कर दिया। ख़ुदा करे कि यह आज का दूज आसमाने-अदब पर हमेशा चाँद बन कर ज़ोफ़िशानी करता रहे।

* * *

मौलवी मिर्ज़ा फ़िदाअली ख़ाँ साहब 'ख़ञ्जर', लखनवी :—

आसमान ज़हाफ़त का 'चाँद' तुलू होकर नज़र अफ़रोज़ी का बायस हुआ। ममनून हूँ। मुताला से आपकी ज़ाँफ़िशानी और अर्क़रेज़ी का राज़ दर्याफ़्त हुआ। ख़ुदा इस 'चाँद' को बद्र की तरह मतलए सहाफ़त पर दरफ़िशानी रक्खे। मज़ामीन निहायत मुफ़ीद और पुरमानी हैं, जो आइन्दा के लिए मज़दह जाँबख़्श मालूम होते हैं। नसीहत कड़वी होती है; लेकिन तासीर हयातबख़्श रखती है। अहले-नज़र लिफ़ाफ़ा नहीं देखते, बल्कि इबारत मुलाहिज़ा करते हैं। मेरी दिली ख़्वाहिश है कि ख़ुदा आपको अपने मक़सद मुफ़ीदा में कामयाब व बामुराद करे। आमीन!!

* * *

पं० जयराम साहब शर्मा, जगरानवी :—

जब 'चाँद' की सूरत पै किया ग़ौर ज़्यादा।
तहसीं का जज़्बा हुआ फ़िल्फ़ौर ज़्यादा॥
देने को था मैं दाद दुआ आई यह लब पर।
अल्लाह करे हुस्ने रक़म और ज़्यादा॥
शोला है या कि है शरारा चाँद।
या तज़ल्ली का है ग़बारा चाँद॥
ऐ फ़लक देख खोल कर आँखें।
तेरा है ख़ूब या हमारा चाँद॥
साद करते हैं इस पै अहले-नज़र।
क्यों न आँखों का फिर हो तारा चाँद॥
तारे यह आसमाँ से तोड़ेगा।
लाएगा जब कभी हरारा चाँद॥
सब मज़ामीन हैं इस क़दर दिलकुश।
पढ़ के सब पढ़ते हैं दुबारा चाँद॥
पर्दए-शब में है क़मर महजूब।
दिन में जब से है आशकारा चाँद॥
बोले हिन्दी कि एक नश्द दो शुद।
निकला उर्दू में जब प्यारा चाँद॥
आसमाँ अदब का है यह तहज़िन।
मह-ज़बीं बोले पढ़ के सारा चाँद॥
राय 'शर्मा' की पूछते क्या हो।
एक से एक है करारा चाँद॥

* * *

डॉक्टर साईंदास भण्डारी, मानसहरा :—

मैं सच्चे हृदय से आपको मुबारक देता हूँ। उर्दू की दुनिया में जो बेहतरीन इज़ाफ़ा 'चाँद' ने किया है, उसकी जिस क़दर भी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। मैं दिली अक़ीदत से तरक़्क़ी का दुआगो हूँ कि 'चाँद' सारे आलम में 'बद्रे-चाँद' की तरह रोशनी का मूजिब हो, जिस क़दर बेहतर मालूमात से भरा हुआ लिटरेचर 'चाँद' के ज़रिए लोगों तक पहुँचेगा, आपकी हिम्मत और काम निहायत ही क़ाबिल होगा। मैं परमात्मा के हुज़ूर में सदक़े-दिल से प्रार्थना करता हूँ कि जब तक आलम में आसमान पर रोशनी के लिए चाँद क़ायम है, तब तक रिसाला 'चाँद' भी क़ायम रहे। यही ख़्वाह !!

* * *

श्रीमती बिलक़ैस जमाल अहिल्या अब्दुल जलील साहब वकील :—

'चाँद' मौसूल हुआ। बेहद नफ़ीस व बेशक़ीमत चीज़ है। आपकी निसवानी हमदर्दी का मुल्क की तमाम ख़्वातैन की जानिब से शुक्रिया अदा करती हूँ। उम्मीद है कि ख़ुदा ने चाहा तो यह रिसाला मुल्क के तमाम दीगर निसवानी रसायल से बेहतर साबित होगा।

* * *

बाबू ज्वालाप्रसाद साहब वकील, कानपुर :—

उर्दू-'चाँद' का पहला नम्बर पहुँच कर बायस मशकूरी हुआ। मैं आपको इस नम्बर की उम्दगी व ख़ूबी पर मुबारकबाद देता हूँ।

* * *
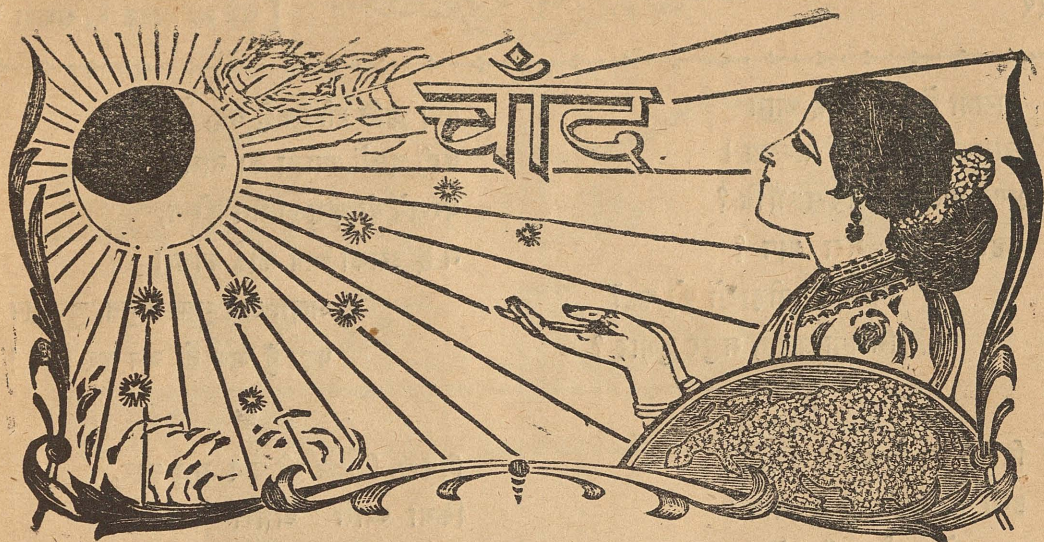
आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है।
जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय
नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

अभाव की पूजा

[श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', बी० ए०]

जीवन के पहले प्रभात में,
मिला तुम्हीं से था मुझको
प्रिय, यह पावन उपहार—।

जिसे कहते तुम आज 'अभाव'
लिए नयनों में करुणा-नीर ;
और करने को जिसका अन्त—
(व्यथित हो-होकर परम अधीर)
रहे हो मेरे चारों ओर
विभव की दारुण ज्योति पसार।

ज्योति यह दारुण है, हाँ, देव !
क्योंकि मैं हूँ चिर तम का दास ;
सुखी रहता दुख ही में डूब ,
कहाँ जाऊँ, किस सुख के पास ?
सम्हाले सम्हलेगा भी कभी
किसी का मुझसे इतना प्यार ?

वासना में विष है, है आग
लालसा में, सुख में सन्ताप।
पुण्य पालूँगा मैं किस भाँति ?
कहाँ जाएगा मेरा पाप ?
विश्व की पीड़ाओं को कहाँ
मिलेगा प्रश्रय, मधुर दुलार ?

✻

विरति-पथ है कोलाहल-हीन ;
इसी पर चलने दो चुपचाप।
साथ में दुर्बलताएँ रहें ;
प्रलोभन का न मिले अभिशाप।
बहुत सुन्दर लगता है मुझे—
यही मेरा सूना संसार।

✻

जनम भर तप करने के बाद
मिला है मुझको यही 'अभाव'।
इसी में है मेरा सर्वस्व,
न है कुछ पाने का अब चाव।
बिछा कर मोहक माया-जाल,
साधना का न करो संहार।

✻

लिए जो हलचल अपने साथ
पधारे हो तुम मेरे पास—
उसे दे पाऊँगा किस भाँति
इसी छोटे से घर में वास ?
लूट लेंगे मुझको ये लोभ,
समेटो इनकी भीड़ अपार।

दाह अति शीतल है यह, है न—
कहीं इसमें ज्वाला का नाम ?
बरसने दो करुणा-घन को न,
न है उसका अब कोई काम।
जला, जल चुका बहुत, चुपचाप
पड़ा हूँ अब तो बन कर छार !

✻

विकल, विह्वल थी जब मधु-धार,
किया प्यासे अधरों ने मान।
पुनः उस मादकता की ओर
करो उपक्रम ले जाने का न ?
लुढ़क जाऊँगा हो हत-चेत,
रहे रस क्यों बरबस यों ढार ?

✻

जगाओ अब न हिए की भूख,
न भड़काओ चाहों की प्यास।
इसी सूनेपन में है शान्ति,
तृप्ति, सुख, संयम, हर्ष, हुलास।
कहाँ अब वे आँखें हैं हाय !
निहारूँ जिनसे यह शृङ्गार ?

✻

करो विचलित मत मुझको देव !
दिखा कर 'कुछ देने का चाव'।
साधना की वेदी पर बैठ—
पूजने दो यह 'अमर अभाव'।
इसी में हो तुम, हूँ मैं, और—
इसी में भरा तुम्हारा प्यार !!
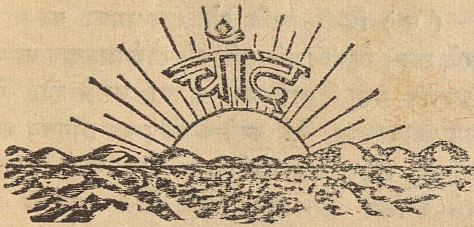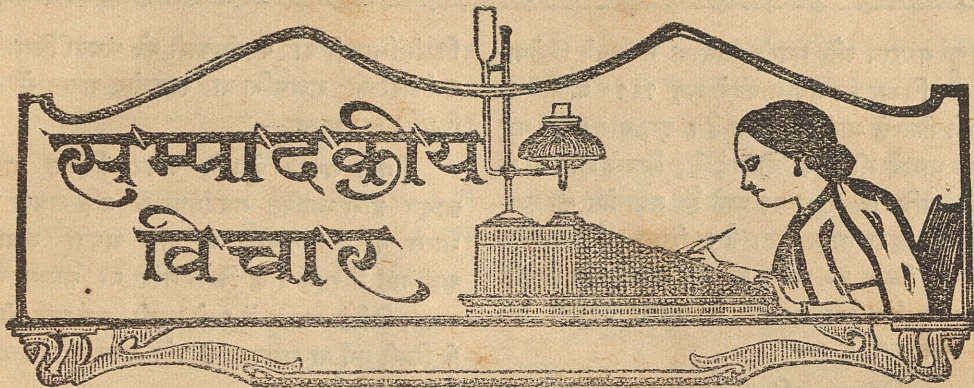
जून, १९३०
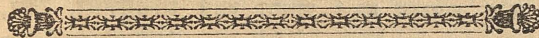
क़ानून या काल ?

वायसराय और गवर्नर जनरल ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके सन् १९१० वाले प्रेस-एक्ट को फिर से जारी कर दिया है। इस बार इसमें कई नवीन धाराएँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे शासकों के भयङ्कर अधिकार बहुत बढ़ जाते हैं तथा प्रेस की स्वाधीनता पर कुठाराघात होता है। शिमला से प्रकाशित होने वाली विगत २७ अप्रैल की एक असाधारण विज्ञप्ति (Gazette Extraordinary) में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

प्रेस का नियन्त्रण अधिक अच्छी तरह से करने के लिए एक असाधारण क़ानून (Ordinance) एक असाधारण विज्ञप्ति द्वारा प्रकाशित किया गया है और इसका प्रयोग आज से होगा। इसकी प्रमुख धाराएँ क़रीब-क़रीब वही हैं जो सन् १९१० वाले क़ानून में थीं, किन्तु वर्तमान परिस्थिति का मुक़ाबला करने के लिए इसमें कई अन्याय-पूर्ण धाराएँ जोड़ दी गई हैं। इस क़ानून में ऐसे अधिकार का विधान किया गया है, जिसके द्वारा कुछ ख़ास-ख़ास बातों को छापने वाले प्रेसों तथा उन्हें प्रकाशित करने वाले पत्रों के ज़मानत, यदि वे जमा किए गए हों तो, ज़ब्त कर लिए जा सकते हैं।

क़ानून का मुख्य अंश

क़ानून के मुख्य अंश (धारा ४) का आशय इस प्रकार है :—

जब कभी कोई प्रान्तीय गवर्नमेण्ट यह देखेगी कि किसी प्रेस में, जिससे इस क़ानून की ३ री धारा के अनुसार ज़मानत जमा कराई गई हो, कोई ऐसे समाचारपत्र, पुस्तक या लेखादि छापे या प्रकाशित किए जा रहे हैं, जिनमें ऐसे शब्द, चिन्ह अथवा चित्रादि हैं, जो अनुमान, सङ्केत, दृष्टान्त, उल्लेख, रूपक, लक्षणा-व्यञ्जना-ध्वनि द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में, ऐसी बात के लिए प्रेरित करते अथवा कर सकते हैं, जिससे

(क) हत्या अथवा विस्फोटक पदार्थ-विधान में बताए हुए किसी अपराध अथवा किसी हिंसात्मक कार्य के (जिसका सम्बन्ध शारीरिक हिंसा से हो) करने के लिए उत्तेजन मिले, अथवा—

(ख) सम्राट की जल, स्थल या वायु सेना के किसी सिपाही या पदाधिकारी को अथवा किसी पुलिस कर्मचारी को राजभक्ति या स्वकर्त्तव्य-पालन से विमुख किया जाय, अथवा—

(ग) सम्राट के प्रति अथवा ब्रिटिश भारत में क़ानून द्वारा स्थापित गवर्नमेण्ट के प्रति अथवा ब्रिटिश भारत के न्याय-प्रबन्ध के प्रति अथवा सम्राट की अधीनता में रहने वाले किसी नरेश या सामन्त के प्रति अथवा ब्रिटिश भारत में रहने वाली, बादशाह की प्रजा के किसी वर्ग वा समुदाय के प्रति घृणा या द्वेष का भाव फैले, अथवा—

(घ) किसी व्यक्ति को डरा-धमका कर या तङ्ग करके उससे किसी दूसरे व्यक्ति को कोई जायदाद या कोई मूल्यवान वस्तु दिलाई जाय अथवा उससे कोई ऐसा काम कराया जाय, जिसे करने के लिए वह क़ानूनन बाध्य नहीं है, अथवा उसे कोई ऐसा काम करने अथवा न करने के लिए प्रेरित किया जाय, जिसे करने का उसे क़ानूनन अधिकार है, अथवा—

(ङ) किसी व्यक्ति को क़ानून के अमल में अथवा क़ानून और व्यवस्था की रक्षा में हस्तक्षेप करने अथवा कोई अपराध करने अथवा कोई मालगुज़ारी, टैक्स, महसूल, कर या अन्य कोई रक़म या देन, जो गवर्नमेण्ट को या किसी स्थानीय अधिकारी को देय हो, अथवा कोई ज़मीन का लगान या दूसरी कोई ऐसी चीज़ जो उसके ज़िम्मे बाक़ी हो या जो ऐसे लगान के साथ दी जाने वाली हो, देने से इन्कार करने अथवा देने में विलम्ब करने के लिए उत्साहित या उत्तेजित किया जाय, अथवा—

(च) किसी सरकारी कर्मचारी या स्थानीय अधिकारी के नौकर को अपने पद सम्बन्धी किसी कर्तव्य को करने, न करने अथवा उसे करने में विलम्ब कर देने अथवा इस्तीफ़ा देने के लिए प्रेरित किया जाय, अथवा—

(छ) सम्राट की प्रजा के विभिन्न समुदायों के बीच दुश्मनी वा द्वेष के भाव बढ़ाए जायँ, अथवा—

(ज) सम्राट की किसी सेना में या पुलिस में लोगों की भर्ती के सम्बन्ध में विद्वेष फैलाया जाय अथवा किसी ऐसी सेना या पुलिस की तालीम, अनुशासन अथवा प्रबन्ध के प्रति विद्वेष फैलाया जाय—

ऐसी अवस्था में प्रान्तीय गवर्नमेण्ट उन शब्दों,

चिन्हों या चित्रादि का, जो उसकी सम्मति में उपरोक्त धाराओं के अनुसार आपत्तिजनक हों, वर्णन या उल्लेख करते हुए ऐसे प्रेस के अधिकारी (कीपर) को लिखित सूचना देकर उस प्रेस की ज़मानत के ज़ब्त कर लिए जाने तथा उस समाचारपत्र, पुस्तक या लेखादि की ब्रिटिश भारत में पाई जाने वाली सभी प्रतियों के ज़ब्त कर लिए जाने की घोषणा कर सकेगी।

व्याख्या—(ग) धारा में 'द्वेष' शब्द के अर्थ में अराजभक्ति और शत्रुता के सब प्रकार के भाव गृहीत होंगे, पर गवर्नमेण्ट के किसी कार्य अथवा गवर्नमेण्ट के या किसी भारतीय नरेश या सामन्त के या ब्रिटिश भारत में न्याय-सञ्चालन के किसी कार्य या प्रबन्ध में वैध उपाय से सुधार कराने की ग़रज़ से की हुई कोई निन्दात्मक टीका, जिससे घृणा, तिरस्कार या विद्वेष का भाव न फैलता हो, (ग) धारा के अन्दर नहीं आवेगी।

नई धाराएँ

यहाँ यह बताया जा सकता है कि इस असाधारण क़ानून की उपरोक्त मुख्य धारा में (च) (छ) और (ज) उपधाराएँ एकदम नई हैं तथा (ङ) उपधारा में अधिकतर नए अपराध रक्खे गए हैं। दूसरी नई बात २३वीं धारा के साथ जोड़ गई है, जो इस प्रकार है :—

जब कि किसी प्रिन्टिङ्ग प्रेस के अधिकारी (कीपर) से ३री धारा की (क) अथवा (ग) उपधारा या ५वीं धारा (जिसमें दोबारा ज़मानत दाख़िल करने का विधान है) के अनुसार ज़मानत माँगी गई हो, उस प्रेस में कोई समाचारपत्र, पुस्तक या लेखादि तब तक मुद्रित या प्रकाशित नहीं किए जा सकते जब तक ज़मानत दाख़िल न कर दी जाय, और यदि किसी प्रेस का उपयोग (क) उपधारा के विरुद्ध किया जायगा तो प्रान्तीय गवर्नमेण्ट ऐसे प्रेस के अधिकारी (कीपर) को लिखित सूचना देकर उस प्रेस अथवा उसके अहाते में पाए जाने वाले अन्य किसी प्रिन्टिङ्ग प्रेस के ज़ब्त कर लिए जाने की घोषणा कर सकेगी और ७ वीं धारा के अनुसार तलाशी का वारण्ट जारी किया जायगा।

इस क़ानून में यह भी विधान है कि ज़ब्ती के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की जा सकेगी, जिसका विचार तीन जजों के एक ख़ास इजलास के सामने होगा !

ऐसी हालत में जब कि पहिली ज़मानत ज़ब्त कर ली गई हो, दूसरी बार पहिले से भारी ज़मानत माँगी जा सकेगी और जो प्रेस दूसरी बार अपराध करेगा उसकी नक़द ज़मानत के साथ-साथ उस प्रेस को भी ज़ब्त कर लिया जा सकेगा !!

इस क़ानून को जारी करते हुए गवर्नर जनरल ने एक लम्बा और जी उबाने वाला वक्तव्य भी प्रकाशित किया है। परन्तु उस वक्तव्य की सारी बातों पर ध्यान रखते हुए भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इस क़ानून के रहते ईमानदारी के साथ किसी पत्र का सञ्चालन अथवा निर्भीकता के साथ किसी घटना या कार्य पर टीका-टिप्पणी कर सकना एकबारगी असम्भव हो गया है। भारत के दरिद्र पत्र-सञ्चालकों के लिए आए दिन भारी-भारी ज़मानतें देना और अन्त में प्रेस तक ज़ब्त करवा बैठना कोई साधारण साहस का काम नहीं है। सन् १९१० वाले क़ानून के अनुसार भारत के राष्ट्रीय पत्रों पर जो भीषण प्रहार और रोमाञ्चकारी अत्याचार किए गए थे, उनके घाव भारतवासियों की स्मृति में आज भी ताज़े हैं। उस अनर्थकारी क़ानून का प्रयोग करके सन् १९१९ में बम्बई के निर्भीक राष्ट्रीय दैनिक पत्र 'बॉम्बे क्रॉनिकल' की १०,०००) रु० की पहली ज़मानत ज़ब्त कर लेने के बाद उससे पुनः २,०००) रु० की दूसरी ज़मानत तलब की गई। और जब अधिकारी-वर्ग को इससे भी सन्तोष न हुआ तो उस पत्र के स्वनामधन्य सम्पादक श्री० हॉर्निमैन को देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया। इसके साथ ही साथ पत्र का प्रकाशन भी बन्द हो गया। एक महीने बाद जब पत्र-सञ्चालकों ने पुनः उसे प्रकाशित करना चाहा तो उस पर सेन्सर बैठाया गया तथा उससे ५,००० रु०) की ज़मानत फिर ली गई। परन्तु फिर भी गवर्नमेण्ट को सन्तोष न हुआ और फिर उसकी ज़मानत बढ़ा कर १०,०००) रु० की कर दी गई।

उन्हीं दिनों 'अमृत बाज़ार पत्रिका' की ५,०००) रु० की पहिली ज़मानत ज़ब्त करके उससे दोबारा १०,०००) रु० की ज़मानत ली गई।

लाहौर के 'ट्रिब्यून' से २,०००) की ज़मानत ली गई थी। परन्तु पञ्जाब के मार्शल लॉ के ज़माने में उसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया, उसके सुयोग्य सम्पादक श्री० कालीनाथ राय पर मार्शल लॉ के अनुसार मुक़द्दमा चलाया गया तथा उन्हें २ साल की कड़ी क़ैद और १०००) रु० जुर्माने का दण्ड दिया गया !

इलाहाबाद के 'इण्डिपेण्डेण्ट' और 'भविष्य' के गौरवमय उत्सर्ग की कहानी से तो इन प्रान्तों का बचा-बचा तक परिचित ही है। 'इण्डिपेण्डेण्ट' से पहले २,०००) रु० की ज़मानत ली गई, फिर उसका पञ्जाब और बर्मा में जाना बन्द किया गया। इसके बाद जब शासकों की नृशंसता का सामना करना उस पत्र के लिए सर्वथा असम्भव हो गया तो वह साईकलोस्टाईल से छाप कर बहुत दिनों तक प्रकाशित होता रहा। अन्त में इसी प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता के महायुद्ध में वीर की भाँति लड़ते-लड़ते भयङ्कर घाटा उठा कर उसका भी अन्त हो गया !

कर्मयोगी श्री० सुन्दरलाल जी सम्पादित हिन्दी दैनिक पत्र 'भविष्य' से पहले २,०००) रु० की ज़मानत ली गई थी। उसके ज़ब्त हो जाने के बाद उससे एकदम १०,०००) रु० की ज़मानत तलब की गई। इस मामले में उसके साथ यहाँ तक सख़्ती की गई कि उस पत्र की नीति के नम्र कर दिए जाने का विश्वास दिलाने पर भी उसकी ज़मानत ५,०००) रु० से कम न की गई। अन्त में यह निर्भीक राष्ट्रीय पत्र भी शासकों की नृशंसता के साथ युद्ध करते-करते ही मरा !!

इसी प्रकार उर्दू प्रेसों और पत्रों पर भी प्रहार हुआ। 'मेहरी मिमरोज़' प्रेस की १,०००) रु० की पहिली ज़मानत, वायसराय के नाम अली भाइयों का पत्र छापने और प्रकाशित करने के कारण, ज़ब्त कर ली गई। उसके बाद उस प्रेस से १०,०००) रु० की ज़मानत माँगी गई।

जलालपुर के 'ताज' नामक दैनिक पत्र के छापने और प्रकाशित करने वाले 'ताज' प्रेस से तो बिना कोई कारण बताए अथवा उसे पहिले से बिना कोई सूचना दिए हुए ही १,०००) रु० की ज़मानत ली गई !

इस प्रकार हम कितने प्रेसों, पत्रों और स्वार्थत्यागी सम्पादकों के नाम गिनावें, जिन्होंने उस ज़ुल्म और बर्बरता के ज़माने में भयङ्कर से भयङ्कर क्षति और कठोर से कठोर प्रहार सहन किए ? सन् १९१९ में कुछ महीनों के भीतर ही भीतर मद्रास के 'हिन्दू', सिन्ध के 'हिन्दवासी', 'सिन्ध-समाचार', 'सिन्ध-एडवोकेट', मराठी दैनिक 'सञ्जय', तामिल दैनिक 'स्वदेश-मित्रम्', 'हिन्दू नासेन', 'देश बख्तान', लाहौर के 'प्रताप', अङ्गरेज़ी दैनिक 'पञ्जाबी,' एक दूसरा अङ्गरेज़ी दैनिक 'यङ्ग पैट्रियट', हिन्दी दैनिक 'विजय', उर्दू दैनिक 'कॉङ्ग्रेस', कलकत्ते के 'राजशक्ति', लखनऊ के 'अख़्वत', तथा 'सङ्कल्प' आदि कितने ही पत्रों पर प्रहार किया गया, कितनों की ज़मानतें ज़ब्त की गईं, कई के सम्पादकों को सज़ाएँ दी गईं, कई पत्रों का प्रकाशन कुछ समय के लिए बन्द हो गया, तथा कई का तो सदा के लिए अन्त ही हो गया ! और आज ११ वर्षों के बाद भारत के राष्ट्रीय पत्रों के जीवन पर ठीक उसी प्रकार का, बल्कि उससे भी बढ़ कर भयावह सङ्कट पुनः उपस्थित हुआ है।

इस असाधारण क़ानून के जारी होने के बाद दो ही एक दिनों के भीतर इसका प्रयोग इतनी सख़्ती के साथ

किया गया है कि दिल्ली के, जो भारतीय साम्राज्य की राजधानी है, सभी राष्ट्रीय अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू पत्र बन्द हो गए हैं ; कलकत्ता, जो ब्रिटिश-साम्राज्य का द्वितीय विशालतम नगर है, राष्ट्रीय पत्रों से सर्वथा शून्य है ; बिहार प्रान्त में जितने भी हिन्दी या अङ्गरेज़ी के राष्ट्रीय पत्र निकलते थे, सभी बन्द हो गए हैं। और कौन कह सकता है कि भविष्य में और किन-किन पत्रों पर प्रहार होने वाला है, किन-किन के सम्पादकों और प्रकाशकों को सज़ाएँ दी जाने वाली हैं, कौन-कौन से प्रेस ज़ब्त किए जाएँगे तथा किन-किन अभागे पत्रों का प्रकाशन सदा के लिए बन्द हो जायगा ?

ये पंक्तियाँ लिखते-लिखते समाचार मिला है कि इस काले क़ानून का प्रयोग संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेण्ट ने भी बड़े ज़ोरों से करना प्रारम्भ कर दिया है ; कानपुर के राष्ट्रीय साप्ताहिक सहयोगी 'प्रताप' तथा काशी के सहयोगी 'आज' के सुयोग्य सम्पादकों को बुला कर स्थानीय डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने इनसे इस बात का आश्वासन लेना चाहा कि भविष्य में वे अपने पत्र में सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणियाँ न लिखेंगे। ऐसा आश्वासन देने से दोनों पत्रों के सम्पादकों ने साफ़ इन्कार कर दिया। फलस्वरूप उनसे क्रमशः ३ और ४ हज़ार की ज़मानतें माँगी गईं। ज़मानत देकर पत्र निकालना इन आत्म-सम्मानी सम्पादकों ने उचित न समझा ; फलतः इन दोनों पत्रों का प्रकाशन भी बन्द हो गया !

एक ओर है प्रेस की स्वाधीनता का ऐसा रोमाञ्चकारी अपहरण और दूसरी ओर है शासकवर्ग तथा पुलिस की दिनोंदिन बढ़ती हुई अमानुषिक बर्बरता तथा धींगाधींगी। कहीं निरपराध महिलाओं पर पुलिस डण्डे और लाठियों से प्रहार करती है तो कहीं छोटे-छोटे अबोध बच्चों पर निन्दनीय नीचता और कायरता के साथ आक्रमण किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में आवश्यकता तो इस बात की थी कि प्रेस को इन दुर्घटनाओं और दुराचारों की कड़ी से कड़ी आलोचना करने की स्वतन्त्रता दी जाती, और साथ ही उन आलोचनाओं पर अधिक से अधिक ध्यान देकर प्रजा के कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया जाता, परन्तु उलटे हमारे देश के विदेशी शासकों ने एक असाधारण क़ानून बना कर प्रेस तथा समाचार-पत्रों को और भी पङ्गु बना डाला है। इस क़ानून के रहते किसी भी राष्ट्रीय पत्र के लिए सर्वथा निर्भीक भाव से किसी घटना या कार्य की टीका कर सकना एकबारगी असम्भव हो गया है।

संयुक्त प्रान्तीय गवर्नमेण्ट और उसके चीफ़ सेक्रेटरी चौबे (कुँवर) जगदीशप्रसाद जी की अब तक 'चाँद' और इस संस्था पर जो वक्रदृष्टि रही है, वह पाठकों को भली भाँति विदित है—बच्चा-बच्चा हमारे साथ किए गए ज़ुल्मों से पूर्णतः परिचित है। ऐसी परिस्थिति में किस दिन 'चाँद' पर नया वार हो जाय, यह कोई नहीं कह सकता। आम को आम और जामुन को जामुन कहना 'चाँद' की निश्चित-नीति है, अतएव वर्तमान परिस्थिति में भारतीय महिलाओं और बच्चों पर किए जाने वाले अपमान और अत्याचार को आँखें बन्द करके सह लेना—हम स्वीकार करते हैं, हमारी शक्ति के बाहर की बात है। हमारा यह दृढ़ विचार है कि संसार की किसी भी महत्वपूर्ण घटना पर निष्पक्ष और निडर टिप्पणी न करना, अपने पढ़ने वालों तथा अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करना है।

वर्तमान परिस्थिति—दुर्भाग्य से ऐसी दारुण परिस्थिति है, जिसमें अपने देश का शुभचिन्तक राजविद्रोही क़रार दिया जाता है और अन्याय का विरोध करना ही 'अराजकता' कहा जाता है !! अतः इस अनावश्यक और अनर्थकारी क़ानून के विरोध में हम इस मास के अङ्क से 'सम्पादकीय विचार' तथा 'रङ्गभूमि' आदि सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखना तब तक के लिए बन्द करते हैं, जब तक इस विषय में कोई उचित निर्णय न हो जाय।

कलङ्क

['मुक्त']

जमुना के गहरे नीले रङ्ग के जल में, तट पर खड़े वृक्षों की छाया नाच रही थी। पास ही एक ऊँचा बुर्ज अपना उदास मस्तक झुकाए चिरकाल से खड़ा था। चञ्चल लहरें उसके पैरों पर लोट-लोट कर बिखर जाती थीं। पश्चिम क्षितिज में सूर्य अस्त हो रहा था।

मीना चुपचाप उसी बुर्ज पर बैठी थी। बुर्ज के नीचे से जमुना के तट तक ढालुवें ज़मीन पर गेहूँ के हरे-हरे पौदे लगे थे। डूबते हुए सूरज की पीली किरनें उन पर पड़ कर सोने की तरह चमक रही थीं। शहर के कितने ही भले-बुरे आदमी वायु सेवन के लिए छोटी-छोटी नावों पर जमुना के वक्षःस्थल पर बड़ी दूर-दूर तक अग्रसर हो गए थे। लेकिन मीना को इन सब बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश कहाँ था? वह चुपचाप अपनी सूनी आँखों से उस पार की धूमिल हरियाली की ओर देख रही थी। उसके हृदय का आकाश सूना था, लेकिन शान्त नहीं था। अनेक प्रकार के विचारों का बवण्डर उसे अस्थिर कर रहा था। वह अस्थिर थी, अशान्त थी, विकल थी।

कमर तक लटकते हुए, उसके काले-काले घुँघराले बाल इधर-उधर बिखरे हुए थे। एक बार उसने उन्हें सँभाला, माथे पर से हटे हुए आँचल को ऊपर खींच लिया, फिर सोचने लगी—लोग क्या कहेंगे? मैं कलङ्किनी हूँ ?? हाँ—यही तो, कलङ्किनी, कलङ्किनी—हज़ार बार कलङ्किनी !! इस कलङ्क में भी कितना सुख है, कितनी मधुरता! ओह! लोगों को जो कहना हो, वे कहें। मैं किस-किस का मुँह बन्द करती चलूँगी? लेकिन मेरे मन की बात अन्तर्यामी जानते हैं।

उसने अपने मन को सन्तोष देने की चेष्टा की, लेकिन उसे सन्तोष न हुआ। मालूम पड़ा मानो वह अपने आपको ठग रही है, धोखा दे रही है। ऊब कर उसने जमुना की ओर देखा। डूबते हुए सूरज की प्रभाहीन लालिमा जमुना के वक्षःस्थल पर फैल गई थी। प्रकाश, अन्धकार का आलिङ्गन कर रहा था। उस दृश्य में हृदय को हिला देने वाली उदासी थी। मीना उस दृश्य से प्रभावित हुई। उसने मन ही मन सोचा—मेरे हृदय में जैसी आग लगी हुई है, क्या जमुना ने भी अपने हृदय में उसी तरह की कोई ज्वाला छिपा रक्खी है?

गोधूलि की बेला धीरे-धीरे बीत गई। रात्रि का अन्धकार पृथ्वी पर घनीभूत हो उठा। लेकिन मीना अपने विचारों में पहले ही की भाँति लीन रही।

इधर कई दिनों से ही वह अपने मन में एक प्रकार की नवीनता का अनुभव कर रही थी। उस नवीनता में सुख नहीं था, पीड़ा थी; शान्ति नहीं थी, बेचैनी थी; स्थिरता नहीं थी, चञ्चलता थी। वह डगमगा रही थी, अधीर हो रही थी। वह अपनी इच्छा स्वयं ही कुछ न समझ पाती थी। बार-बार मचल उठने वाला उसका मन कुछ चाहता था, किन्तु क्या चाहता था, यह बात शायद उसे स्वयं भी न मालूम थी। मालूम पड़ता था, मानो उसने कुछ खो दिया हो, वह कुछ भूल गई हो, मानो अन्धकार से भरी हुई आधी रात में उसके हाथ से कोई उसका दीपक छीन ले गया हो, मानो वायु के चञ्चल थपेड़ों ने उसके आँचल में छिपे हुए प्रकाश के एकमात्र क्षीण आधार को एक हलकी फूँक मार दी हो। उसकी वह अवस्था कैसी दयनीय थी, कैसी करुणाजनक!

मन की हरारत का असर शरीर पर पड़ता ही है। मीना का मन अस्वस्थ था, शरीर भी अस्वस्थ रहने लगा। वह कमज़ोर होने लगी, उसके मन से उत्साह और प्रसन्नता जाती रही, आलस्य ने घर कर लिया। कुछ ही दिनों में वह पीली पड़ गई!

दूर की घड़ी ने टन्-टन् करके आठ बजाए। मीना घण्टे की आवाज़ सुन कर चौंक पड़ी। उसने पीछे फिर कर देखा—सारा शहर स्वर्ग के सपने की तरह स्तब्ध मालूम पड़ता था। प्रकृति में एक अखण्ड शान्ति,

अनन्त शून्यता, अगाध नीरवता व्याप्त हो रही थी। रात्रि का अन्धकार सघन होकर धरित्री पर बिखर गया था। जमुना के गहरे नीले रङ्ग के कल्लोलित जल-तरङ्गों के साथ मिल कर, झिल्ली की झनकार—दूर से आती हुई सङ्गीत की क्षीण करुण ध्वनि के समान—कानों में गूँज रही थी। वह उठ खड़ी हुई। बोली—अरे! इतनी रात हो आई! मैं अभी तक यहाँ क्या कर रही थी?

उसने उठ कर वहाँ से जाना चाहा, मगर जा न सकी। उसके पैर उठते ही न थे, शरीर स्पन्दनहीन हो रहा था। उसे मालूम पड़ता था मानो उसने कुछ खो दिया हो, वह कुछ भूल गई हो। इसी प्रकार खोई-सी, भूली-सी, उस पार के सघन अन्धकार में आँख गड़ाए वह निस्पन्द खड़ी रही। उसके हृदय में अतीत की, दुख-सुख से भरी हुई अनेक स्मृतियों का तूफ़ान उठ रहा था। उसके आनन्द की, प्रसन्नता की, ख़ुशी की, ख़ुमारी दूर हो गई थी—वह निर्जीव, निश्चेष्ट, निरुत्साह होकर चुपचाप खड़ी रही।

खड़ी-खड़ी वह सोचने लगी—घर-बाहर कहीं भी उसे सुख और सन्तोष क्यों नहीं मिलता? क्यों नहीं संसार उसका थोड़ा सा भी सुख बर्दाश्त कर सकता? उसने क्या अपराध किया है? किस अपराध के लिए उसे नरक से भी भयङ्कर यातना दिन-रात भोगनी पड़ती है? वह दुनिया का कौन सा अनमोल वैभव छीन लेना चाहती है? अरे! वह केवल एक छोटा सा अपना अधिकार चाहती है। लेकिन संसार कितना कठोर है, कितना सङ्कीर्ण!! वह उसके इस तुच्छ अधिकार को भी सहन नहीं करना चाहता।

उस पार के सघन अन्धकार को भेदने की इच्छा से, अन्तहीन नीले आसमान में सहस्र-सहस्र तारे मुसकुरा उठे। मीना ने उनकी ओर उपेक्षा-भरी आँखों से एक बार देखा। सोचने लगी—मेरे हृदय के निविड़ अन्धकार में भी 'उसकी' स्मृति इसी प्रकार चमक उठती है। लेकिन वह प्रकाश कितना धुँधला, कितना क्षीण होता है! उससे क्या यह पुञ्जीभूत दुर्गम तिमिर-राशि नष्ट हो सकती है? असम्भव, ओः! बिलकुल असम्भव!!

एक साथ ही सहस्र-सहस्र भावनाओं के आलोड़न से उसका मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया। उन्मत्त-सी होकर एक बार अपनी आकुल आँखों से उसने चारों ओर देखा—हाय! इस अकूल सागर में उसे सहायता देने वाला, उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है? दुनिया इतने मोहक और अलभ्य पदार्थों से भरी हुई है, मगर उसमें उसका कुछ नहीं है—कुछ भी नहीं? वह कैसी अभागिनी है!!

उस नीरव निशीथ में सुदूर देश से आती हुई घण्टा की गुरु-गम्भीर ध्वनि फिर एक बार गूँज उठी। मीना ने उँगलियों पर गिना—एक, दो, तीन, चार........ दस बज गए!! अरे, आठ के बाद एकदम दस!! अवश्य ही, घड़ियाल बजाने वाला गहरी नींद से उठा है। उसकी नींद की ख़ुमारी अभी भी दूर नहीं हुई, नहीं तो ऐसी ग़लती वह करता ही क्यों—आठ के बाद एकदम दस? एक घण्टा बिलकुल ग़ायब??

लेकिन इन प्रतारणाओं से मन को सन्तोष नहीं होता। उसे आधार के लिए कोई ठोस वस्तु चाहिए। ये तो मन को भुलाने, धोखा देने की बातें हैं। उसने सोचा—अब यहाँ बिलकुल नहीं ठहरा जा सकता। अब लौटना ही पड़ेगा। हाँ, और कोई उपाय नहीं है, सिवा लौट जाने के।

उसने एक पैर आगे बढ़ाया—सहसा एक मानव-मूर्ति को सामने पाकर भय से, शङ्का से, आतङ्क से वह काँप उठी। "कौन"—उसने चौंक कर पुकारा—"कौन?"

"मैं बंसी हूँ।"—क्षीण कण्ठ से उत्तर मिला।

"सचमुच ही क्या तुम बंसी हो"—आश्चर्य, भय और आह्लाद से एक बार मीना फिर काँप उठी—"बंसी!"—उसने कहा—"तुम बंसी हो? यहाँ? इस समय?"

"हाँ मीना"—बंसी ने उत्तर दिया—"मैं इसी समय यहाँ आया हूँ और यह काम जान-बूझ कर ही मैंने किया है।"

"लेकिन अच्छा नहीं किया।"

"आज तक जो नहीं किया है उसे अब कैसे करूँगा?"

"तुम्हें इस समय न आना चाहिए था।"

"जो चाहिए था वही अगर मैं कर पाता मीना, तो आज मेरी यह दशा न होती। लेकिन नहीं करता, शायद कर ही नहीं सकता। जाने दो उन बातों को!"

"तुम्हें कुछ कहना है बंसी?"

"हाँ, तुम कहीं जा रही हो क्या?"

"हाँ।"

"कहाँ?"

"घर के सिवा और जाने की मुझे जगह ही कहाँ है?"

"लेकिन क्या मेरी एक बात सुनने का अवकाश तुम्हें नहीं है मीना?"

"अवकाश तो नहीं है, मगर सुन लूँगी। उसे सुने बिना शायद मैं रह नहीं सकती।"

"मीना!"

"हाँ।"

"तुम दिन पर दिन ऐसी क्यों हुई जा रही हो?"

"कैसी हुई जा रही हूँ बंसी?"

"ऐसी ही। पहले तो तुम इस तरह की बातें नहीं कहा करती थीं।"

"बंसी, तुम भी यह बात पूछते हो?"—मीना अपने को सँभाल न सकी, रो पड़ी। उसका रोना अन्धकार में बंसी को मालूम न हो सका। केवल उसकी भरी हुई आवाज़ उसने सुनी।

मीना खड़ी न रह सकी, वह थर-थर काँप रही थी, ज़मीन पर बैठ गई। बंसी भी उसके समीप ही बैठा। थोड़ी देर के बाद मीना ने कहा—इस तरह की बातों के सिवा और मैं कह ही क्या सकती हूँ बंसी?

"कुछ नहीं!"

"तब जाने दो। उसका ख़्याल न करो। ये बातें तो बहुत पुरानी हो चुकी हैं। तुम अपनी बात कहो।"

"क्या कहूँ मीना, कुछ समझ में नहीं आता।"

"लेकिन तुम कुछ कहना चाहते थे न?"

"चाहता तो था, किन्तु समझ में नहीं आता क्या कहूँ। बहुत सी बातें सोचता हूँ, किन्तु यहाँ आने पर सब भूल जाता हूँ। ऐसा क्यों होता है मीना?"

"मैं क्या कहूँ? लेकिन हाँ, होता ऐसा ही है।"

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। उस अन्धकारमयी रात्रि में—जमुना के तट पर—दो आकुल हृदय किसी अज्ञात आशङ्का से काँप रहे थे। मीना सिर झुका कर अँगूठे से धरती खुरच रही थी, बंसी घुटनों पर सिर टेके गम्भीर चिन्ता में डूबा हुआ था।

सहसा बंसी ने सिर उठाया। उसके मुँह से एक ऊँची गहरी साँस निकल गई। उसने कहा—सचमुच ही अब समय नहीं है मीना! अब एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में नहीं बिताया जा सकता। मैं अपनी बातें कह लूँ। फिर न जाने कभी समय मिले या न मिले!

बंसी की बातें सुनने के लिए मीना सजग हो बैठी। उसे जान पड़ा मानो वह कोई ऐसी बात सुनने के लिए तैयार हो रही है, जिसके सुनने की उसने कभी आशा नहीं की थी, जिस बात का उसे सपने में भी कभी ध्यान नहीं आया था।

बंसी ने कहा—मीना! बात बड़ी कठोर है, उसे सुनने के लिए न तो तुम तैयार हो, न कहने के लिए मैं, किन्तु क्या करूँ, कहना ही पड़ेगा। मीना, आज मेरा दम घुट रहा है।

मीना हतचेत सी होकर चुपचाप केवल बंसी की ओर ताकती रही।

बंसी कहता गया—आज चिरकाल के लिए तुमसे विदा लेने आया हूँ मीना! इसके आगे मैं और क्या कहूँ, कुछ कह नहीं सकता।

मीना की आँखों से आँसू की बूँदें टप-टप करके गिर पड़ीं। दोनो हाथों से ज़ोर भर अपना कलेजा दबा कर उसने कहा—अधीर न होओ बंसी, तुम्हें मज़बूत दिल का होना चाहिए। ऐसा करने से कैसे काम चलेगा?

कहने को तो मीना ने कह दिया, पर उसका हृदय जैसा हो रहा था, उसे वही जानती थी। उसके अतिरिक्त और जान ही कौन सकता था? बंसी के हृदय की ज्वाला भी उससे छिपी नहीं थी। उसके हृदय में एक आग धधक रही थी, एक तूफ़ान उठ रहा था, एक ज्वालामुखी सुलग रही थी, मगर वह विवश थी, शक्तिहीन थी, असहाय थी!

बंसी बोला—मीना! आज बीते हुए युग की एक-एक बात हृदय में सुई सी चुभ रही है। एक-एक स्मृति आज हृदय में बिच्छू के डङ्क की भाँति जलन पैदा कर रही है। जीवन में यह विप्लव, यह उथल-पुथल, किसने मचा दी है मीना? इसका परिणाम क्या होगा?

अत्यन्त गम्भीर होकर मीना ने कहा—सब मैंने ही किया है बंसी, सारे अनर्थों की जड़ मैं ही हूँ, लेकिन विवश हूँ। और कुछ कर ही नहीं सकती। नहीं जानती, इसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा किन्तु जो कुछ भी हो, सब सहने के लिए मैं तैयार हूँ।

"यह बातें सुनने का जी नहीं करता मीना, इन्हें रहने दो। तुमने मेरे लिए बहुत अन्याय-अत्याचार सहन किया है। नहीं जानता, हम लोगों का यह स्नेह, यह ममता, दुनिया की आँखों में इतना खटकता क्यों है!"

"शायद दुनिया हमारी अपेक्षा अधिक पापी है। पापी हम भी हैं, किन्तु दुनिया जितनी है, उतने नहीं। सम्भव है, दुनिया के साथ रह कर, उसके घात-प्रतिघातों में पड़ कर हम भी भविष्य में वैसे ही हो जायँ, पर आज नहीं हैं। होते अगर, तो हमारी यह दशा ही क्यों होती?"

"मीना! तुम देवी हो। तुमने हमारे लिए क्या नहीं किया? अपमान, अत्याचार, मिथ्या कलङ्क—सभी तो तुमने हमारी ओर देख कर ही हँसते-हँसते बर्दाश्त कर लिया है! अब, आज तुमसे सदा के लिए विदा होते समय मैं एक भीख माँगता हूँ। बोलो, दोगी?"

"क्या?"

"पहले वचन दो तो कहूँ?"

"तुम कहो बंसी, तुम्हें अदेय क्या है?"

"मीना! मुझे भूल जाने की चेष्टा करो। अपना जीवन सुखी बनाओ, मुझे इसी में सुख और सन्तोष होगा। तुमने मेरे लिए इतना किया है मीना, अब क्या यह न कर सकोगी?"

मीना रोने लगी। क्रन्दन का उच्छ्वसित आवेग जब कुछ कम हुआ तो उसने कहा—नहीं, मैं यह बात किसी तरह नहीं कर सकती, कोशिश करके भी नहीं। सच कहती हूँ बंसी, मैं ऐसा कर सकती होती अगर, तो बहुत पहले कर चुकी होती। तुम्हें कहने का मौक़ा न देती। लेकिन ज्यों-ज्यों भूलने का मनसूबा बाँधती हूँ, तुम्हारी स्मृति त्यों ही त्यों अधिक तीव्र वेग से मेरे मन-प्राण पर अधिकार कर लेती है। मैं क्या करूँ?

बंसी ने कहा—मीना, सचमुच ही तुम मनुष्य नहीं, देवी हो। आज भक्ति से, श्रद्धा से, आदर से और प्रेम के उन्माद से तुम्हारे चरणों पर मेरा मस्तक झुका जा रहा है। मुझे आज्ञा दो मीना, मैं तुम्हारे चरणों पर सिर रख कर एक बार अपने कलुषित जीवन को पवित्र बना लूँ।

"मैं इस योग्य नहीं हूँ बंसी! तुम अन्याय करते हो!"

किन्तु बंसी ने अन्याय ही किया। बलपूर्वक मीना के पैर खींच कर उस पर अपना सिर रख दिया। गरम-गरम आँसू की दो बूँदें उसके पैरों पर ढुलक पड़ीं। मीना का सारा शरीर एक बार सिहर उठा।

"मीना! मैं चला। शायद, सदा के लिए ही।"—बंसी के ये शब्द कुछ दूर सुन पड़े। फिर क्षण भर में ही वह अन्धकार में अदृश्य हो गया।

मीना मूर्च्छित होकर तट की गीली मिट्टी में गिर पड़ी।

❀

रात आधी से अधिक बीत गई थी, लेकिन मीना की आँखों में नींद न थी। अपने सजे हुए अकेले कमरे में वह पलँग पर करवटें बदल रही थी। उसके हृदय में अनेक तरह की भिन्न-भिन्न भावनाएँ तूफ़ान की तरह उठतीं और आँसुओं की तरह गिर जाती थीं। वह उन्मत्त हो रही थी, विह्वल हो रही थी, किंकर्त्तव्यमूढ़ हो रही थी।

मीना सोचने लगी—बंसी कहाँ चला गया है? उसकी बातों का क्या मतलब था? वह मुझसे अन्तिम बार मिलने क्यों आया था? न जाने उसके मन में क्या है? वह क्या चाहता है, क्या करता है? मैं क्या कह कर अपने दिल को ढाढ़स दूँ?

उसने अपनी डायरी निकाली। अनेक पुराने पन्नों को उलटते-पलटते एक बार वह चीख़ मार कर रो उठी। रोते-रोते उसका हृदय फट जाने का उपक्रम करने लगा। उच्छ्वसित क्रन्दन का आवेग रोकने के लिए छाती से तकिया दबा कर वह पलँग पर लोट गई। हिचकियाँ ले-लेकर, अधीर होकर, विकल होकर, विह्वल होकर वह देर तक रोती रही। रोने से जी का भार जब कुछ हलका हुआ तो उसने एक नए पृष्ठ पर लिखा—

"उसे मेरे पास से गए एक घण्टे से कुछ अधिक समय हो गया। उसके चले जाने के बाद से तरह-तरह की शङ्काओं से चित्त डँवाडोल हो उठा है। कहीं जी नहीं लगता। पढ़ती हूँ, सोचती हूँ, अन्धकार में आँखें गड़ा कर देखती हूँ, मगर कहीं शान्ति नहीं मिलती, कहीं सन्तोष नहीं होता। न जाने मेरे हृदय में क्या हो रहा है! न जाने मेरा हृदय क्या चाहता है!! बड़ी निराशा, बड़ी वेदना, उफ़! बड़ी विकलता है! हृदय

में एक आग सी जल रही है, एक ज्वालामुखी सुलग रही है। लेकिन मेरे दुख से दुखी होने वाला कौन है? मेरी पीड़ा का अनुभव करने वाला कौन है?"

डायरी बन्द करके, आँखें मूँद कर बड़ी देर तक वह न जाने क्या सोचती रही। केवल डायरी लिखने से उसे सन्तोष नहीं हुआ। चिट्ठी लिखने का काग़ज़ लेकर वह अपने पति को पत्र लिखने लगी—

"जीवन-देवता,

किन अनपेक्षित घटनाओं ने हमारे जीवन के प्रकाश में अन्धकार की अजस्र धारा उड़ेल दी है? किन भूलों और भ्रमों ने हमारे सुख और शान्ति में दुख और विकलता और निराशा का तूफ़ान ला खड़ा किया है? वह कौन सा रहस्य है मेरे स्वामी, जो हमारे तुम्हारे बीच में मलिनता का, कलह का अभेद्य प्राचीर बन कर आ खड़ा हुआ है? मुझे बतलाओ मेरे सुख-दुख के विधायक, वह कौन सा जादू है, वह कौन सी माया है, जो दिन पर दिन तुम्हें मुझसे इतनी दूर लिए जा रही है? आज मेरा—नारी का—दुर्बल हृदय सौ-सौ प्रतिकूल भावनाओं के मन्थन से अधीर, विह्वल हो रहा है। इन दुर्वह परिस्थितियों का आघात वह अब सह नहीं सकता। मुझे प्रकाश दिखाओ मेरे स्वामी, मुझे रास्ता बताओ; भ्रम और अज्ञान के पथ पर बहुत दूर चली आई हूँ। अन्धकार से जी ऊब गया है। मेरी रक्षा करो, मेरा उद्धार करो। तुम्हारे सिवा अपने हृदय की यह दारुण पीड़ा मैं और किससे कहूँ?

"मेरे सर्वस्व, तुमने मुझे अविश्वासिनी समझा है, कलङ्किनी समझा है, लेकिन अच्छा नहीं किया। मैं सब कुछ हूँ, किन्तु कलङ्किनी नहीं हूँ। जीवन में आज तक मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया—कर्म से, वचन से अथवा मन से—जिससे कोई मेरी ओर उँगली उठा सके, मुझ पर लाञ्छन लगा सके। लेकिन फिर भी संसार ने मेरी ओर उँगली उठाई, मुझ पर लाञ्छन लगाया, मुझे कलङ्किनी कहा! ऐसी अवस्था में, यदि मैंने संसार की उपेक्षा की, उसके कहने पर ध्यान नहीं दिया, तो क्या बुरा किया? जिस बात का कोई मूल नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं, उस सारहीन निरर्थक बात को मानने के लिए मैं कैसे तैयार हो जाऊँ मेरे मालिक?

"दुनिया के उँगली उठाने की, उसके लाञ्छन लगाने की, मैं सचमुच ही बिलकुल परवा नहीं करती, किन्तु तुम्हारे द्वारा उपेक्षित होकर रहना तो एकदम असम्भव है। तुम्हारी आँखों में अपराधिनी, अविश्वासिनी और कलङ्किनी बन कर मैं क्षण भर भी जीवित नहीं रहना चाहती, लेकिन जो चाहती हूँ, हर समय वही तो होता नहीं। तुमने मुझ पर अविश्वास किया, मुझे कलङ्किनी समझा, लेकिन मैं पूछती हूँ, ऐसा क्यों किया? दुनिया कहती है तो कहने दो, किन्तु तुम ऐसी बात क्यों कहते हो? क्यों ऐसी बातों पर विश्वास करते हो? ऐसी बातें मन में ही क्यों लाते हो? दुनिया कहती है इसलिए कि वह मुझे नहीं जानती, लेकिन तुम तो मेरे स्वामी, मेरे हृदय की एक-एक धड़कन को जानते हो, मेरे जीवन के प्रत्येक श्वास-प्रश्वास से परिचित हो, फिर जान-बूझ कर ऐसी बात क्यों कहते हो? बोलो, मुझे जवाब दो।

"अनेक बार तुमने मुझसे पूछा है—तुम क्या चाहती हो? तुम्हारे मन में क्या है? लेकिन मैं तुम्हें क्या बताती? क्या बताती मेरे मालिक, कि मेरे मन में क्या है, मैं क्या चाहती हूँ? अनेक बार स्वयं मेरे ही मन में यह प्रश्न बड़ा विकट रूप धारण करके उठ खड़ा होता है। परन्तु बहुत सोचने-विचारने पर भी मैं इसका कोई कूल-किनारा नहीं देख पाती। मैं स्वयं ही नहीं समझ पाती कि मेरे मन में क्या है, मैं चाहती क्या हूँ! लेकिन हाँ, इतना जानती हूँ कि कुछ है ज़रूर, जो दिन-रात किसी अभाव की तरह मेरे हृदय में खटका करता है, काँटे की तरह चुभा करता है। लेकिन वह क्या है, कौन जाने?

"लोग समझते हैं कि मैं ज़्यादती कर रही हूँ, तुम्हारा शासन नहीं मानती, अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रही हूँ, लेकिन बात ऐसी नहीं है। तुम्हारा शासन मैं नहीं भी मान सकती, ऐसा करने के लिए मुझे कोई बाध्य करने वाला नहीं है, लेकिन मैं मानती हूँ, मानना पसन्द करती हूँ। मैं अधिकारों का दुरुपयोग भी नहीं करती, मेरे अधिकार ही क्या हैं? हाँ, केवल मैं बंसी को प्यार करती हूँ। किन्तु प्यार करना क्या कोई पाप है मेरे स्वामी? मैं बंसी को प्यार करती हूँ ज़रूर, लेकिन मेरे मन में पाप नहीं है, विकार नहीं है, वासना भी नहीं है। यह बात कैसे अपना हृदय चीर कर मैं तुम्हें दिखा दूँ? तुम मेरी बात पर अगर विश्वास कर सकते हो तो विश्वास करो। इस प्रेम में, इस ममता में सांसारिकता बिलकुल

ही नहीं है, होने का कोई कारण भी नहीं है। मुझे तो मालूम पड़ता है, इस स्नेह के अन्तराल में पूर्वजन्म का कोई रहस्य निहित है। तुम पूर्वजन्म पर विश्वास करो या न करो, क्योंकि स्वयं मेरी भी कोई विशेष आस्था उस पर नहीं है—लेकिन इतने अंश में तो तुम उसे ज़रूर ही मान लो। मैं बस उसे केवल प्यार करती हूँ, मेरे हृदय का प्रेम-निर्झर सहस्र-सहस्र स्रोतों में झरता हुआ उसके मस्तक पर आशीर्वाद की तरह, वरदान की तरह गिरता है। फिर यह चाहे दुनिया की नज़रों में पाप हो या पुण्य! मैं इसके लिए क्या करूँ? मैं कुछ नहीं कर सकती मेरे स्वामी, मैं नितान्त असहाय, असमर्थ और विवश हूँ।

"मेरे शरीर पर तुम्हारा अधिकार है, तुम उसके स्वामी हो, मेरा मन भी तुम्हारा ही है, लेकिन उस पर तुम्हारा एकाधिपत्य नहीं है, उस पर तो स्वयं मैं भी अपना पूरा अधिकार नहीं समझती। किन्तु जिस पर स्वयं मेरा भी अधिकार नहीं है, तुम उसी पर अपनी अनन्य प्रभुता स्थापित करना चाहते हो। तुम वैसा कर भी सकते हो, किन्तु क्या शत-शत धाराओं में प्रवाहित होने वाले मेरे प्रेम-निर्झर को रोक कर? नहीं प्रियतम, ऐसा करके यदि तुम मेरे मन को बाँध भी लो, तो उससे तुम्हारा या किसी का क्या लाभ होगा? नारी का हृदय तो प्रेम की रङ्ग-भूमि है, वह हमेशा ही सबको प्यार करेगी। प्यार करना उसका स्वभाव है, धर्म है; बिना प्यार किए वह रह ही नहीं सकती। एक बार वह माँ-बाप को प्यार करेगी, दूसरी बार भाई-बहिन को प्यार करेगी, तीसरी बार पति और पति के घर वालों को प्यार करेगी, चौथी बार अपने बच्चों को प्यार करेगी। वह तो चिर प्रेममयी है मेरे स्वामी! प्रेम तो उसके जीवन के साथ मृत्यु की तरह लिपटा हुआ है। यदि तुम उसके इस बहुमुखी प्रेम को रोक देने की चेष्टा करोगे, तो उसमें तुम्हारे प्यार करने की वस्तु ही क्या रह जायगी? क्या तुम हाड़-मांस के जड़-शरीर को प्यार करोगे, उस पर अपना अधिकार दिखा कर गर्व से फूले न समाओगे? क्या यही तुम्हें अपेक्षित है मेरे मालिक! तुम्हें यही पसन्द है? इस बात पर तो विश्वास करने को जी नहीं चाहता। कौन ऐसा निष्ठुर माली होगा जो रङ्ग-बिरङ्गे फूलों से भरी फुलवारी को उजाड़ कर, भाँति-भाँति के सुगन्धित फूलों को तोड़ कर, हरियाली-हीन धरती पर क़ब्ज़ा करने के लिए उतावला हो उठेगा? ऐसी निष्ठुर और अप्राकृतिक बात किसी ने कभी सोची है मेरे स्वामी! लेकिन तुम यही करने जा रहे हो। मेरे हृदय में जितनी भी कोमल भावनाएँ हैं, सबका संहार करके तुम उस पर अपना अनन्य अधिकार जमाना चाहते हो। पर इससे तुम्हें कौन सी तृप्ति मिल जायगी मेरे मालिक! अनेक बार तुमने यही अनहोनी करने की चेष्टा की है। इसी अमूलक आकांक्षा ने तुम्हारे मन में घर कर लिया है। किन्तु यह कितना उचित है, इसे एक बार तुम्हीं सोचो!

"मैं तो सभी को प्यार करती हूँ मेरे देवता! किसे मैं प्यार नहीं करती? प्रातःकाल की सुनहली धूप में खिल उठने वाले फूलों को मैं कितना प्यार करती हूँ? नीले अन्तहीन आकाश में उड़ने वाले रङ्ग-बिरङ्गे पक्षियों के प्रति भी मेरे मन में अगाध प्यार है। और क्या मैं तस्वीरदार पङ्खों वाली तितली को नहीं प्यार करती? दूर तक फैली हुई हरी-हरी घास, अन्तहीन नीलम-सा नीला आसमान, डूबते हुए सूरज की पीली और मलिन किरनें, धूल में सने हुए, सड़कों पर दौड़ने फिरने वाले बच्चे, सभी तो मेरे प्यारे हैं। तुम्हारे घर पर जो अतिथि आते हैं, क्या मैं उन्हें प्यार नहीं करती? क्या मैं उन्हें नहीं प्यार करती जो भीख माँगने के लिए मेरे दरवाज़े पर आ खड़े होते हैं? तुम्हीं देखो, मैं उस बिल्ली के बच्चे को कितना प्यार करती हूँ? लेकिन उससे तो तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में कुछ बाधा नहीं पहुँचती। फिर, अगर मैं बंसी को प्यार करती हूँ, तो तुम इतना क्यों विरक्त होते हो? क्यों बुरा मानते हो? क्यों मुझसे नाराज़ होते हो? तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो प्रेम सञ्चित है, उससे बंसी के प्रति मेरे मन में उत्पन्न हुई अमायिक ममता का तो कोई सामञ्जस्य नहीं है। यह तो दोनों ही भिन्न-भिन्न दो लोकों की वस्तुएँ हैं, लेकिन कलुषित नहीं हैं, पवित्र हैं; अग्नि के समान पावन और प्रकाश के समान निर्मल हैं।

प्रेम में तो हिस्सा नहीं होता मेरे स्वामी, प्रेम तो शीतल और निर्मल जल का वह निर्झर है, जिसका स्रोत कभी सूखता ही नहीं, जिसका जल कभी चुकता ही नहीं। उस निर्झर के समीप आकर क्या कभी कोई प्यासा लौट जा सकता है?

बंसी के प्रति मेरे मन में कैसा आकर्षण है, कैसा प्रेम है, यह मैं स्वयं नहीं समझती, दुनिया तो इस बात

को समझ ही नहीं सकती। मैं चाहती भी नहीं कि पाप और मलिनता और सन्देह से भरी हुई दुनिया इसे समझने की चेष्टा करे। मैं उसे कुछ समझाना भी नहीं चाहती, उसके सामने कोई सफ़ाई पेश करना भी नहीं। मैं केवल तुम्हीं से कहती हूँ, बार-बार कहती हूँ और इसके कहने में मुझे कोई सङ्कोच नहीं है कि मैं बंसी को प्यार करती हूँ, मैं उसे प्यार करूँगी, इसलिए कि बिना उसे प्यार किए मैं रह ही नहीं सकती। वह मेरा है, मेरे अस्तित्व का एक अभिन्न अङ्ग है, मेरे वात्सल्य की जीवित प्रतिमा है, मेरा प्यारा है, मेरा सहोदर भाई है!

"बंसी हम लोगों से अलग होकर न जाने किस दूर देश में चला गया है। अब मेरे पास वह नहीं, केवल उसकी स्मृति शेष रह गई है। मेरा विश्वास है, ये पंक्तियाँ तुम्हारे मन में भरे हुए उस असत्य और निर्मूल अविश्वास को दूर करने में समर्थ होंगी, जो मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में व्यर्थ ही भर गया है। बस।"

पत्र समाप्त करके मीना ने स्वयं उसे कई बार पढ़ा। पढ़ते ही पढ़ते कब वह गहरी नींद में सो गई, यह उसे मालूम न हो सका।

❧

सवेरा होने में अभी देर थी। किरणकुमार की आँख सहसा खुल गई। स्वभाव-सन्दिग्ध अपना मन लेकर अकारण ही वे पत्नी के कमरे की ओर चल पड़े।

मीना के कमरे में दीपक जल रहा था। उसके सुन्दर लम्बे बाल इधर-उधर बिखरे पड़े थे। कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे थे। एक हाथ पलँग के नीचे लटक गया था। उस बिखरी हुई रूप-राशि को देख कर किरण विस्मित हुए। सोचने लगे—इतनी सुन्दरता में ऐसी कलुषता क्यों है, इस प्रकाश में अमावस का अन्धकार क्यों है, इस प्रेम-प्रतिमा में पाप का कीड़ा किधर से घुस आया है? हे भगवान! तुम्हारी यह कैसी माया है!!

सहसा उनका ध्यान बिखरे हुए उन काग़ज़ों की ओर आकर्षित हुआ, जो मीना की छाती पर और इधर-उधर फैले हुए थे। क्रोध से और ईर्ष्या से और जलन से वे तिलमिला उठे—अभागिनी! यह किसका पत्र पढ़ते-पढ़ते तूने सारी रात बिताई है? वे मीना के पलँग के पास चले गए।

काग़ज़ों को उन्होंने सँभाल कर एकत्रित कर लिया; दीपक के क्षीण प्रकाश में वे उन्हें ध्यान से पढ़ने लगे।

पत्र पढ़ कर जब उन्होंने सारा मर्म जाना, उस समय उनके मन की विचित्र अवस्था थी। मन ही मन उन्होंने कहा—मीना! तू मानवी नहीं, देवी है! तुझे मैं अभी तक समझ नहीं सका था। हाय! मैंने कितना घोर अपराध किया है? मेरे ही कारण तो यह सुन्दर सुमन आज सौरभ-हीन हो रहा है, मेरे ही कारण तो खिलने के पहले ही यह कली मुरझाई जा रही है। मीना! मीना!! तू मुझे क्षमा न करेगी?

स्वभाव से ही किरण का मस्तक मीना के चरणों पर झुक गया। उस समय मीना स्वप्न-लोक में विचरण कर रही थी।

काग़ज़ों को उसी प्रकार इधर-उधर फैला कर किरण द्रुतगति से कमरे से बाहर चले गए। क्षणभर में ही उनके जीवन में महान परिवर्त्तन हो गया, उनके जीवन की धारा ही पलट गई।

सवेरे जब मीना की नींद खुली, तो व्यस्त होकर उसने काग़ज़ों को समेट लिया और चुपचाप उन्हें अपने सन्दूक़ में बन्द कर आई। उन पंक्तियों का उसकी दृष्टि में और मूल्य ही क्या था? उन्हें क्या उसने किरण को देने के लिए लिखा था? अरे नहीं, वह तो केवल उसके हृदय का उबाल था, जो हृदय में नहीं अँट सका तो काग़ज़ के पन्नों पर छलक पड़ा। लेकिन उसे क्या मालूम था कि उसके अलक्ष्य में ही उन पंक्तियों का उद्देश्य पूरा हो चुका था!!

❧

तीन-चार दिन बाद, एक दिन सन्ध्या के कुछ पहले किरण ने मीना से पूछा—मीना! तुम्हारी तबीयत आजकल कैसी है?

"अच्छी तो है।"—झट से मीना ने उत्तर दिया। उसके स्वर में आश्चर्य था, विस्मय था, भय भी था। अपनी सूनी और उदास आँखों से, छिप कर, उसने एक बार किरण की ओर देखा।

"नहीं, अच्छी तो नहीं है।"

"क्यों? मुझे क्या हुआ है?"—एक बार उपेक्षा से अपने कृश और पीले शरीर की ओर मीना ने देखा, फिर सिर झुका लिया। उसका विस्मय उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था, आज वे ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं?

"यह बात मुझसे क्यों पूछती हो मीना, ख़ुद अपने से ही पूछो ! आख़िर मुझसे छिप कर तुम कब तक रह सकोगी ?"

किरण के स्वर में अनुताप था, वेदना थी। मीना सिहर उठी, काँप गई, पसीने से उसका शरीर भर गया। वह खड़ी न रह सकी, धम्म से ज़मीन पर बैठ गई। किरण ने उसे सँभाल लिया। बोले—मीना ! इस तरह कब तक काम चलेगा ? तुम्हें मेरी शपथ है, सच-सच बताओ, तुम्हें क्या हो गया है ?

"मुझे कुछ नहीं हुआ, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मुझे छेड़ो मत। सचमुच ही मुझे कुछ नहीं हुआ।"—गिड़-गिड़ाते हुए मीना ने उत्तर दिया।

"तुम मेरे शपथ का भी ख़्याल नहीं करतीं मीना ?"

मीना ने एक बार किरण की ओर देखा। बोली—मुझे ज्वर आता है।

"कब से ?"

"एक महीना से।"

"लेकिन तुमने मुझसे तो यह बात कभी नहीं कही ?"

"कहती क्या, थोड़ी सी हरारत हो जाती है, कुछ ज़ोर का बुख़ार तो आता नहीं।"

"यह तो और बुरा है; कब हरारत मालूम होती है ?"

"कुछ ठीक नहीं, दिन-रात में कभी एक बार।"

किरण थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, फिर बोले—मीना ! तुम्हारी तबीयत यहाँ ठीक न होगी। चलो थोड़े दिन के लिए कहीं बाहर से घूम आवें।

मीना तुरत ही राज़ी हो गई। बोली—चलो !

"कहाँ चलोगी ?"

"कहीं भी, यहाँ से बाहर !"

"यहाँ तबीयत नहीं लगती ?"

"ना, बिलकुल नहीं।"

दूसरे ही दिन किरण मीना के साथ पुरी के लिए रवाना हो गए।

❧

पुरी आने के बाद कई दिनों तक मीना की तबीयत अच्छी ही मालूम पड़ी, लेकिन एक दिन सहसा बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया और देखते ही देखते उसे सन्निपात हो गया। परदेश में—जहाँ न कोई हित, न मित्र, न कोई बन्धु, न बान्धव—मीना को लेकर किरण बड़े सङ्कट में पड़े। उन्हें कोई उपाय न सूझा, सिर पकड़ कर वे दरवाज़े पर बैठ गए। मीना उस समय ज्वर की बेहोशी में प्रलाप कर रही थी।

किन्तु किरण की उस आपत्ति में भी एक बन्धु आ ही जुटा। भीख माँगने आया था बेचारा, मीना का चीख़ना-चिल्लाना सुन कर बुरी तरह पकड़ा गया। वह एक संन्यासी था, गेरुआ वस्त्र धारण किए लम्बे-लम्बे रूखे केश और दाढ़ी बढ़ाए हुए, मलिन, उदास, निष्प्रभ।

संन्यासी ने किरण से सब हाल पूछा, फिर वह अपने को भूल कर मीना की सेवा करने लगा। उसकी तत्परता और उसका उत्साह देख कर किरण दङ्ग रह गए। एक दिन उनसे न रहा गया। उन्होंने पूछा—देवता, आप किस लिए इतना दुख-कष्ट हमारे कारण उठा रहे हैं ? सच-सच बताइए, आप कौन हैं ?

"मैं अपना परिचय क्या दूँ भाई ? दुनिया से ठुकराया हुआ, तिरस्कृत, लाञ्छित, अपमानित, मैं एक अभागा पापी हूँ। किसी के दुख में अगर कुछ सहायता कर सकता हूँ, किसी के काम आ सकता हूँ, तो बड़ी शान्ति मिलती है, बड़ा सुख मिलता है। मालूम पड़ता है, मानो जीवन भर जितना पाप मैंने किया है, ऐसा करके, उसका कुछ बोझ मैं हलका कर सका हूँ। इसी विचार में सन्तोष है, सुख है।"

आदर से, भक्ति से और कृतज्ञता से किरण का मस्तक स्वभावतः ही संन्यासी के चरणों पर झुक गया। मन ही मन उन्होंने सोचा—"यह कैसा पवित्र पापी है ! पवित्रता से पाप का भी इतना घना सम्बन्ध हो सकता है, इसके पहले यह बात कौन जानता था ? हे पापों की पवित्रता की साकार प्रतिमा, मैं तुझे बार-बार प्रणाम करता हूँ।" किरण मौन रहे, कुछ बोल न सके।

❧

संन्यासी की कई दिनों की अनवरत सेवा-शुश्रूषा से मीना धीरे-धीरे अच्छी हो चली थी। एक दिन, जब सान्ध्य-सूर्य की पीताभ कनक-किरण-रेखाएँ दिगन्त से सिमट कर खुली हुई खिड़की के रास्ते मीना के बिछौने पर आ पड़ीं तो उसने संन्यासी को अपने पास बुलाया। कहा—बंसी !

बंसी एक बार चौंक उठा। घबरा कर उसने कहा—तुमने मुझे पहचान लिया मीना ?

मीना ने उसी प्रकार सरलता भरी आँखों से बंसी की ओर देखते हुए कहा—"मैं क्यों न पहचानूँगी बंसी? कहीं रहो, किसी वेश में रहो, दुनिया में कोई तुम्हें पहचाने या न पहचाने, पर मीना तुम्हें पहचानने में ग़लती नहीं कर सकती! समझे ?" अतीत की अनेक मधुर, किन्तु करुण स्मृतियों ने मीना की आँखों से आँसू का प्रवाह ज़ारी कर दिया। छिपा कर उसने आँखें पोंछ लीं। आश्चर्य से बंसी उसकी ओर ताकता रह गया।

किन्तु मीना के बिलकुल स्वस्थ होते न होते ही बंसी ने चारपाई पकड़ ली। हफ़्तों के जागरण और दिन-रात के निरन्तर परिश्रम से उसका शरीर टूट गया था। वह अब अधिक सह न सका। थक कर, चूर होकर, वह खाट पर गिर पड़ा। किरण फिर रोगी की सेवा-सुश्रूषा और दवा-पानी की व्यवस्था में लगे।

किरण उस दिन घर में न थे। मीना बंसी की चारपाई के पास ज़मीन पर बैठी हुई थी। सहसा उसने पूछा—तुमने यह क्या पागलपन किया है बंसी ?

"क्या ?"

"यह गेरुआ वस्त्र, यह बढ़ी हुई जटाएँ, यह सब क्या हैं ? मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।"

"लेकिन मुझे तो लगता है।"

"मैं इन्हें काट दूँगी।"—बंसी की बढ़ी हुई जटाओं को हाथ में लेकर मीना ने कहा।

"लेकिन किस लिए ? अब यह खेल अधिक देर तक चल न सकेगा मीना ! शीघ्र ही समाप्त हो जायगा।"

"हुश् ! यह क्या बेक़ायदे की बात बोलते हो ? चुप रहो !"

कैंची लाकर मीना ने अपने हाथ से बंसी के बढ़े हुए बाल काट डाले। बंसी अपलक आँखों से उसकी ओर देखता रहा। धीरे-धीरे मुसकुराता रहा। मीना ने पूछा—क्या हँसते हो बंसी ?

"कुछ नहीं ; सोचता हूँ, मनुष्य कितना अज्ञान है, कितना मोही ! ओः !!"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

"और क्या होगा ? यह जो मेरा शृङ्गार हो रहा है, उसी की बात सोचता हूँ। यह क्यों हो रहा है ? शायद चिता पर जाने के लिए ही।"

मीना ने अपने हाथ से बंसी का मुँह दबा लिया। उसी समय किरण ने कमरे में प्रवेश किया।

❧

उस दिन रात को जब बंसी सो गया तो मीना ने किरण से पूछा—एक बात पूछती हूँ, बताओगे ?

"क्या ?"

"पहले बताने का वादा करो तो कहूँ।"

"कहो, वादा करता हूँ।"

"तुम एकाएक इस तरह बदल कैसे गए ?"

"कह दूँ ?"

"हाँ !"

"तुम्हीं ने मेरी आँखें खोल दीं।"

"किस तरह ?"

किरण ने उस दिन की सारी बातें एक-एक करके मीना को सुना दीं। सुन कर जब वह आश्वस्त हुई तो बोली—इस संन्यासी को पहचानते हो ?

"क्यों ? यह कौन है ?"

"बंसी को तुमने पहचाना नहीं, इतने दिन से साथ रहते हो ?"

"बंसी ! यह बंसी है ?" किरण उछल पड़े—"मैंने इसके प्रति बड़ा अपराध किया है मीना, सवेरे कैसे इसे मुँह दिखाऊँगा।"—कह कर किरण ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

किन्तु दूसरे दिन किरण को मुँह दिखलाने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया। रात्रि में ही सब समाप्त हो गया। बंसी की चिता समुद्र के तट पर अट्टहास करके लहक उठी।

बंसी का शवदाह करके जब किरण घर लौट आए तो मीना पछाड़ खाकर गिर पड़ी। ज़ोर से रोते ही रोते वह चिल्ला उठी—आज तो मेरा कलङ्क सदा के लिए नष्ट हो गया।

उसी तरह रोकर किरण ने उत्तर दिया—लेकिन नष्ट होकर भी वह मेरे माथे पर कलङ्क की अमिट टीका लगा गया है मीना !

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी बाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़ कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन-व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सच-मुच कमाल किया है। शरत बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

नवीन मुस्लिम संसार

[श्री० मथुरालाल जी वर्मा, एम० ए०]

एक समय था, जब स्पेन से ब्रह्मा तक तथा उत्तरी अफ़्रीका से मङ्गोलिया तक इस्लाम का दबदबा फैला हुआ था। इस्लाम के विजयी सैनिकों, प्रतापशाली सम्राटों तथा धुरन्धर विद्वानों और कट्टर विचारों ने संसार की सभ्यता को और का और ही कर दिया था। उस समय सम्पूर्ण जगत इस्लाम का लोहा मानने लगा था। लेकिन समय ने पलटा खाया और मुसलमानों का बल-वैभव छिन्न-भिन्न होने लगा। १८ वीं शताब्दी के अन्त तक भारतवर्ष से, उत्तरी अफ़्रीका और स्पेन से तथा पश्चिमी तुर्किस्तान से मुसलमानों का राज्य नष्ट हो चुका था। उस समय काबुल से क़ुस्तुन्तुनिया तक मुसलमानों का राज्य अवश्य था, परन्तु वहाँ भी पश्चिम की गोरी जातियाँ अपना प्रभाव जमाने लगी थीं। इन देशों पर उनका प्रभाव इतने वेग से फैला कि १९वीं सदी में तो एक भी मुस्लिम राज्य ऐसा न रह गया, जिस पर यूरोप के किसी न किसी राज्य का काफ़ी प्रभाव न हो। इस काल में अफ़ग़ानिस्तान को अङ्गरेज़ दो बार हरा चुके थे। ईरान में दक्षिण की ओर से अङ्गरेज़ तथा उत्तर की ओर रूसी बढ़ते चले जा रहे थे। तुर्की की अवस्था भी कुछ अच्छी न थी। फ़्रेञ्च, रूसी और यूनानी लोगों की दृष्टि में तुर्की सरकार की कोई प्रतिष्ठा न थी, यहाँ तक कि तुर्की राज्य "यूरोप का मरीज़" कहलाने लगा। मिश्र में फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड का अड्डा जम चुका था तथा उत्तरी अफ़्रीका में मोरक्को आदि प्रदेशों पर फ़्रान्स और स्पेन का क़ब्ज़ा हो गया था।

यूरोपीय महासमर से पूर्व मुसलमानों की आबादी ब्रह्मा से स्पेन तक तथा उत्तरी अफ़्रीका से बेकाल की झील तक फैली हुई थी। इन देशों में इस्लामी सभ्यता का ज़बर्दस्त प्रचार था। लेकिन इस समय भी मुसलमानों की राजनीतिक शक्ति शून्य के बराबर थी। भारतवर्ष के मुसलमान निःशस्त्र तथा अङ्गरेज़ों के दास थे, स्पेन के मुसलमान स्पेनिश सरकार के अधीन थे। उत्तरी अफ़्रीका के देश छिन्न-भिन्न और अशिक्षित तथा फ़्रान्स और स्पेन से दबे हुए थे। अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, तुर्की तथा दो-एक और छोटे-मोटे देश कहने को स्वतन्त्र अवश्य थे, लेकिन उनमें न कोई शक्ति थी न मज़बूत सङ्गठन। युद्ध आरम्भ होने के बाद जब तुर्की जर्मनी के साथ मिल गया और अङ्गरेज़ों ने मिश्र पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया तो संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ यह अनुमान करने लगे कि महासमर का परिणाम और चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु इसका यह परिणाम अवश्य होगा कि मुस्लिम-सत्ता पृथ्वीतल से नष्ट हो जावेगी। समर के अन्त में जब विजयी मित्रों ने तुर्की को पङ्गु बना कर एक ओर रख दिया और क़ुस्तुन्तुनिया पर अपना अधिकार जमा लिया तो राजनीतिज्ञों का पूर्वानुमान और भी दृढ़ हो गया। उस समय यूरोप के प्रायः सभी राजनीतिज्ञ समझने लगे थे कि "यूरोप के मरीज़" की क़ब्र तैयार हो गई, अब उसकी ज़िन्दगी के केवल गिनती के कुछ दिन बाक़ी हैं।

सन् १९०८ के आसपास तुर्की का राज्य बसरा से लेकर एक ओर युगोस्लाविया तक और दूसरी ओर ट्रिपोली तक फैला हुआ था। लेकिन युद्ध के पश्चात यह सङ्कुचित होकर केवल क़ुस्तुन्तुनिया से ईरान की उत्तर-पश्चिमी सीमा तक ही रह गया। ईराक़, सीरिया, पैलेस्टाइन और अरब को पहिले तो विजयी मित्रों ने स्वातन्त्र्य का लोभ दिखा कर अपनी ओर मिला लिया था, परन्तु जब युद्ध का अन्त हो गया तो उन्हें "रक्षित स्वतन्त्र राष्ट्र" कह कर उन लोगों ने उन्हें अपने ही क़ब्ज़े में बनाए रक्खा। विजेताओं के दबाव में पड़ कर अगस्त सन् १९२० में सेवर की सन्धि में तुर्की सरकार ने यह स्वीकार कर लिया कि सीरिया फ़्रान्स के, तथा ईराक़ और पैलेस्टाइन अङ्गरेज़ों के रक्षित राष्ट्र बना दिए जायँ। इसके अतिरिक्त तुर्की के अन्दर भी अरमेनिया का

एक पृथक राज्य खड़ा कर दिया गया और गेस तथा स्मरना के आस-पास का देश यूनान के सिपुर्द कर दिया गया। इस प्रकार जब मुसलमानों के सब से शक्तिशाली राज्य का अङ्ग-भङ्ग हो गया, और सम्पूर्ण इस्लामी जगत के सरदार ख़लीफ़ा ने यूरोपीय विजेताओं का लोहा मान लिया तो फिर मुसलमानों का रह ही क्या गया? मिश्र पर अङ्गरेज़ों ने पहिले ही से अधिकार कर लिया था, और ईरान तथा अफ़ग़ानिस्तान कोई उन्नत राज्य नहीं थे। इसके सिवा ईरान को एक ओर से अङ्गरेज़ों ने और दूसरी ओर से रूसियों ने दबा रक्खा था। अफ़ग़ानिस्तान भी इन्हीं दोनों शक्तियों के बीच में पड़ कर पिसा जा रहा था। भारत, स्पेन तथा उत्तरी अफ़्रीका के मुसलमान परतन्त्र होने के कारण किसी गिनती में ही नहीं थे। अतः यह प्रत्यक्ष जान पड़ता था कि संसार के भावी इतिहास के निर्माण में इस्लाम का कोई हाथ न रहेगा—जगतीतल पर इस्लाम के राजनीतिक जीवन की लीला समाप्तप्राय है।

परन्तु यह किसको पता था कि २५ करोड़ मुस्लिम जनता में एकाएक नवजीवन का सञ्चार हो जायगा और संसार के देखते-देखते ही मुस्लिम देशों में रूपान्तर होकर वे स्वतन्त्र, सभ्य, सुदृढ़ तथा प्रजासत्तात्मक राज्य बन जाएँगे। पिछले केवल ११-१२ वर्षों के भीतर ही भीतर मुस्लिम जगत का सम्पूर्ण रूपान्तर वैसा ही आकस्मिक और कल्पनातीत है, जैसे नेपोलियन का उदय और मराठों का अधःपतन। युद्ध समाप्त भी न होने पाया था, समर-भूमि में रक्त अभी सूखा भी न था कि विजेताओं का विजयोल्लास भली प्रकार प्रकट होने के पहिले ही क़ुस्तुन्तुनिया से अफ़ग़ानिस्तान तक, बल्कि इससे भी आगे कलकत्ता तक मुस्लिम जगत में आज़ादी के नारे सुनाई देने लगे। चार सौ वर्षों का मरीज़ इस्लाम एकाएक रुस्तम की भाँति संसार के सामने अपना पौरुष प्रकट करने के लिए खड़ा हो गया। परिस्थिति के अनुकूल उसका नवीन पौरुष कई रूपों में प्रकट हुआ। भारत में उसने निःशस्त्र ख़िलाफ़त आन्दोलन का रूप धारण किया तो अफ़ग़ानिस्तान में उसने सशस्त्र स्वातन्त्र्य घोषणा का आकार पकड़ा, ईरान में वह राज्य-सुधार की लहर बन गया तो ईराक़, सीरिया आदि में वह विदेशी शासकों के प्रति घोर असन्तोष के रूप में प्रकट हुआ। उसी नवीन पौरुष का फल था कि मोरक्को, अलजीरिया, ट्रिपोली तथा तुर्की ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति और प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए युद्ध आरम्भ कर दिया, मिश्र में नवीन विचारों की बाढ़ अङ्गरेज़ी सत्ता के बेड़े को डावाँडोल करने लगी। आश्चर्य-चकित होकर यूरोप के राष्ट्र इस नवीन मुस्लिम संसार की ओर देखने लगे। मरीज़ क्यों उठ खड़ा हुआ, मुर्दे में जान कैसे आ गई, यही यूरोप के राजनीतिज्ञों की चिन्ता का सबसे प्रधान विषय बन गया।

मुस्लिम जगत के इस नवीन जागरण के तीन मुख्य स्वरूप थे—स्वाधीनताभिलाषा, सामाजिक सुधार तथा धार्मिक रूपान्तर; और इन तीनों ही अङ्गों पर पश्चिमीय विचारों का गहरा प्रभाव था। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक मुसलमानों ने ईसाई सभ्यता, ईसाइयों की शासन-प्रणाली, उनकी भाषा तथा विज्ञान को घृणा की दृष्टि से देखा था, लेकिन २० वीं शताब्दी के आरम्भ से वे अनुभव करने लगे कि पश्चिमीय सभ्यता की उपेक्षा करना, सभ्यता की दौड़ में पिछड़ना है। इसलिए शासन-प्रणाली, आन्दोलन-शैली, सैनिक सङ्गठन, शिक्षा-प्रचार, समाज-सुधार आदि सभी क्षेत्रों में वे यूरोपीय सभ्यता का अनुकरण करने लगे। जापान की भाँति वे भी यूरोप को, यूरोप जैसा बन कर ही मात कर देने का प्रयत्न करने लगे; और कहना न होगा, इस कार्य में उन्हें आशातीत सफलता मिली। जिन मुस्लिम देशों में यूरोप का जितना ही अनुकरण किया गया, वे देश उन्नति और विकास की प्रभा से उतना ही प्रकाशमान हो उठे।

अगस्त सन् १९२० में क़ुस्तुन्तुनिया की त्रस्त सरकार ने तुर्की साम्राज्य के बटवारे को स्वीकार कर लिया। दूसरी ओर यूनान की सेनाएँ अपने कल्पित अधिकारों की प्राप्ति के लिए स्मरना की ओर बढ़ने लगीं। इन दोनों घटनाओं ने तुर्कों के जीवन में एक नवीन स्फूर्ति का सञ्चार कर दिया। क़ुस्तुन्तुनिया-सरकार की कायरता से मुस्तफ़ा कमालपाशा को बहुत ही दुःख हुआ। उन्होंने फ़ौरन जनता का नेतृत्व ग्रहण करके क़ुस्तुन्तुनिया-सरकार को दरकिनार किया, तथा अङ्गोरा में नवीन सरकार की स्थापना करके स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। जब उन्होंने आरमेनिया के नवीन राज्य को भी नष्ट कर दिया और

रूस के साथ पृथक सन्धि कर ली तो यूरोप की आँखें खुलीं। यूरोपियन शक्तियाँ सेवर की सन्धि में परिवर्त्तन करने की बात सोच ही रही थीं कि कमाल पाशा अपनी सेना के साथ पश्चिम की ओर बढ़े और सन् १९२२ के सितम्बर में यूनानी तथा अङ्गरेज़ी सेनाओं को हरा कर उन्होंने स्मरना पर अधिकार कर लिया। उसी मास में फ़्रान्स तथा इटली की सेनाएँ युद्धक्षेत्र से वापिस लौट गईं तथा इसके एक मास बाद लोसान नगर में बाक़ायदा सन्धि-परिषद् की बैठक शुरू हो गई। इस प्रकार दो वर्षों के भीतर ही भीतर नवीन तुर्की ने यूरोप के छल और बल दोनों पर विजय प्राप्त कर ली।

तुर्की के वर्तमान विधाता मुस्तफ़ा कमालपाशा

सन् १९१९ से ईरान की सेना तथा सरकार अङ्गरेज़ों की अधीनता में थी। इस समय ईरान-सरकार की लगभग वही दशा थी जो क्लाइव के समय में मीरजाफ़र की और महादजी सेंधिया के समय में शाहआलम की थी। ईरान का बादशाह नाम मात्र का बादशाह था। राज्य अङ्गरेज़ों का था और नाम था बादशाह का। तुर्की के साथ ही साथ ईरान में भी स्वतन्त्रता की लहर उमड़ी और फ़रवरी सन् १९२१ में रिज़ा ख़ाँ के नेतृत्व में एक भारी क्रान्ति हो गई, जिसके फल स्वरूप ईरान का नामधारी शाह ईरान को छोड़ कर यूरोप भाग गया और रिज़ा ख़ाँ ईरान के प्रधान सचिव बना दिए गए। कुछ दिनों के बाद उन्होंने सम्राट के सिंहासन

ईरान के वर्त्तमान सम्राट क्रान्तिकारी रिज़ाशाह

को भी सुशोभित किया। रिज़ा ख़ाँ भी मुस्तफ़ा कमाल पाशा की भाँति एक चतुर सैनिक तथा पश्चिमीय विचारों के अनन्य समर्थक सिद्ध हुए।

अफ़ग़ानिस्तान भी इस लहर से अछूता न रह सका। सन् १९१७ में उसके उत्तर-पश्चिमी सीमा पर रूस का कोई प्रभाव न रह गया था, लेकिन उसके पूर्वी भाग पर अङ्गरेज़ों का दाँत अभी लगा हुआ था। युद्ध के बाद जब अन्य मुस्लिम देशों में स्वतन्त्रता की लहर उमड़ी तो अफ़ग़ानिस्तान ही उससे अलग कैसे रह सकता था? सन् १९१९ में अमीर अमानुल्ला के राज्यसिंहासन पर बैठते ही अफ़ग़ानिस्तान की निर्बलता उन्हें अखरने लगी। उन्होंने शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करना आरम्भ कर दिया।

अफ़ग़ानिस्तान की स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र भी उन्होंने अपने देश तथा भारत में वितर करवाया। उसी साल ६ मई को अफ़ग़ानिस्तान की सेना भारत की ओर बढ़ी तथा उसने सीमाप्रदेश की कई जातियों को अधिकृत कर लिया। इस युद्ध में अङ्गरेज़ों ने वायुयान तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों का उपयोग किया, अफ़ग़ानी सेना भी पश्चिमी ढङ्ग से लड़ी। सेनापति नादिरशाह ने खेल की घाटी में अद्भुत रण-पाण्डित्य तथा नेतृत्व-कौशल का परिचय देकर अङ्गरेज़ों को दङ्ग कर दिया। सैनिक विजय किसकी हुई यह कहना कठिन है, लेकिन सन् १९२२ की सन्धि में अङ्गरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान का पूर्ण स्वातन्त्र्य स्वीकार कर लिया। इसके बाद से अफ़ग़ानिस्तान पर

देशभक्त, सुधार-प्रिय शाह अमानुल्ला और उनकी सुयोग्य पत्नी श्रीमती सूर्या

किसी भी विदेशी शक्ति का प्रभाव न रह गया। हाल ही में अफ़ग़ानिस्तान में जो युद्ध हुआ है वह घरेलू युद्ध था और यदि उसका सम्बन्ध किसी विदेशी राज्य से रहा भी हो तो वह अल्प और परोक्ष था।

युद्ध के समय कूटनीतिज्ञ अङ्गरेज़ों ने धन तथा स्वतन्त्रता का लोभ देकर अरब के सरदारों को तुर्की के विरुद्ध भड़का दिया था और उनसे तुर्की साम्राज्य पर आक्रमण करवाया था। अरब के अमीर हुसेन और उसके पुत्र फ़ैज़ल तथा नज़्द के अमीर इब्नसऊद—तीनों को अङ्गरेज़ सरकार ने तुर्की के विरुद्ध उपद्रव तथा युद्ध करने के लिए आर्थिक सहायता अर्थात भारी रिश्वतें दी थीं। इन दोनों सरदारों को अङ्गरेज़ों ने सब मिला कर लगभग साढ़े नौ करोड़ रुपए दिए थे। युद्ध के अन्त में जब अङ्गरेज़ सरकार से रुपया मिलना बन्द हो गया तो अमीर हुसेन और अमीर इब्नसऊद दोनों आपस में ही लड़ने लगे। सन् १९२४ में इब्नसऊद के आक्रमणों ने अमीर हुसेन को नितान्त अशक्त कर दिया। इब्नसऊद वहाबियों का सरदार था। इस युद्ध में वहाबियों ने मक्का पर भी गोलेबारी की और वहाँ के पवित्र स्थानों को तोड़ गिराया। भारत, जावा, मिश्र तथा अफ़्रीका के मुसलमान एक तो वहाबियों को यों ही कट्टर मुसलमान नहीं मानते, इस भयङ्कर गोलेबारी से इन लोगों के मन में विहाबयों तथा उनके नेता इब्नसऊद के प्रति और भी असन्तोष फैला। परन्तु इब्नसऊद ने अपनी नीतिज्ञता और चातुरी से इस असन्तोष को शीघ्र ही दूर कर दिया। सन् १९२५ में यात्रीगण पुनः मक्का की यात्रा करने लगे। इसके अगले साल सन् १९२६ में सब मुसलमान राज्यों ने एक स्वर से इब्नसऊद को हजाज़ का बादशाह स्वीकार कर लिया। इसी साल के जून महीने में मक्का में संसार भर के मुसलमानों की एक महती सभा हुई, जिसमें तुर्की, अफ़ग़ानिस्तान, मिश्र, भारत आदि देशों ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे। केवल ईरान ने वहाबियों के कृत्यों को निन्दनीय समझ कर इस सभा में सहयोग नहीं दिया। इस सभा ने यात्रियों की सुविधा के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी साधनों, सड़कों, रेल आदि पर विचार किया। इसमें मुसलमान-जगत से दास-प्रथा को हटा देने के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास हुआ। यह निश्चित हुआ कि मुस्लिम संसार की परिस्थिति पर विचार करने के लिए मक्का में प्रति वर्ष इस प्रकार की एक सभा की जावे। नाना देश-देशान्तर के मुसलमानों का अपने तीर्थ-स्थान में मिल कर अपनी परिस्थिति पर विचार करना इस्लाम के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी। यह घटना बिना किसी सन्देह के मुस्लिम जगत के पुनरुज्जीवन की सूचना देती थी।

युद्ध की समाप्ति के बाद ईराक़, सीरिया तथा पैलेस्टाइन में भी घोर असन्तोष फैला। उन देशों में हलचल और असन्तोष का एक तूफ़ान आ गया। स्थान-स्थान पर उपद्रव होने लगे। ईराक़ के निवासियों को न तो अङ्गरेज़ों का सैनिक शासन ही सह्य था, और न वे यही सहन कर सकते थे कि अमीर फ़ैज़ल, जो अङ्गरेज़ों

के हाथ की कठपुतली मात्र था, राजसिंहासन पर बैठे। अङ्गरेज़ों के मसूलनगर पर अधिकार कर लेने से तो इस आन्दोलन में और भी एक नई जान आ गई। अन्त में अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि की बातचीत शुरू हुई। बहुत दिनों तक बातचीत होने तथा कई बार सन्धि की शर्तों में उलट-फेर होने के बाद ईराक़ के मन्त्रि-मण्डल ने बहुमत से अङ्गरेज़ों की अधीनता तो मान ली, परन्तु जब मसूलनगर से अङ्गरेज़ी सेना हटने लगी तो वहाँ अनेक अङ्गरेज़ अफ़सरों को क़त्ल कर दिया गया। अब भी ईराक़ में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध आन्दोलन जारी ही है। थोड़े दिन पहिले अङ्गरेज़ों की नीति से तङ्ग आकर तथा नामधारी बादशाह के दब्बूपन से परेशान होकर ही मन्त्रि-मण्डल ने त्याग-पत्र तक दे दिया था।

सीरिया और पैलेस्टाइन में युद्ध के बाद और भी अधिक असन्तोष और उपद्रव की ज्वाला धधकने लगी। वास्तव में ईराक़, अरब, सीरिया और पैलेस्टाइन केवल स्वतन्त्रता के लोभ से ही अङ्गरेज़ों तथा फ़्रान्सीसियों के भड़काने पर तुर्की के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। उनको यह पता न था कि फ़्रान्स अपनी प्राचीन नीति के अनुसार रूम सागर के पूर्वी तट पर कुछ अधिकार प्राप्त करना चाहता था, और इङ्गलैण्ड भारत के मार्ग को निष्कण्टक बनाने के लिए समुद्र-तट पर कुछ भूमि हड़प लेना चाहता था। संस्कृति, भाषा और धर्म के लिहाज़ से सीरिया और पैलेस्टाइन एक ही देश है, लेकिन फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड ने इस देश के दो भाग करके आपस में बाँट लिए। दोनों भागों में ये देश अपने-अपने स्वार्थ के अनुकूल पृथक-पृथक नीति का अनुसरण करने लगे। इन देशों की मुसलमान आबादी को निर्बल तथा अपने पक्ष को सबल बनाने के अभिप्राय से सीरिया में फ़्रेञ्च सरकार यहूदियों को और पैलेस्टाइन में अङ्गरेज़ सरकार ईसाइयों को अनेक सुविधाएँ देकर बसने के लिए उत्साहित करने लगीं। जो यहूदी या ईसाई इन देशों में पहिले से बसे हुए थे उनको सहायता दी जाने लगी। यह स्वाभाविक बात थी कि इस नीति से इन देशों के बहुसंख्यक वास्तविक निवासियों में असन्तोष बढ़ता। परिणाम यह हुआ कि सीरिया में घोर उपद्रव हो गया, जिससे फ़्रान्स को फ़ौजी शासन की घोषणा करनी पड़ी, परन्तु जब इससे भी काम न चला तो दमसकस में वायुयान द्वारा गोले बरसाए गए और मशीनगन, टैङ्क आदि भीषण वैज्ञानिक अस्त्रों द्वारा हज़ारों नर-नारियों का संहार किया गया। कभी समझौता, कभी युद्ध, इस प्रकार कई साल तक यही स्थिति बनी रही। अन्त में फ़्रान्स के आतङ्क से दब कर सीरिया प्रत्यक्ष में तो शान्त हो गया, लेकिन विदेशी शासन के प्रति सीरिया-निवासियों के हृदय में घृणा का बीज मज़बूती से जड़ पकड़ गया है, आज़ादी की तमन्ना उनके दिलों में दिनोंदिन बढ़ती जाती है, और कौन जानता है कि यह तीव्र स्वाधीनताभिलाषा किस दिन भयङ्कर विभीषिका के रूप में प्रगट हो जायगी?

फ़्रान्सीसियों की भाँति अङ्गरेज़ों ने भी पैलेस्टाइन में यहूदियों की संख्या बढ़ाने और उनको नाना प्रकार की सुविधाएँ देकर मुसलमानों का पक्ष निर्बल करने की नीति ग्रहण की—यहाँ तक कि पैलेस्टाइन का प्रथम हाई-कमिश्नर भी एक यहूदी ही बनाया गया। यहाँ के अधिकांश मुसलमान सुन्नी सम्प्रदाय के हैं, जिनको एक यहूदी का शासन सहन न हो सका। इस कारण सम्पूर्ण देश में अशान्ति की लहर फैल गई। सन् १९२२ में जब इङ्गलैण्ड के उपनिवेश-शासन के ढङ्ग की एक व्यवस्थापिका सभा की योजना की गई और उसके लिए सदस्यों का निर्वाचन होने लगा तो मुसलमानों ने असहयोग कर दिया, जिससे वह निर्वाचन न हो सका। इसके बाद अङ्गरेज़ों ने कुछ रिआयतें देकर लोगों को शान्त करना चाहा, लेकिन इससे मुसलमानों को सन्तोष न हुआ। मुसलमानों ने यरूशलम और जफ़्फ़ा में फिर बलवे किए, जो शस्त्र-प्रयोग से ही दबाए जा सके। उसके बाद से अङ्गरेज़ों ने पैलेस्टाइन में नाममात्र के कई सुधार किए हैं। देश की आर्थिक दशा को भी सुधारने के ऊपरी यत्न जारी हैं; किन्तु इससे मुसलमानों को सन्तोष नहीं हो सका है। वे इस समय भी ग़ुलामी के जुए को उतार फेंकने के लिए उत्सुकता के साथ उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पैलेस्टाइन के पास का एक छोटा सा भूभाग अब ट्रान्स जारडेनिया कहलाने लगा है। यह प्रान्त अमीर अब्दुल्ला के अधिकार में है। वहाँ के मुसलमानों का असन्तोष शान्त करने के लिए अङ्गरेज़ों ने अमीर अब्दुल्ला को वहाँ का शासक बना रक्खा है। यहाँ भी अङ्गरेज़ों का आधिपत्य काफ़ी प्रबल है, लेकिन अमीर

अब्दुल्ला की नीतिज्ञता तथा देश की अशिक्षा के कारण यहाँ अभी तक विशेष उपद्रव नहीं हुए हैं। परन्तु नवीन विचार-धारा वहाँ भी पहुँच गई है। वह दिन दूर नहीं मालूम होता जब यह विचार-धारा यहाँ भी विद्रोह और क्रान्ति के रूप में फूट निकलेगी।

एशियाई मुसलमानों की भाँति उत्तरी अफ्रीका की मुस्लिम क़ौमों में भी नवीन जागृति और स्फूर्ति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे हैं। जिस समय तुर्की जर्मनी के साथ हो गया था, उस समय अङ्गरेज़ों ने भारत के जल-मार्ग की रक्षा के निमित्त मिश्र पर क़ब्ज़ा कर लिया और युद्ध की समाप्ति के बाद वे उस पर अपने प्रभुत्व को और भी मज़बूत बनाने का यत्न करने लगे। मिश्र में अङ्गरेज़ों के कई अमानुषिक कृत्यों के कारण पहिले से ही अशान्ति फैली हुई थी। युद्ध की समाप्ति होने पर जब राष्ट्रपति विल्सन ने अपने चौदह सिद्धान्तों की घोषणा की तो मिश्र-वासियों की स्वातन्त्र्य-पिपासा और भी भड़क उठी, और वे अपने देश से विदेशी शासन को मिटा देने की प्रबल चेष्टा करने लगे। समरभेरी बन्द होते ही ज़ग़लुल-पाशा मिश्र के राष्ट्रीय दल का प्रतिनिधि बन कर अङ्गरेज़ी सरकार के सामने मिश्र की माँगें उपस्थित करने के लिए इङ्गलैण्ड गए, लेकिन वहाँ उनकी किसी ने न सुनी। इससे आन्दोलन ने और भी ज़ोर पकड़ा। इस आन्दोलन को दबा देने के अभिप्राय से ज़ग़लुलपाशा को गिरफ़्तार करके माल्टा भेज दिया गया तथा और भी कई प्रकार की सख़्तियाँ की जाने लगीं। परन्तु जनता का असन्तोष निरन्तर बढ़ता ही गया। हज़ारों विद्यार्थियों ने आज़ादी के समर्थन में जुलूस निकाले, विदेशी सरकार ने उन पर गोलियों की वर्षा की; इसके बदले में अङ्गरेज़ी अफ़सरों का क़त्ल हुआ, जगह-जगह हड़तालें हुईं, बलवे होने लगे; मिश्रवासियों की स्वातन्त्र्याभिलाषा इतनी अदम्य हो गई कि सन् १९१९ में परिस्थिति की जाँच करने के लिए लॉर्ड मिलनर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियत किया गया। मिश्र देश के दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने इस कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया। जब यह बहिष्कृत कमीशन इङ्गलैण्ड वापस लौटा तो मिश्र की राष्ट्र-परिषद् ने ज़ग़लुल के नेतृत्व में स्वराज्य की घोषणा कर दी। अन्त में सब तरह से हार मान कर सन् १९२२ में ब्रिटिश सरकार ने कुछ शर्तों के साथ मिश्र की स्वतन्त्रता स्वीकार की। संसार के सभी प्रसिद्ध राष्ट्रों को इस निश्चय की सूचना दे दी गई। परन्तु इतना होने पर भी अङ्गरेज़ों ने मिश्र पर से अपना सैनिक क़ब्ज़ा नहीं हटाया। इससे वहाँ के राष्ट्रीय दल के असन्तोष ने एक बार फिर तीव्र रूप धारण किया और सन् १९२२-२३ में कई अङ्गरेज़ अफ़सर क़त्ल कर दिए गए। मिश्र के षड्यन्त्रकारियों ने १७ मास के भीतर १८ अफ़सरों का बध तथा लगभग ३० को ज़ख़्मी कर दिया। इस कारण षड्यन्त्रियों को पकड़-पकड़ कर फाँसियाँ दी जाने लगीं। साधारण लोगों पर सख़्ती बढ़ी। परन्तु इससे मिश्र की स्वाधीनता के आन्दोलन में ज़रा भी शिथिलता नहीं आई। सन् १९२३ के चुनाव में ज़ग़लुलपाशा के दल का ज़ोर पुनः बढ़ा और वह प्रधान मन्त्री बना दिए गए। उस समय इङ्गलैण्ड में मज़दूर-दल का शासन था। इससे उत्साहित होकर ज़ग़लुलपाशा ने फिर मिश्र की पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकृत कराने के लिए इङ्गलैण्ड जाकर यत्न किया; पर फल कुछ भी न हुआ। इसी बीच मिश्र में अङ्गरेज़ों के प्रधान सेनापति तथा गवर्नर जनरल सर ली स्टेक का क़त्ल हो गया। इससे अङ्गरेज़ों ने मिश्र को ख़ूब रौंदा और अपराधियों को प्राणदण्ड देने के बाद देश से ७५ लाख रुपए जुर्माना भी वसूल किया। परन्तु इससे भी मिश्री स्वाधीनता के आन्दोलन की शक्ति में कमी न पड़ी। यद्यपि इसके बाद भी मिश्र में अङ्गरेज़ों की सेना रहती ही आई और एक प्रकार से आज भी मिश्र पर अङ्गरेज़ों का सैनिक प्रभाव ज्यों का त्यों ही बना हुआ है, परन्तु अभी हाल में मिश्र के साथ इङ्गलैण्ड की जो सन्धि हुई है, उसके अनुसार मिश्री जनता स्वाधीनता के मार्ग पर एक क़दम और भी आगे बढ़ गई है और आशा की जाती है कि वह कुछ ही दिनों में पराधीनता के रहे-सहे बन्धन को भी उतार फेंकेगी।

मोरक्को, अलजीरिया तथा ट्यूनिस पर स्पेन और फ़्रान्स ने वर्षों से दाँत लगा रक्खा था। युद्ध समाप्त होते ही स्पेन और फ़्रान्स ने मोरक्को के दो हिस्से करके आपस में बाँट लिए। इन भागों पर अधिकार जमाने के लिए स्पेन तथा फ़्रान्स की सेनाएँ भेजी गईं और दोनों राष्ट्रों के सेनापति एक के बाद दूसरे ज़िले को जीतते हुए आगे बढ़े। मोरक्को आदि देशों के अशिक्षित

निवासी अधिकांश निर्धन किसान हैं, और जो इने-गिने लोग नवशिक्षित तथा सम्पन्न हैं वे भी यूरोपियनों के पीछे लगे रहते हैं। ऐसी दशा में मोरक्को की रक्षा हो ही कैसे सकती थी ? परन्तु तो भी देशभक्त अब्दुल करीम ने राष्ट्रीय झण्डे के नीचे कुछ सेना एकत्र करके अकेले दो

मोरक्को का बहादुर नेता अब्दुल करीम

उन्नत राष्ट्रों का काफ़ी अर्से तक मुक़ाबिला किया। अब्दुल करीम का यह विराट प्रयत्न राष्ट्रीयता के इतिहास में सदा के लिए अमर रहेगा। एक ओर यूरोप के दो उन्नत राष्ट्रों की सुसज्जित सेनाएँ थीं और दूसरी ओर थी देशभक्त अब्दुल करीम के झण्डे के नीचे खड़ी हुई, पहाड़ी मुसलमानों की एक छोटी सी फ़ौज। इसी छोटी सी फ़ौज के सहारे वीर अब्दुल करीम ने वर्षों तक स्पेन और फ्रान्स दोनों के छक्के छुड़ा दिए थे; परन्तु विशाल सैन्य-समूह के सामने देशभक्तों की मुट्ठी भर फ़ौज कब तक ठहरती ? सन् १९२६ में अब्दुल करीम को आत्म-समर्पण कर देना पड़ा। इसके बाद मोरक्को, अलजीरिया और ट्यूनिस में आततायियों का अनियन्त्रित शासन स्थापित हो गया। इस समय इन देशों के मुसलमान भारतीय मुसलमानों की भाँति निःशस्त्र तथा असहाय हैं, परन्तु वे मुर्दा नहीं हैं। उनमें भी जागृति तथा जीवन आ चुका है।

इस महान राजनैतिक परिवर्त्तन के साथ ही साथ मुस्लिम जगत की परम्परागत शासन-प्रणाली, उसकी सामाजिक रूढ़ियाँ तथा शिक्षा-पद्धति में भी परिवर्त्तन हो रहा है। तुर्की में ख़लीफ़ा के शासन का अन्त करके प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है। ईरान में रिज़ा ख़ाँ ने यद्यपि शाह की उपाधि धारण कर रक्खी है, तथापि वह निरङ्कुश शासक नहीं हैं। उनका राजकार्य एक प्रतिनिधि-मण्डल की सम्मति से होता है। अफ़ग़ानिस्तान में अमीर अमानुल्ला ने स्वयं एक जिरगा (प्रतिनिधि परिषद्) स्थापित किया था, जिससे शासन तथा व्यवस्था में परामर्श लिया जाता था। ईराक़, पैलेस्टाइन, सीरिया, मिश्र आदि देशों में भी अनियन्त्रित शासन

तुर्की की आधुनिक महिलाएँ

का ख़ात्मा हो चुका है। इस प्रकार किसी न किसी रूप में समस्त मुस्लिम जगत में प्रजासत्ता की स्थापना हो गई

है। शासन में प्रजा का हाथ होना इस्लाम के इतिहास में अपूर्व बात है और नवीन जागृति का चिन्ह है।

अफ़ग़ानिस्तान, ईरान तथा तुर्की की सेनाएँ भी पश्चिमी ढङ्ग पर सङ्गठित हुई हैं। वे आधुनिक शस्त्रों का प्रयोग करती हैं। उनकी वरदी और क़वायद भी पश्चिमी
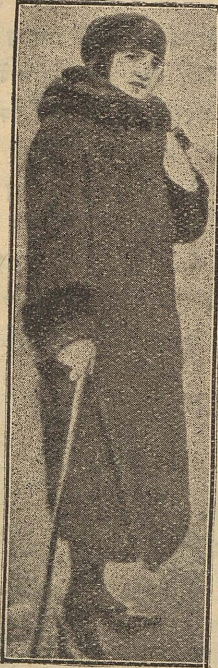
कमालपाशा की सुयोग्य धर्मपत्नी
श्रीमती लतीफ़ा हानूम

ढङ्ग की ही होती है। इन देशों में कई सैनिक कॉलेज खुल गए हैं, जिनमें पश्चिमी ढङ्ग पर शिक्षा दी जाती है। फ़्रान्स, जर्मनी, रूस आदि देशों के रण-विशारद इन कॉलेजों में शिक्षक नियुक्त हुए हैं। अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, तुर्की, मिश्र, इन सब देशों के अनेक विद्यार्थी विज्ञान तथा साहित्य की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पश्चिमी देशों में जाते हैं। क़ुरान को बिना समझे कण्ठाग्र करना, अरबी के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं से घृणा करना, धर्म के अतिरिक्त अन्यान्य उपयोगी विषयों की उपेक्षा करना—आदि बातें मुस्लिम जगत से धीरे-धीरे उठती जा रही हैं, और तुर्की से तो बिलकुल ही उठ गई हैं।

इस अर्से में मुस्लिम महिला-जगत में भी अद्भुत जागृति तथा क्रान्ति हुई है। एक समय तुर्की में स्त्रियों को परदे में बन्द रहना पड़ता था। बाहर जाते समय उनको एक भारी बुर्क़ा पहनना पड़ता था, जिससे उनके अङ्ग के आकार का पता न लग सके। सूर्यास्त के पश्चात कोई स्त्री बाहर नहीं रह सकती थी और न किसी पुरुष के साथ घूम सकती थी, बातचीत करने की तो बात ही क्या? इन नियमों का उल्लङ्घन होने पर उन्हें राज्य से दण्ड दिया जाता था। लेकिन अब स्थिति बिलकुल बदल गई है। तुर्की से परदे का तो नामो-निशान उठ गया है। वहाँ की स्त्रियाँ कॉलेजों में विभिन्न

श्रीमती हालिदा अदीब हानुम
[आपने तुर्की में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में बड़ा काम किया है।]

विषयों का अध्ययन करती हैं, वे अनेक संस्थाओं में काम करती हैं, बाज़ारों में खुले मुँह आज़ादी से घूमती हैं, पश्चिमी पोशाक पहनती हैं, मित्रों से मिलती-जुलती हैं, दावतों में पुरुषों के साथ बैठ कर खाती हैं और नाच-

(शेष मैटर १४६ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

ज़ेवर

[श्री० एफ़० एल० ब्रेनी, एम० सी० ; आई० सी० एस०]

व के अनेक बड़े-बूढ़े, सुकरात को घेर कर बैठे हुए थे, उसी समय उस रास्ते से दो औरतें गुज़रीं। एक के सिर पर पानी से भरा हुआ घड़ा था और दूसरी घास का गट्ठर सिर पर लिए जा रही थी। दोनों ही सिर से पैर तक ज़ेवरों से लदी हुई थीं, उन ज़ेवरों में एक-दो के सिवा सभी चाँदी के थे।

सुकरात ने गाँव वालों से कहा—भाइयो, ज़ेवरों के बारे में मैं आप लोगों के साथ कुछ विचार करना चाहता हूँ। मेरी तो बुद्धि काम नहीं करती। यह मामला कुछ समझ में नहीं आता।

गाँव वाले—क्यों बुद्धिमान्! आपकी उलझन क्या है?

सुकरात—मैं पूछता हूँ, आपकी औरतें गहना क्यों पहनती हैं?

गाँव वाले—आपका यह सवाल भी एक ही रहा! जनाब, गहना तो थोड़ा-बहुत हम सभी पहनते हैं—हम पहनते हैं, हमारे बच्चे पहनते हैं, लड़के-लड़कियाँ दोनों ही पहनते हैं। हाँ, औरतें कुछ ज़्यादा पहनती हैं।

सुकरात—माना, मगर क्यों?

गाँव वाले—इसके बहुत से कारण हो सकते हैं। पहली बात तो यह कि इसका रिवाज है, फिर यह देखने में अच्छा लगता है, इसके सिवा हम और हमारी स्त्रियाँ—दोनों ही, इसे पसन्द करते हैं।

सुकरात—तो आप इसे इसलिए पसन्द करते हैं कि इसका रिवाज है और अगर आप रिवाजों की पाबन्दी न करें तो लोग आपको हँसेंगे? लेकिन मेरा ख़याल है कि कोई चीज़ केवल इसीलिए अच्छी नहीं हो सकती कि उसका रिवाज है?

गाँव वाले—क्यों?

सुकरात—क्योंकि अगर कुछ गाँव वाले चोरी करने का रिवाज बना लें तो क्या आप यह कहेंगे कि चोरी करना अच्छा है?

गाँव वाले—हर्गिज़ नहीं।

सुकरात—तब किसी रिवाज को इसीलिए कि वह रिवाज है—अच्छा तो नहीं कहा जा सकता?

गाँव वाले—नहीं, हम मानते हैं, नहीं कहा जा सकता।

सुकरात—तब तो गहनों की उपयोगिता साबित करने के लिए केवल रिवाज का बहाना करने से काम नहीं चलेगा। दूसरा कोई अच्छा सा जवाब ढूँढ़ना पड़ेगा?

गाँव वाले—तब हम लोग इसे इसलिए पहनते हैं कि यह अच्छा दीखता है।

सुकरात—लेकिन ये औरतें जो अभी यहाँ से गई हैं, आप बता सकते हैं, उन्होंने कितने अरसे से नहीं नहाया था? उनके कपड़े कितने पुराने और गन्दे थे? उन कपड़ों से बढ़ कर पुराना और गन्दा कपड़ा शायद कोई हो ही नहीं सकता। और वह देखिए, वे बच्चे जो वहाँ खेल रहे हैं, उनके हाथ और पैर तो चाँदी के कड़ों से भरे हुए हैं, लेकिन पानी का मुँह उन्होंने कितने दिनों से नहीं देखा, यह बताना मुश्किल है। फिर, उनके कपड़े ही फटे-पुराने चीथड़ों के सिवा और क्या हैं?

गाँव वाले—चाहे कुछ भी हो, लेकिन गहनों से उनकी ख़ूबसूरती कुछ न कुछ ज़रूर ही बढ़ जाती है।

सुकरात—कैसे आश्चर्य की बात है! आप लोग स्वयं भी गन्दे रहते और चिथड़े पहनते हैं तथा अपने घर वालों को भी इसी तरह रखते हैं, जब कि सफ़ाई में कोई ख़र्च नहीं होता और कपड़ों की क़ीमत भी कुछ बहुत ज़्यादा नहीं है। और फिर आप इस गन्दगी को ख़र्चीले गहनों से ढकने की कोशिश करते हैं!

गाँव वाले—लेकिन आप ही कहिए, क्या गहने पहनने से वे सुन्दर नहीं दीखते?

सुकरात—(गुस्से से चिल्ला कर) सुन्दर तो उन्हें ईश्वर ने बनाया है। और आप लोग ईश्वर की रचना को

गन्दगी और चिथड़ों से कुरूप बनाते हैं और फिर उसे गहनों से ढकने की कोशिश करते हैं।

गाँव वाले—आप साहब सचमुच ही हम लोगों को शर्मिन्दा कर देते हैं।

सुकरात—ईश्वर ने आप लोगों के कान में एक छेद किया, इसलिए कि उसके द्वारा आप सुनें और बुद्धि सीखें; लेकिन उसके नीचे बालियाँ पहनने के लिए आप एक दूसरा छेद बना लेते हैं और पहले छेद से जो कुछ सुनते और सीखते हैं, दूसरे से उसे बाहर निकाल देते हैं।

गाँव वाले—हम लोगों की इस तरह धज्जी न उड़ाइए जनाब, हम लोग अपने को सुधारने की कोशिश करेंगे।

सुकरात—और आप इन वाहियात गहनों को जितना ही पहनते हैं, उतनी ही जल्दी ये घिस भी जाते हैं?

गाँव वाले—ज़रूर!

सुकरात—और स्त्रियाँ जितना ही ज़्यादा इन्हें पहनती हैं, उतना ही इनके लिए वे एक-दूसरे से द्वेष करती हैं और अपने मर्दों से अधिक गहने बनवाने की फ़र्मायश भी?

गाँव वाले—ज़रूरी बात है!

सुकरात—तब तो निस्सन्देह जितना ही कम इन्हें पहना जाय, हर हालत में उतना ही अच्छा है?

गाँव वाले—बेशक!

सुकरात—और इन नफ़ीस गहनों को हरदम पहने रहना—घर में या खेत में काम करते समय गन्दे कपड़ों के साथ भी—सबसे बड़ी बेवक़ूफ़ी है। अच्छा तो यह होता कि आप लोग अपने ज़ेवरों को पर्व, मेला या उत्सवों के लिए रख छोड़ते और तभी इन्हें पहनते; जब आपका शरीर साफ़ होता और आपके कपड़े भी धुले हुए तथा स्वच्छ होते।

गाँव वाले—यह बात तो आपने ठीक कही।

सुकरात—और तब, यह मानी हुई बात है कि ये गहने सबसे अधिक शोभा देंगे?

गाँव वाले—देंगे तो; मगर हमारी औरतें तो हरदम इन्हें पहनना चाहती हैं और इनके लिए तक़ाज़ा करने से भी बाज़ नहीं आतीं।

सुकरात—लेकिन अगर वे ज़हर के लिए तक़ाज़ा करें तो क्या ज़हर आप उन्हें दे देंगे?

गाँव वाले—कभी नहीं; आप भी क्या बात कहते हैं!

सुकरात—लेकिन गहने तो वे जितना माँगती हैं, आप उतना ही दे देते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि गहनों को आप भी उतना ही पसन्द करते हैं, जितना वे करती हैं?

गाँव वाले—अगर इसका यह मतलब हुआ तो हम मानते हैं; हम गहनों को पसन्द करते हैं।

सुकरात—तब इस भयानक फ़िज़ूलख़र्ची के लिए आप लोग स्त्रियों को क्यों दोष देते हैं?

गाँव वाले—फ़िज़ूलख़र्ची? इसमें फ़िज़ूलख़र्ची क्या है? गहने आख़िर हमारे ही घर में रहते हैं, वे हमारे घर की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं।

सुकरात—अगर आप सौ रुपए के गहने बनवावें और फिर उन्हें बेचने ले जायँ तो आपको कितने रुपए मिलेंगे?

गाँव वाले—यह बात सोनार की ईमानदारी पर निर्भर है। यदि वह ईमानदार हुआ तो अस्सी रुपए के लगभग मिल जायँगे, नहीं तो साठ या सत्तर तो कहीं गए नहीं हैं!

सुकरात—फिर वे घिसते भी तो हैं? दस वर्ष के

(१४४ पृष्ठ का शेषांश)

वरों में जाती । मिश्र देश की मुसलमान स्त्रियाँ भी तुर्की स्त्रियों की भाँति स्वतन्त्र हैं। अरब, ईराक़ और ईरान में अभी ऐसी स्वतन्त्रता का उदय नहीं हुआ है, लेकिन वहाँ भी स्त्रियाँ स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रही हैं। परदा तो प्रायः सभी देशों में शिथिल होता दिखाई पड़ रहा है। अफ़ग़ानिस्तान में अमीर अमानुल्लाह ने न केवल परदे की प्रथा को तोड़ा था, बल्कि उन्होंने अफ़ग़ानी युवतियों को पश्चिमी देशों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भी भेजा था। इस जागृति में राष्ट्रपति कमालपाशा की सुयोग्य तथा सुशिक्षिता पत्नी श्रीमती लतीफ़ा हानूम, अफ़ग़ानिस्तान की महारानी सूर्या, प्रसिद्ध तुर्की नेत्री हालिदा अदीब हानूम, तथा नूरहमदाबे का बड़ा हाथ है।

* * *

बाद शायद उन ज़ेवरों की क़ीमत बीस ही रुपए रह जायगी?

गाँव वाले—हाँ, घिसते तो ज़रूर हैं।

सुकरात—और अगर चोर आ जाय तो? एक ही रात में सब सफ़ाई समझिए?

गाँव वाले—आपका कहना बिलकुल सच है!

सुकरात—और अगर आपके पास गहने कुछ ज़्यादा हैं तो चोरों के डर से रात में आपको नींद भी नहीं आवेगी। इसी डर से आप लोग अपने मकानों में खिड़कियाँ भी नहीं रखते और इससे आपकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। वाह! आपके गहने कितने क़ीमती हैं!! अब मान लीजिए कि सौ रुपयों के गहने ख़रीदने के बदले, यदि यही रुपया आप को-ऑपरेटिव बैङ्क में जमा कर देते हैं तो दस बरस में वह कितना हो जायगा?

गाँव वाले—लोगों का कहना है कि इतने समय में ये रुपए दो सौ के लगभग हो जायँगे?

सुकरात—तो इसके मुक़ाबले में आपके ज़ेवर कहाँ क़ीमती साबित हुए?

गाँव वाले—सचमुच ही सुकरात जी, हम लोग रिवाजों के ग़ुलाम हो गए हैं।

सुकरात—अच्छा, यह तो बताइए कि जिस समय आपके पास रुपए नहीं रहते और आपकी स्त्रियाँ गहना माँगती हैं, उस समय आप क्या करते हैं?

गाँव वाले—क़र्ज़ लेते हैं!

सुकरात—इसका यह मतलब हुआ कि गहने जैसे-जैसे घिसते हैं, वैसे ही वैसे क़र्ज़ का पहाड़ लगता जाता है?

गाँव वाले—हाँ सुकरात, आपका कहना सोलह आने सच है!

सुकरात—बड़े अफ़सोस की बात है—ऐ जाहिल गाँव वालो!—तुम लोग कब अक़्ल सीखोगे?

गाँव वाले—लेकिन सुकरात जी, हमारा क्या दोष है? हमारी स्त्रियाँ और बच्चे तो बिना गहना लिए एक दिन भी नहीं मान सकते।

सुकरात—मैं समझता हूँ, सुन्दर चीज़ों को हम सभी लोग पसन्द करते हैं और सभी सुखी होना भी चाहते हैं। यह हमारा स्वभाव है; हमारे भीतर जिस स्वर्गीय सत्ता का निवास है, यह उसी की इच्छा है!

गाँव वाले—बस, बस, आपने हमारे मन की बात कह दी और इस तरह कही, जिस तरह हम स्वयं भी नहीं कह सकते थे।

सुकरात—और आप समझते हैं कि गहनों से आपकी यह इच्छा तृप्त हो जायगी?

गाँव वाले—इसके सिवा देहात में हम और कर ही क्या सकते हैं?

(इसी समय एक घोड़ी के साथ उसका बछेड़ा उछलता-कूदता उधर से होकर गुज़रता है।)

सुकरात—देखिए, ये दोनों ही ख़ूबसूरत हैं और ख़ुश भी हैं, और इन्होंने गहना भी नहीं पहना है; इतने पर भी मनुष्य जानवरों से श्रेष्ठ समझा जाता है! क्यों?

गाँव वाले—समझा तो ऐसा ही जाता है, लेकिन सुकरात जी, आपकी बातें सुन कर हम लोगों को इसमें भी सन्देह होने लगा है।

सुकरात—मेरा ख़्याल है कि आप लोगों के बच्चे हमेशा ख़ुश नहीं रहते?

गाँव वाले—नहीं, वे खेलते तो ख़ूब हैं, लेकिन साथ ही साथ वे रोते भी ख़ूब हैं।

सुकरात—वह परिवार सुखी कैसे रह सकता है जो गन्दगी और रोग तथा दुःख और विपत्तियों से घिरा हुआ हो? क्या आप बतला सकते हैं कि जानवर क्यों हमेशा सुखी और सुन्दर रहते हैं; लेकिन आपकी स्त्रियाँ और बच्चे प्रायः न तो सुन्दर रहते हैं और न सुखी?

गाँव वाले—नहीं सुकरात जी, यह हम कैसे बता सकते हैं?

सुकरात—तो क्या मैं बताने की कोशिश करूँ?

गाँव वाले—हाँ, हाँ, यह बात दया करके ज़रूर बताइए।

सुकरात—भाई, मेरा विश्वास है, इसका पहला कारण यह है कि जानवर सफ़ाई से रहते हैं, सफ़ाई से स्वास्थ्य बढ़ता है और स्वास्थ्य से सुख मिलता है। वे खुली हवा में रहते तथा अपने और अपने बच्चों को बहुत ही साफ़ रखते हैं। आप लोग अपने गाँवों को गन्दा रखते हैं, वहाँ हर तरह के कूड़े-कचरे चारों ओर सड़ा करते हैं, जो हवा से उड़-उड़ कर आप लोगों के भोजन तथा पानी में पड़ते हैं और साँस के साथ वे आपके फेफड़ों में भी पहुँच जाते हैं। इन गलीज़ों पर से उड़

कर मक्खियाँ आपके भोजन पर बैठती हैं और फिर वे आपके बच्चों की आँखों और ओठों पर भी बैठती हैं। आप ऐसे अँधेरे और बिना खिड़की के घरों में रहते हैं, जहाँ हवा और रोशनी का पहुँचना भी मुश्किल है। आपकी स्त्रियाँ न तो ख़ुद नहाती हैं और न अपने बच्चों को ही साफ़-सुथरा रखती हैं। आपका स्वास्थ्य कमज़ोर हो जाता है और आप आसानी से मौसमी बीमारियों के शिकार बन जाते हैं। सफ़ाई से रहिए, अपने बच्चों को साफ़ रखिए, कपड़ों को धोया कीजिए, मकानों में खिड़कियाँ बनवाइए, गाँवों की सफ़ाई कीजिए, सफ़ाई से रहने की आदत डालिए और तब आपकी स्त्रियाँ और बच्चे साफ़ रहेंगे, तन्दुरुस्त रहेंगे और इसलिए ख़ुश भी रहेंगे।

गाँव वाले—साहब, आप तो बड़े कठोर हैं। हम लोग एक साथ इतनी बातें नहीं कर सकते।

सुकरात—क्या मैंने कोई ऐसी बात कही है, जिसमें रुपया ख़र्च करना पड़ता है?

गाँव वाले—नहीं, बिलकुल नहीं।

सुकरात—इसके लिए तो केवल शक्ति और इच्छा चाहिए और यही आप लोगों में नहीं है।

गाँव वाले—हाँ सुकरात जी, आपका यह दोषारोपण बिलकुल सच है।

सुकरात—सच्ची बात तो यह है कि इस उपाय से आपके धन की बचत होगी, क्योंकि यदि आप हमारी सलाह मानेंगे तो आपको इन वाहियात गहनों की इतनी अधिक ज़रूरत ही न पड़ेगी।

गाँव वाले—हाँ साहब, यह बात तो आपने ठीक कही।

सुकरात—साफ़ और तन्दुरुस्त स्त्री-बच्चे बिना गहनों के भी उन गन्दी स्त्रियों और बच्चों के मुक़ाबले, जिनका शरीर गहनों से लदा हुआ हो, कहीं ज़्यादे अच्छे और सुन्दर दीखेंगे, या इसमें भी कोई सन्देह है?

गाँव वाले—नहीं, कोई नहीं।

सुकरात—और इस तरह जिस रुपए की बचत हो उसमें से कुछ रुपए आप अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने, उनकी बीमारी में कुनैन और दवा ख़रीदने तथा बरसात में उनके लिए मसहरी बनवाने में क्यों न ख़र्च करें?

गाँव वाले—सुकरात जी, यह तो आपने ऐसी बात कही, जिसे जाहिल भी समझ जायँगे, लेकिन मुश्किल तो यह है कि औरतें हमेशा गहने ही माँगती हैं।

सुकरात—गहने उन्हें ज़रूर दीजिए, लेकिन उचित मात्रा में दीजिए और तब दीजिए जब उनके लिए आपको क़र्ज़ लेने की ज़रूरत न पड़े। भाइयो, मैं तो इन चीज़ों का विरोधी नहीं हूँ।

गाँव वाले—लेकिन इससे तो उन्हें सन्तोष न होगा।

सुकरात—क्यों?

गाँव वाले—क्योंकि वे बहुधा अपने घरों में कोई सुख नहीं पातीं, घर में उनका कोई अधिकार नहीं होता। ऐसी हालत में वे स्वभावतः ही यह सोचती हैं कि यदि वे गहनों से लदी रहेंगी तो उनका पति उनकी अधिक इज़्ज़त करेगा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करेगा, क्योंकि ख़्वाह-म-ख़्वाह उसे इस बात का डर बना रहेगा कि ऐसा न करने से उसकी स्त्री भाग जायगी और अपने साथ ही गहनों को भी लेती जायगी। इसके सिवा, संयोग से यदि कहीं वह विधवा हो गई, तो ये गहने ही उसके जीवन के एकमात्र आधार होते हैं।

सुकरात—तब तो शायद स्त्रियों की एकमात्र सम्पत्ति उनके गहने ही हैं?

गाँव वाले—इसमें क्या शक!

सुकरात—तब इसीसे वे सोचती हैं कि जब, जो कुछ प्राप्त कर लिया जा सके उतना ही अच्छा है और इसीसे गहनों के लिए वे आपको तङ्ग भी करती हैं?

गाँव वाले—हाँ, बात तो यही है।

सुकरात—तब तो उनके गहने, उनके पतियों की नेकचलनी के लिए एक तरह की ज़मानत हैं?

गाँव वाले—माफ़ कीजिए सुकरात जी, आज तो आप हम लोगों को बहुत ही शर्मिन्दा कर रहे हैं।

सुकरात—तो शायद, आप लोग अपनी स्त्रियों की कुछ इज़्ज़त भी नहीं करते?

गाँव वाले—नहीं, हम क्यों करेंगे? वे हमारी इज़्ज़त करती हैं।

सुकरात—और शायद आप लोग स्त्रियों का कुछ अधिक महत्व भी नहीं समझते?

गाँव वाले—नहीं, बिलकुल नहीं।

सुकरात—आप लोग स्त्रियों से ही तो पैदा हुए थे?

आपके बच्चे भी स्त्रियों से ही पैदा हुए थे और आपकी लड़कियाँ आपके नातियों की माताएँ होंगी ? क्यों ?

गाँव वाले—हाँ !

सुकरात—तब स्त्रियाँ आप लोगों का ही एक अंश हुईं न ?

गाँव वाले—हाँ !

सुकरात—और यदि वे सम्मान के योग्य नहीं हैं तो आप और आपके बच्चे और आपके नाती-पोते भी सम्मान के अधिकारी नहीं हैं ?

गाँव वाले—मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुकरात—अच्छा, यह तो बतलाइए, क्या आप अपने बच्चों को प्यार करते हैं ?

गाँव वाले—बहुत ज़्यादा !

सुकरात—और तब भी आप उस आदमी से घृणा और अपमान का बर्ताव करते हैं जिस पर आपके बच्चों की ज़िम्मेदारी है, जिसके द्वारा वे पाले-पोसे जाते हैं, जिससे उन्हें अपने जीवन की सबसे अधिक कोमल और महत्वपूर्ण अवस्था में शिक्षा मिलती है और उनके चरित्र का निर्माण होता है ? आप ही देखिए, आपका यह व्यवहार कितना मूर्खतापूर्ण है ? सच पूछिए तो आप जितने सम्मान के योग्य हैं, उससे कहीं ज़्यादा सम्मान और आदर के योग्य आपकी स्त्रियाँ हैं, क्योंकि आपके बच्चों के जन्म, उनके पालन-पोषण, आपकी जाति के निर्माण तथा घर के प्रबन्ध का सारा भार उन्हीं पर है।

गाँव वाले—आपका कहना सच है।

सुकरात—वास्तव में इन सभी कामों में वे आपका हाथ बटाती हैं और इसलिए आपके जीवन की सहधर्मिणी हैं।

गाँव वाले—ज़रूर हैं।

सुकरात—तब यदि आप उनके साथ सहधर्मिणी के जैसा व्यवहार करें, वे जिस आदर के योग्य हैं, उनका वैसा आदर करें और उन्हें शिक्षा दें, जिससे वे यह सीख सकें कि बच्चों का पालन-पोषण भली प्रकार कैसे करना चाहिए, तो शायद वे आपसे अधिक गहने न माँगेंगी, बल्कि अपने सुन्दर और तन्दुरुस्त बच्चों तथा सुखी परिवार को लेकर ही सन्तुष्ट रहेंगी।

गाँव वाले—सुकरात, आप जो कहते हैं, उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

सुकरात—क्या आप लोग यह समझते हैं कि आपके बच्चे तथा आपके जानवरों के बच्चे—ये ही दोनों चीजें ऐसी हैं जिन्हें ईश्वर ने सुन्दर बनाया है ?

गाँव वाले—नहीं, ईश्वर ने फूल भी बनाए हैं।

सुकरात—तब मैं समझता हूँ, आप लोगों के घर फूलों से भरे हुए होंगे, क्योंकि सुन्दर वस्तुओं से आप लोगों को बहुत प्रेम है, यहाँ तक कि उनके लिए क़र्ज़ लेने में भी आप सङ्कोच नहीं करते ?

गाँव वाले—(हँसते हुए) नहीं जी, हम लोग फूलों को लेकर क्या करेंगे ?

सुकरात—इसका तो यह मतलब हुआ कि आप लोग सुन्दर वस्तुओं से वास्तव में प्रेम नहीं करते ?

गाँव वाले—नहीं, हम करते तो हैं, लेकिन हम लोगों को फूल के पौधे लगाने का अवकाश ही नहीं मिलता और न हम यही जानते हैं कि फूल लगाए किस तरह जाते हैं तथा उनके बीज कहाँ मिलते हैं ?

सुकरात—अगर आपको अवकाश नहीं मिलता तो आपकी वे साथिनें जो घर के सभी कामों में आपका हाथ बटाती हैं, इस काम को क्यों नहीं सीखतीं ? मेरा विश्वास है कि फूल के कुछ पौधे लगा कर घर की शोभा बढ़ा देने के लिए उन्हें अवश्य ही समय मिल जायगा। किसी भी भली स्त्री को अपने घर को सजाने और सुन्दर बनाने के लिए काफ़ी समय मिल सकता है ! मैं आपको यह भी सलाह देता हूँ कि यदि इतने पर भी आपकी स्त्रियाँ और लड़कियाँ गहना चाहती हैं तो उन्हें लड़कपन में सिलाई और कसीदे का काम सिखाइए, जिससे वे अपनी लड़कियों को भी यह सब सिखा सकें। यदि आप ऐसा करें तो वे आपके रुपयों को गहनों में बरबाद करने के बदले, सिलाई और क़सीदे की सुन्दर चीज़ें बनाने और फूलों के सुन्दर पौधे लगाने में एक-दूसरे का मुक़ाबला करने लगें। और तब गाँव या मुहल्ले की औरतों का मुखिया वह स्त्री होगी, जो सबसे बुद्धिमान और प्रवीण होगी, न कि वह जिसके पति के पास सोनार का सबसे लम्बा हिसाब पहुँचा करता हो।

गाँव वाले—हे सुकरात, हम लोग ऐसा करने की कोशिश करेंगे।

सुकरात—इन सब बातों से परिणाम यह निकला कि आपको अपनी स्त्रियों को शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें

इज़्ज़त के साथ रखना चाहिए, उनके साथ सहधर्मिणी के योग्य व्यवहार करना चाहिए, घर को सुन्दर तथा बच्चों को साफ़ और स्वस्थ रखने में उनकी मदद करनी चाहिए, उन्हें ऐसी कारीगरी सिखानी चाहिए जिससे वे स्वयं अपने को तथा अपने बच्चों को सुन्दर बना सकें। उन्हें घरों में फूल लगाना भी सिखाना चाहिए। आपको अपने गाँवों को स्वच्छ तथा आदमियों के रहने के योग्य बनाना चाहिए। तब आपको गहनों की बहुत कम ज़रूरत पड़ेगी और तब बजाय इसके कि एक ओर गहने घिसें और दूसरी ओर आप पर क़र्ज़ का पहाड़ लदता जाय, आप अपने बचे हुए रुपए बैङ्क में रख सकेंगे और उन्हें प्रति वर्ष बढ़ते हुए देखेंगे। इन सबका परिणाम यह होगा कि आपका और आपके परिवार का जीवन सुख और समृद्धि से भर जायगा।

गाँव वाले—महात्मन्, आपके उपदेश सचमुच बड़े उपयोगी हैं! हम लोग उनके अनुसार कार्य करने की कोशिश अवश्य करेंगे, लेकिन इसमें शक नहीं कि इन सब कामों को, लगातार कई वर्षों के निरन्तर परिश्रम के बाद भी, सफलतापूर्वक कर डालना बहुत आसान नहीं है।

पुरुष-समाज
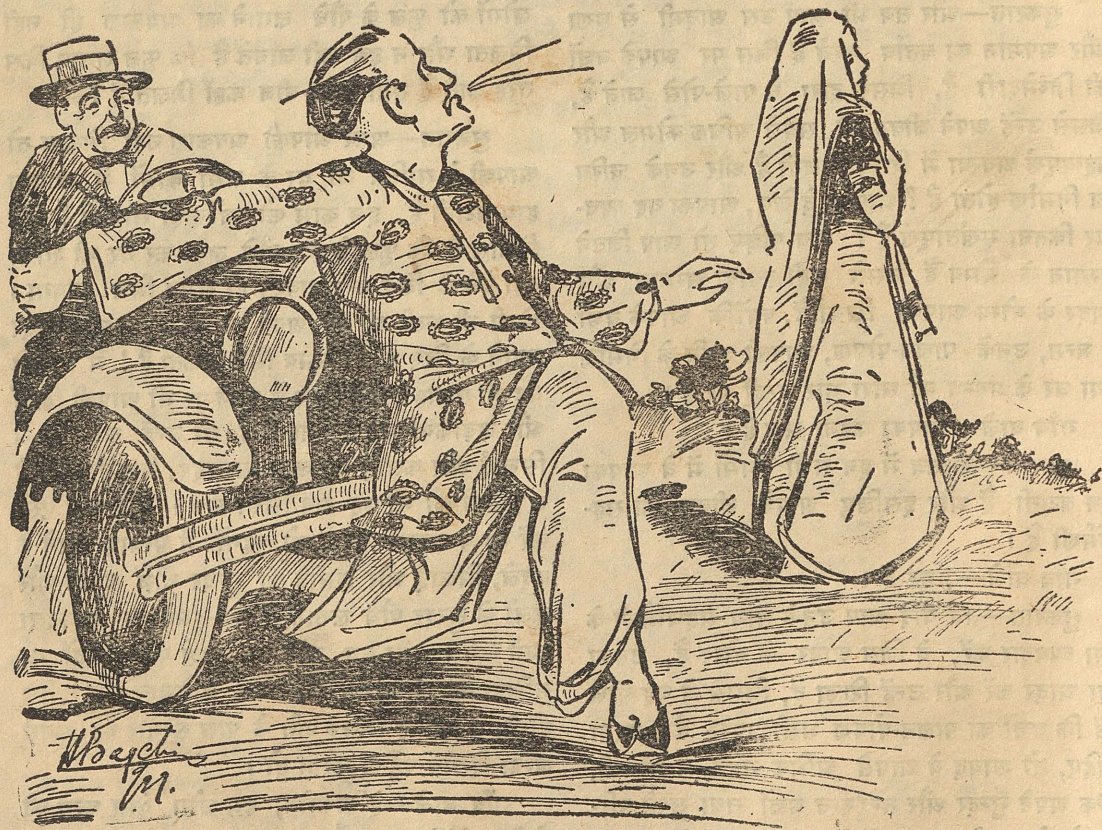
स्त्री-जाति और शिक्षा

[श्री० मोहनलाल महतो गयावाल, 'वियोगी']

A country needs nothing so much to promote its regeneration as good mothers.

—*Napoleon*

स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर है।

—अरस्तू

स्त्री-शिक्षा के विषय में अब तक मतभेद ही चला आ रहा है। अनेक महानुभावों की राय है कि स्त्रियों के शिक्षित होने से समाज की हानि है, क्योंकि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर 'बिगड़' जायँगी, जिसके परिणाम-स्वरूप समाज में विप्लव हो जायगा। ऐसा कहने वालों का अभिप्राय यह होता है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर पुरुषों को कुछ न समझेंगी, वे स्वाधीन हो जायँगी और बात-बात में अपने अधिकार के लिए पुरुषों से लड़ा करेंगी। इस प्रकार 'स्त्री-शिक्षा' के विरोधियों के अनेक बेसिर-पैर के तर्क हैं। किन्तु यह तो हुई एक पक्ष की बात। दूसरे पक्ष के महानुभावों का कहना है कि स्त्री-जाति को बिना शिक्षित बनाए देश का उद्धार हो ही नहीं सकता।

इस विषय पर अपनी ओर से कुछ कहने के पहले हम यहाँ कतिपय नए-पुराने उद्धरण उपस्थित करना चाहते हैं, जिससे इस सम्बन्ध में हमें भिन्न-भिन्न समय के विचारों का पता लग सके और हम स्वयं भी उन विचारों के प्रकाश में अपने लिए एक उदार दृष्टिकोण बना सकें।

वेदों में ऐसा वर्णन मिलता है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी वेद-सूक्तों की रचना करती थीं (ऋग्वेद—१।२२।३) जिनका पाठ करके आजकल पुरुषगण अपने को धन्य समझते हैं।

इस सम्बन्ध में विदुषी विश्ववारा का, जिन्होंने अनेक सूक्त रचे थे, नाम विशेष उल्लेखनीय है। वेदों में स्त्रियों का ऐसा भी वर्णन आया है कि स्त्रियों को शिक्षिता होना चाहिए। अथर्ववेद (१४।२।७२) में कहा है:—

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना।
दीर्घायुत्वाय शत शारदाय॥

अर्थात्—"स्त्रियों को दीर्घायु और उत्तम विद्या प्राप्त करनी चाहिए।"

सनातनधर्मी स्वामी दयानन्द ने प्राचीन परम्परा का उल्लेख करते हुए 'सत्यार्थ-विवेक' में लिखा है:—

पुरा कल्पेतु नारीणां मौञ्जीवन्धनमीष्यते।
अध्यापनञ्च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥

अर्थात्—"प्राचीन मर्यादानुसार स्त्रियों का भी उपनयन होता था, उन्हें गायत्री का उपदेश दिया जाता था और वे वेदों को भी पढ़ती थीं।"

वैदिक युग में स्त्रियों की दशा के सम्बन्ध में डॉक्टर एनीबिसेण्ट ने अपनी पुस्तक "Wake up India" में लिखा है—

In that age of splendid achievements and lofty spriruality women were equals of men; trained and cultured and educated to the highest point.

भावार्थ यह कि वैदिक काल में स्त्रियाँ सब प्रकार से पुरुषों के समान थीं; वे शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च सतह तक पहुँची हुई थीं।

महाभारत में द्रौपदी के वर्णन में 'पण्डिता' शब्द का प्रयोग हुआ है—प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता (वनपर्व, अध्याय २७)।

रामायण में जानकी और अनुसूया की कथा लिखी है। अनुसूया का भाषण इतना पाण्डित्यपूर्ण है कि उसे पण्डिता कहने के लिए लाचार होना पड़ता है।

इतना ही क्यों, गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती, मण्डन मिश्र की पत्नी और न जाने और कितनी ही विदुषी देवियों के चरित्र हमारे जातीय इतिहास की उज्ज्वलतम सामग्रियों में से हैं।

पुराण में भी लिखा है—"कन्याऽप्येवं पालनीया रक्षणीयाऽति यत्नतः।"

अर्थात्—"पुत्र की तरह कन्या का भी यत्न से पालन करना और उसे शिक्षा-दान देना चाहिए।"

इन अनेक प्रमाणों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि हमारे यहाँ स्त्री-शिक्षा का प्रचार आज से पहले—बहुत दिन पहले—भी था और अच्छी तरह था।

परन्तु खेद की बात है कि प्राचीन काल में हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का जितना ही अधिक प्रचार था, आजकल उसका उतना ही अधिक ह्रास हो रहा है। इसे देश के दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहा जा सकता है? लिखते दुःख होता है कि इस समय भारत में फ़ी हज़ार केवल छः स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हैं। भला इस पतन का भी कोई ठिकाना है!!! इससे बढ़ कर देश की दुर्दशा और हो ही क्या सकती है? सब से बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इतने पर भी हमारा समाज चेतने का नाम नहीं लेता।

एक ओर है स्त्रियों की शिक्षा-विहीनता का यह भयावह दृश्य और दूसरी ओर है उनके उत्तरदायित्वों का विशाल समूह। भला ऐसी अवस्था में उनसे यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे अपने गम्भीर उत्तरदायित्वों को यथोचित रूप से निभा सकेंगी? किन्तु अङ्गरेज़ी भाषा में स्त्री को पुरुष का उत्तमार्द्ध (Better half) कहते हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों में भी इसी आशय के वचन पाए जाते हैं। दायभाग (११-११-१) में लिखा है:—

शरीरार्द्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्य फले समा।

महाभारत (आदिपर्व, अध्याय ७४) में भी यही बात कही गई है—

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।

मनुसंहिता में लिखा है—

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराज समृजत्प्रभुः॥

अर्थात्—"सृष्टि के समय परमात्मा ने अपने शरीर के दो भाग कर दिए, एक भाग पुरुष बन गया और दूसरा स्त्री, और पुरुष तथा स्त्री—दोनों में ही उनकी विराट् सृष्टि की लीला का विस्तार हुआ।"

उपरोक्त प्रमाणों से मालूम होता है कि पत्नी, पति का आधा शरीर है। ऐसी दशा में पति विद्वान और पत्नी मूर्ख हो, तो यही समझना चाहिए कि पुरुष का आधा अङ्ग सूख गया है। किसी अङ्गरेज़ विद्वान का कथन है:—

A fountain can not send forth at the same place both sweet water and bitter.

एक ही झरने से मीठा और खारा—दोनों प्रकार का पानी नहीं निकल सकता। बात बिलकुल सच्ची है। यदि हमारे मुँह की दाहिनी कोर में विद्वत्ता की स्फूर्ति हो और बाएँ में मूर्खता का शैथिल्य और ऐसी अवस्था में हम सुन्दर लच्छेदार भाषा बोलने का प्रयत्न करें, तो सम्भवतः हमारे मुँह से कोई शब्द ही स्पष्ट नहीं निकल सकेगा। हम ऊँट की तरह केवल बलबला कर रह जायँगे। क्योंकि ओंठ के दोनों सिरों का समान रूप से स्फुरित होना दोनों ओर की कोरों की उत्तेजना पर निर्भर है। यही दशा हमारे समाज की भी है। उसका आधा अङ्ग साफ़-सुथरा, परिष्कृत और तेज़ है, परन्तु दूसरा आधा, मलिन, दुर्बल और सुस्त। भला ऐसी अवस्था में सुधार की कहाँ तक गुञ्जायश होगी? जहाँ प्राचीन काल में स्त्रियाँ पुरुषों की अर्द्धाङ्गिनी थीं, वहाँ आजकल वे सुहागिनी मात्र रह गई हैं। जब तक हम स्त्रियों को सचमुच अर्द्धाङ्गिनी न बना लेंगे, तब तक हमारा अङ्ग पूर्ण कैसे होगा तथा उसमें यह क्षमता कैसे उत्पन्न हो सकेगी कि वह दूसरे आधे अङ्ग की किसी रूप में सहायता कर सके।

प्रकृति का कार्य-साधन दोनों के संयोग से होता है। तरल, तरल से बड़ी ख़ूबी से मिल सकता है, किन्तु ठोस और द्रव का कोई मेल नहीं है। इससे जो गुण हममें है, स्त्रियों में भी उसका विकास होना चाहिए। तभी संयोग पूर्ण होगा, अन्यथा यह तो दुर्योग का ही रूप धारण करेगा।

आठ मार्च, १९२३ ई० को अहमदाबाद में गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ की नींव डालने के अवसर पर आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने भाषण देते हुए कहा था—"हमने स्त्रियों को शिक्षा न देकर भारी भूल की है। जिस अन्ध-परम्परा के कारण अछूतों का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हो गया है, उसीके कारण स्त्री-शिक्षा का विरोध भी हो रहा है। यह अवस्था दुःखमय है। राष्ट्रीय शिक्षण-

संस्थाओं में भी बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध अभी तक नहीं किया गया है, जो शीघ्र होना चाहिए। बिना स्त्रियों की शिक्षा के पुरुषों में पूर्णता आ ही नहीं सकती, न राष्ट्र का कल्याण ही हो सकता है।"

हर्ष है कि स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता समझ कर विद्वत्समाज का ध्यान कुछ-कुछ इस ओर आकृष्ट होने लगा है। मगर आजकल स्त्री-जाति को जैसी शिक्षा दी जाती है, दूसरे शब्दों में आजकल स्त्री-जाति को शिक्षा देने में जो पद्धति काम में लाई जाती है, वह सर्वथा ज़हरीली है। उससे लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सम्भावना है।

कारण स्पष्ट है। पश्चिमी शिक्षा का अनोखा रङ्ग जब स्त्रियों पर चढ़ जाता है, तब उनके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। यदि कोई भारतीय ललना सवेरे उठते ही कुर्सी पर बैठ कर चम्मच की सहायता से चाय पीने और बिस्कुट खाने लग जाय या बच्चों की सेवा-शुश्रूषा की ज़रा भी परवाह न कर तथा गृह-प्रबन्ध को "केवल समय नष्ट करने वाला झञ्झट" कह कर 'स्टेट्समैन' या 'लिबर्टी' के पन्ने उलटना प्रारम्भ कर दे तो हमारा गार्हस्थ्य जीवन कैसा हो जायगा? इसके अतिरिक्त हमारे माता-पिता ऐसी सर्वगुण-सम्पन्ना बहू पाकर कौन सा सुख पावेंगे? आजकल के कुछ स्त्री-पुरुष हमारी इस दलील को थोथी बतावेंगे और शायद इस प्रश्न के उठाने पर ही आपत्ति करेंगे, लेकिन हम उनसे भी एक बात कह देना चाहते हैं। पश्चिमी रहन-सहन हमारे देश से एकदम भिन्न है। उन्हें उनकी चाल शोभा देती है, हमें हमारी। हम भारतीय हैं। हमारा धर्म अलग; हमारे आचार-विचार भिन्न हैं। भला हमारे लिए पश्चिमीय सभ्यता और रहन-सहन कैसे उपयुक्त हो सकती है? अगर बन्दर के धड़ से गधे का सिर जोड़ दिया जाय तो वह विधाता के रचना-वैचित्र्य का परिचायक भले ही हो जाय, पर वह बन्दर नहीं कहा जा सकता। यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो जिस समय हमारे पवित्र घरों में बी० ए०, एम० ए० पास गृहस्वामिनी के "लेडी शू मण्डित चरणद्वय" अपने धीर-मन्थर पदविक्षेप से इतस्ततः परिभ्रमण आरम्भ कर देंगे, उस समय घरों में निरन्तर वास करने वाले देवगण भयभीत होकर भाग खड़े होंगे। दूसरी बात यह है कि पश्चिम की ठण्ढी और स्वतन्त्र हवा में पली हुई, बी० ए०, एम० ए० की डिग्री-धारिणी देवियों में अभिमान की प्रचण्डता न हो, यह ज़रा मुश्किल से समझ में आने वाली बात है। और अभिमानिनी स्त्री परिवार को कहाँ तक प्रसन्न रख सकती है, यह विचारने की बात है।

भारतवर्ष की गृहस्थ रमणी को साधारणतः द्रव्योपार्जन नहीं करना पड़ता। अतएव वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अनुसार उनकी शिक्षा की व्यवस्था हानिकर और अनुचित है। किताबों का कीड़ा बनाने की अपेक्षा यदि उन्हें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया जाय, तो वे जीवन में कहीं अधिक सफल और सुगृहिणी हो सकती हैं। अधिकार और समानता के प्रश्न भावुकता से भरे हुए हैं। व्यावहारिक जीवन में न तो उनका कोई मूल्य है और न कोई उपयोगिता। पुस्तक का ज्ञान भी आवश्यक ही है, लेकिन हमारे देश में शिक्षा की जो वर्तमान प्रणाली है, वह हानिकर और दूषित है। वह किसी प्रकार वाञ्छनीय नहीं है। उसमें तो परिवर्त्तन होना ही चाहिए।

हाँ, स्त्रियों के हृदय में प्रचुर विद्या भर देनी चाहिए, क्योंकि "स्त्रियों के द्वारा ही प्रकृति पुरुषों के हृदय पर लिखती है—"

It is by ladies that nature writes upon the hearts of men.

जिस कुलाङ्गना के हृदय-पट पर विद्या की एक उज्ज्वल रेखा न होगी, वह भला दूसरों के हृदय पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों के अतिरिक्त और लिख ही क्या सकती है? इसके सिवा यदि हमारी गृहस्वामिनी शिक्षित रहेगी तो उसकी सन्तान अपढ़ हो ही नहीं सकती।

यह समझना भारी भूल है कि सन्तान की शिक्षा का भार पिता के सिर पर है, हमारा यथार्थ शिक्षक—कम से कम चरित्र-गठन के विषय में—तो माता ही है। हमारी शिक्षा, पाठशाला में जाने के बहुत दिन पहले

माता की गोद से

ही शुरू होती है। माता का हर एक वाक्य और मुख-भङ्गी हमारे बचपन के कोमल हृदय में सदा के लिए नए-नए भाव अङ्कित कर देती है। इसके सिवा, स्वामी

के समग्र परिवार का सुख भी स्त्री के ऊपर ही निर्भर है। घर की बहू कुछ दिनों के बाद मालकिन या पुरखिन होती है। उसी की गृह-कर्म-निपुणता और सबसे मिल कर चलने के कौशल से गृहस्थ का कल्याण होता है।

यस्यास्ति भार्या पठिता सुशिक्षिता
गृह क्रिया कर्म सुसाधने क्षमा।
स्वजीविकां धर्म धनार्जनं पुनः
करोति निश्चिन्तमथो हि मानुषः॥

अर्थात्—"जिसकी भार्या अच्छी पढ़ी-लिखी और घर के कामों में चतुर होती है, वह पुरुष अपनी जीविका, धन और धर्म का संयम अच्छी तरह से कर सकता है।"

महाभारत की यह कथा प्रसिद्ध है कि एक समय युधिष्ठिर के यह प्रश्न करने पर कि माता और पिता इन दोनों में कौन बड़ा है, मार्कण्डेय ने कहा था—राजन्!

मातृस्तु गौरवं दत्ते पितरन्ये तु मेनिरे।
दुष्करं कुरुते माता विवर्द्धयति या प्रजा॥

अर्थात्—"कोई माता को बड़ा मानता है कोई पिता को, मगर मेरी सम्मति में माता सबसे बड़ी है, क्योंकि वह सन्तान को बढ़ाने का दुष्कर कार्य करती है।"

माता के द्वारा ही सन्तान का उत्कर्ष होता है। ऐसी दशा में यदि माता सुशिक्षिता हो तो सन्तान का उत्कर्ष और अच्छी तरह हो सकता है।

स्त्री-जाति चाहे कितनी भी स्वार्थ त्यागिनी तथा सत्यवती क्यों न हो, परन्तु पुरुष-समाज में उसका सम्मान नहीं होता। क्यों नहीं होता? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का यही उत्तर है कि—"आपसे उसकी कोई समानता नहीं है।" जन्म से ही उसके अज्ञान न होने पर भी आपने उसे शिक्षा न देकर

अज्ञान के अन्धकार में

डाल दिया है। महाकवि शेक्सपियर ने भी स्त्री-जाति के मूर्ख रहने का पाप पुरुषों के सिर पर ही लाद दिया है। आपका कथन है कि—"यदि फूल मुरझा जाय तो उसका क्या अपराध है? यह अपराध तो ठण्ढी हवा और पाले का है, जिन्होंने उसे सुखा दिया। यदि स्त्रियाँ निर्बल और अशिक्षिता हैं तो यह अपराध पुरुषों का है। यदि उनमें बुराइयाँ हैं तो इसके उत्तरदाता पुरुष ही हैं। ये अभिमान के पुतले और आचार के शत्रु अपनी निन्दनीय बुराइयों से उनके कोमल हृदयों को प्लावित कर देते हैं।"

कविवर शैरिडन (Sharidan) की राय है कि—"स्त्रियाँ हम पर राज्य करती हैं, इस कारण हम उन्हें जितना निपुण बनावेंगे, हम स्वयं उतने ही प्रवीण होंगे। अनेक बार ऐसा देखा गया है कि सुशिक्षिता पत्नी के कारण उसकी उच्च शिक्षा का प्रभाव उसके स्वामी पर भी पड़ा है।" हम ऊपर कह आए हैं कि प्रकृति स्त्रियों के द्वारा ही पुरुषों के हृदय पर लिखती है। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदास की पावन कथा तथा महाकवि कालिदास का जीवन-चरित्र हमारे पढ़े-लिखे पाठकों से छिपा नहीं है। इन दोनों महानुभावों का प्रारम्भिक जीवन कितना अन्धकारमय था, यह बताना न होगा। साथ ही यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि इनकी स्त्रियाँ इन्हें इतनी गरमागरम शिक्षा न देतीं तो शायद ये इस महान पद पर पहुँच भी न सकते। हमारे इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं।

हमारे ग्रन्थों में सत्सङ्ग का अच्छा गुणगान मिलता है। महाराजा भर्तृहरि जी ने कहा है कि—अरे! भाई, तुम्हें चाहे जो पसन्द हो, मगर मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है:—

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजन सम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥

—नीतिशतक १४

जनाब शेख़ सादी साहब ने भी ऐसा ही फ़र्माया है:—

पाए दर ज़ञ्जीर पेशे दोस्ता।
बहके वा बेगानगाँ दर बोस्ताँ॥

—गुलिस्ताँ

किसी ज़माने में अङ्गरेज़ों की गवाही बड़े काम की होती थी। अतः हम एक अङ्गरेज़ सज्जन को भी गवाही के लिए हाज़िर करते हैं:—

The company of fools may at first make us smile, but at last never fails of rendering us melancholy.

—*Goldsmith*

अर्थात्—"मूर्खों की सङ्गति आरम्भ में यदि हमें हँसा भी दे तो अन्त में वह हमें ग़मगीन बनाए बिना न रहेगी।"

बाइबिल में लिखा है :—

He that walketh with wise men shall be wise; but a companion of fools shall be destroyed.

जो बुद्धिमानों की सङ्गति करता है, वह निश्चय ही बुद्धिमान हो जायगा, किन्तु मूर्खों के साथ रहने वाला अवश्य ही नष्ट होता है।

ऊपर जितने महापुरुषों के 'स्वर्णवाक्य' उद्धृत किए गए हैं उनमें से एक ने भी यह नहीं कहा कि मूर्ख पुरुष की सङ्गति से मूर्ख पुरुष नष्ट होता है—स्त्री नहीं। बल्कि उक्त महानुभावों का कथन स्त्री-पुरुष दोनों जातियों पर बराबर—एक रूप से लागू है। अतः मूर्ख-सङ्ग सर्वथा परित्याज्य है। अब विचारणीय बात यह है कि यदि हमारी चिरसङ्गिनी भार्या मूर्ख हुई तो फिर हमारे सर्वनाश में क्या विलम्ब है?

इस संसार में जितनी वस्तुएँ हैं उनमें से बहुत सी हमारे व्यवहार में भी आती हैं। किन्तु विद्या-चक्षु के बिना इन चर्म-चक्षुओं के द्वारा हम उनका यथार्थ रूप नहीं देख सकते।

क़ाग़ज़ को ही लीजिए। सोना-चाँदी के द्वारा कुछ इसका निर्माण नहीं होता, बल्कि उन फटे-पुराने चिथड़ों-लत्तों से होता है, जिन्हें आप अपने घरों से बाहर अनावश्यक समझ कर फेंक देते हैं! क्या यह काम विद्या का नहीं है? फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि ऐसी "कल्पलतेव विद्या" स्त्री-जाति को बिगाड़ देगी? पर हाँ, स्त्रियों के अपढ़ रहने से हमारी हानि हो सकती है, होती भी है। मान लीजिए किसी का बच्चा बीमार है। उस रुग्ण बच्चे के लिए डॉक्टर साहब ने दवा भेजी है। दुर्भाग्यवश दवा ऐसी जगह रक्खी गई जहाँ पहले से टिञ्चर आइडिन की एक शीशी रक्खी है। इस दशा में अगर बच्चे की माँ अपढ़ हुई, तो दवा के बदले बच्चे को टिञ्चर पिला देने में उसे कितनी देर लगेगी? इसी प्रकार की, या इससे मिलती-जुलती घटनाएँ अनेक बार देखी गई हैं।

स्त्री-शिक्षा के शत्रुओं के अनेक बेसिर-पैर के तर्कों में से एक तर्क यह भी है कि "स्त्रियाँ लिख-पढ़ कर बिगड़ जाती हैं।" बिगड़ जाती होंगी! मगर हम नहीं समझते कि कैसे बिगड़ जाती हैं? विद्या का काम सुधारने का है, बिगाड़ने का नहीं। यदि फिर भी वे बिगड़ जायँ तो इसमें विद्या का क्या अपराध है और किस अपराध से उस निर्दोषी को स्त्री-हृदय से निर्वासित करने का दण्ड दिया जाय? यदि इस प्रकार की अर्थहीन बातें विचारणीय हो सकती हैं तो यही बात कहने और मानने में किसी को आपत्ति क्यों हो सकती है कि अङ्गरेज़ों की तरह शस्त्र रखने की स्वाधीनता पाने से भारतीय

अपना गला आप काट लेंगे?

ये दलीलें थोथी हैं। इनसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। अमृत का गुण यदि जीवननाश हो तो उसे अमृत कहे कौन? जो लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर बिगड़ जायँगी, उनसे हमें कहने दीजिए कि वे जानते ही नहीं कि "लिखना-पढ़ना" कहते किसे हैं? उन्होंने केवल "लिखना-पढ़ना" भर ही सुन रक्खा है।

केवल 'वर्णमाला' या गन्दे-गन्दे उपन्यासों को पढ़ लेना "लिखना-पढ़ना" नहीं कहा जाता। हाँ, यह हम ज़रूर मानते हैं कि न पढ़ने की अपेक्षा कम पढ़ना 'कोढ़ में खाज' का काम करता है। क्योंकि कम पढ़ी हुई स्त्रियाँ अच्छे-अच्छे ग्रन्थ न पढ़ ही सकती हैं, न समझ ही सकती हैं और पढ़ने का रोग लग जाने से वे बिना कुछ पढ़े-लिखे रह भी नहीं सकतीं। तब, वे मन लगने और समझ में आने वाली 'ग़ज़ल' और उपन्यास की पुस्तकें पढ़ने लगती हैं। यह स्पष्ट है कि गन्दे उपन्यासों के पढ़ने से चित्त वृत्ति अवश्य कलुषित हो जाती है। अगर हम यह मान लें कि "पढ़-लिख कर स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं" तो स्त्री-शिक्षा के विरोधियों को इस बात का प्रमाण देना होगा कि बेपढ़ी स्त्रियाँ ख़ूब सुथरी-सजाई हुई होती हैं।

इस खींचतान में हमारी दशा ठीक राजा त्रिशङ्कु की सी हो रही है, जो न स्वर्ग में हैं न पृथ्वी पर; बल्कि आकाश में लटके हैं। सो भी कैसे? सिर नीचे और पैर ऊपर—उलटे!

संसार की गति-विधि को देखते हुए इस समय हमें 'स्त्री-शिक्षा' पर गम्भीर विचार करना चाहिए। यह शताब्दी उन्नति का युग है। दुनिया भर की सारी जातियाँ इस समय उन्नति की दौड़ में एक-दूसरे से

आगे निकल जाने के विचार से स्पर्धापूर्वक दौड़ रही हैं। किन्तु कहते दुःख होता है कि इस

घुड़दौड़

में हमारा देश बहुत पीछे, यानी घोंघे की चाल से गणेश जी का नाम स्मरण करता हुआ दौड़ रहा है। साथ ही मज़ा यह कि इसने जो कुछ अपनी उन्नति भी की है वह भी एकाङ्गी। दूसरे देशों में सर्वाङ्गीण उन्नति होती है। वहाँ ऐसा क्यों होता है। इस प्रश्न का सबसे बढ़िया और सबसे छोटा उत्तर है :—

'स्त्री-शिक्षा' के अभाव के कारण।

तुला के दोनों पलड़ों में जब दो वस्तुएँ बराबर-बराबर भार की रक्खी जायँगी, तब दोनों पलड़े बराबर उठेंगे। यही दशा देश की उन्नति की है। स्त्री और पुरुष दोनों जातियाँ जब बराबर उन्नति करेंगी तब देश की सर्वाङ्गीण उन्नति होगी। हमारे देश में केवल पुरुष जाति ही उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच जाती है। स्त्री-जाति ज्यों की त्यों बैठी झख मारती रहती है। यही कारण है कि हमारी उन्नति पूरी नहीं, अधूरी हो रही है। कवि के शब्दों में "हमारा भारत लोकालोक पर्वत की तरह अर्धालोकित तथा अर्धान्धकार परिवेष्टित है।"

हमारे यहाँ ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है कि भारतीय प्रोफ़ेसर साहब या साहित्याचार्य, महा-महोपाध्याय महोदय की स्त्रियों को लिखना-पढ़ना तो दूर रहा, हस्ताक्षर तक करना नहीं आता। प्रोफ़ेसर साहब तो कॉलेज के व्याख्यान-मञ्च पर खड़े होकर ललकार रहे हैं कि—चन्द्रमा, पृथ्वी से कई सहस्र गुना बड़ा एक हिमाच्छन्न लोक है। इधर आपकी प्रोफ़ेसराइन महोदया अपने बच्चे को "चाँद" मामू कह कर चन्द्रमा का परिचय करा रही हैं। हाय रे हतभागा देश !!!

यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा विवेचनीय है कि स्त्रियों के अपढ़ होने से ही हमारी राजनैतिक स्वाधीनता में भी बड़ी बाधा उपस्थित हो रही है। क्योंकि स्त्रियाँ अपढ़ और विवेकशून्य होने से अपनी बुराइयों के कारण कायर और नालायक़ बच्चे उत्पन्न करती हैं, जो आगे चल कर हमारी राह के काँटे हो जाते हैं। एक अङ्गरेज़ विद्वान की राय है कि—

Two things are closely joined together, the education, the training and development of women; and the greatness of a Nation. When those women were the Indian mothers, heroes and Rishies were born; and now out of child mothers cowards and social pigmies come forth. Cause and effect? Still in our power to change.

मतलब यह है कि दो बातों का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है—(१) स्त्रियों की शिक्षा, मानसिक, धार्मिक तथा शारीरिक उन्नति और (२) किसी जाति (राष्ट्र) की उन्नति। जब भारत में योग्य माताएँ थीं तब वे रत्नगर्भा होकर योद्धा और ऋषिरत्न उत्पन्न करती थीं। पर अब मूर्ख बाल-माताओं से प्रायः कायर और कलङ्कित पुत्र उत्पन्न होते हैं। कारण और कार्य इनका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है? कारणों को सुधार कर कार्य सिद्ध करना अब भी हमारे हाथ है।

इङ्गलैण्ड की माता अपने बच्चे को सुलाते समय "सुत रे बबुआ" न कह कर ऐसी बात कहती है जिसका प्रत्येक अक्षर राष्ट्रीयता के उन्मादकारी, ओजपूर्ण रस में सराबोर रहता है। वे कहती हैं :—

रूल ब्रिटेनिया! रूल दि वेव्ज़।
ब्रिटेन्स शैल नेवर बी स्लेव्ज़॥

"ऐ बरतानिया! तू शासन कर। समुद्र की तरङ्गों पर शासन कर। बरतानिया के बच्चे कभी ग़ुलाम नहीं हो सकते।"

कैसे जोशीले वाक्य हैं !! जिस मनुष्य के कानों में उसके शैशवकाल से ही ऐसा विद्युच्छक्ति-सम्पन्न वाक्यामृत पड़ेगा वह देश पर जान देने वाला और मातृभूमि का अनन्योपासक होकर स्वाधीनता देवी की वेदी पर सर्वस्व निछावर कर देने वाला क्यों न होगा?

अभागा

[श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', बी० ए०]

दिवाकर के माँ-बाप उसी समय मर चुके थे जब वह पाँच या साढ़े पाँच साल का रहा होगा। तभी से वह अपने बड़े चाचा पं० भृगुनाथ चौबे का आश्रित था। वही उसे खाना-कपड़ा देते थे, उन्हीं की कृपा से वह लिख-पढ़ भी रहा था। अब उसकी अवस्था लगभग सोलह साल की थी। इन्ट्रेन्स में पढ़ रहा था। एक ओर वह अपनी परीक्षा की तैयारी में व्यस्त था, दूसरी ओर उसके चाचा उसे ब्याह करने को तङ्ग कर रहे थे। सब तरह से समझा-बुझा कर जब वे हार गए तब एक दिन उन्होंने डाँट कर उससे पूछा—बताओ, तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हो या नहीं?

"मैं अभी ब्याह नहीं करूँगा चाचा जी!"—लड़के ने अपने सजल स्वर में एक अद्भुत विनम्रता और दृढ़ता भर कर उत्तर दिया।

"क्यों?"

"मुझे अभी पढ़ने दीजिए।"

"ब्याह करके लोग नहीं पढ़ सकते?"

"मैं डर रहा हूँ, शायद न पढ़ सकूँ!"

"क्यों, तुममें कौन सी ख़ास बात है?"

"न खाने को अन्न है, न पहनने को कपड़ा, न रहने को घर।"

"तुम्हें खाना-कपड़ा नहीं मिलता? तुम जङ्गलों में रहते हो?"

"अभी तक तो किसी चीज़ की कमी नहीं है, पर जब एक से दो हो जाऊँगा तब हो जायगी। आख़िर आप कब तक हमारा भार सम्हाले रहेंगे?"

दिवाकर की इन बातों ने चौबे जी के कलेजे पर चोट की। वे तिलमिला कर बोले—तो तुम मुझे सब तरह से पराया समझते हो, क्यों?

"अपने-पराए की बात नहीं है चाचा जी!"—लड़के ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—"यह तो दुनिया की रीति है। आदमी कमाने-खाने लायक़ हो तो वह पराए का भी अपना हो जाता है, नहीं तो अपने का भी पराया। अभी आपको केवल मेरा ख़र्च सम्हालना पड़ता है, इसी में आप तबाह रहते हैं। ब्याह के बाद आपका ख़र्च बढ़ जायगा, तबाही भी बढ़ जायगी। इसलिए जब तक मैं दो पैसे कमाने लायक़ नहीं हो जाता, ब्याह नहीं कर सकता।"

"यही तुम्हारा निश्चय है?"

"जी हाँ।"

"तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।"

"मुझे भी आशा नहीं थी कि यह दुखद प्रसङ्ग आ खड़ा होगा।"

"मैं कन्या-पक्ष वालों को वचन दे चुका हूँ।"

"इस ग़लती की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर नहीं है।"

"तुम्हारे ऊपर अपना अधिकार समझ कर ही मैंने ऐसा किया, नहीं जानता था कि इस तरह सिर नीचा करना पड़ेगा।"

"अधिकार मेरे ऊपर आपका अवश्य है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि आप जब चाहें मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे बेच डालें।"

"तो मैं तुम्हें बेच रहा हूँ?"

"जी हाँ, थोड़े से रुपयों के लोभ में पड़ कर, मेरी इच्छा के विरुद्ध, मुझे ब्याह करने को विवश करना, बेच डालना नहीं तो और है क्या?"

"तुम इस तरह मेरा अपमान करोगे?"

"अगर यह अपमान है तो इसे आप स्वयं मोल ले रहे हैं।"

"जानता कि इतने बड़े कृतघ्न निकलोगे तो बचपन में ही नमक चटा कर मार डालता।"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, विष पिला कर मार डालिए।"

"नहीं मालूम था, इस तरह धोखा दोगे।"

"अब से सतर्क हो जाइए।"

"अच्छी बात है, अब तुम मेरे सामने से हट जाओ।"

दिवाकर बिना कुछ बोले ही वहाँ से जाने लगा। चौबे जी ने कहा—अकड़ कर जा कहाँ रहे हो? मुझे तुमसे कुछ और भी कहना है।

"कहिए"—कह कर लड़का फिर उनके सामने आ खड़ा हुआ।

"अब मैं तुम्हें अपने घर में नहीं रख सकूँगा।"

"क्यों?"

"साँप को दूध पिलाने की मूर्खता अब नहीं करूँगा।"

"यही आपका अपनापन है?"

"हाँ, जो मेरा इतना अनादर कर सकता है, जिसमें इतनी कृतघ्नता भरी हुई है, उसे अपना बना कर रखने की क्षमता मुझमें नहीं है।"

"तो क्या सचमुच आप मुझे घर से निकाल रहे हैं?"

"अगर तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते तो यही समझो।"

"समझूँ ही या सचमुच घर छोड़ना पड़ेगा?"

"मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ।"

"तो शायद आप ही से मुझमें भी यह गुण आ गया है।"

"अच्छी बात है, देखता हूँ कब तक इस अकड़ में रहते हो।"

"जब तक भगवान की इच्छा।"

"जाओ, अपने रहने को जगह ढूँढ़ो।"

"अभी चला जाऊँ?"

"अभी तुरन्त; मुझे तुम्हारी सूरत से नफ़रत हो रही है।"

लड़के की आँखें डबडबा आईं। उसने करुणाभरी आँखों से अपने चाचा की ओर देखा। किन्तु रोष की चिनगारियों से भरी हुई उनकी आँखों ने उसे ममता की भीख न दी। उसकी नीरव याचना के उत्तर में चौबे जी ने कठोर स्वर में कहा—अब रोने-धोने की आवश्यकता नहीं, आप अपनी राह लीजिए।

लड़का उसी जगह बैठ गया और फूट-फूट कर रोने लगा! परिस्थिति उसे आज इतना असहाय बना देगी, वह बात ही बात में सम्बल-हीन बटोही बन जायगा, इसकी कल्पना भी उसने कभी न की थी।

चौबे जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—चुपचाप उठ कर चले जाओ सामने से, नहीं तो घसीट कर अपने अहाते के बाहर फेंक दूँगा। तुम्हारे जैसे नमक-हरामों के आँसू का मेरे ऊपर कोई असर नहीं पड़ सकता।

दिवाकर उनके पैरों पड़ कर रोता हुआ बोला—मुझे क्षमा कीजिए चाचा जी!

"क्षमा की ऐसी-तैसी, अब मैं तुम्हें अपने घर में एक घड़ी भी नहीं रहने दूँगा। उठो, भागो यहाँ से।"

"मैं आप ही का पाला-पोसा एक अनाथ बालक हूँ"—दिवाकर ने बड़ी विनती के साथ कहा—"मुझे राह का भिखारी न बनाइए।"

"अपनी राह तुमने स्वयं तैयार की है, अब उसी पर चलना होगा"

"उस पर न चल सकूँगा चाचा जी!"

"मैं अब कुछ नहीं कर सकता।"

"मुझे क्षमा कर दीजिए।"

"मेरी बात मानते हो?"

"मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिए।"

"पूछता हूँ, जो कहूँगा वह करोगे न?"

"आपके लिए आग में कूदने को तैयार हूँ, पर अभी मुझे ब्याह करने को विवश न कीजिए।"

"'प्रार्थना' और 'क्षमा' शब्दों की आड़ में छिप कर तुम मेरे साथ दिल्लगी कर रहे हो? मुझे उल्लू बना रहे हो? मेरी बात नहीं रखते तो मैं भी तुम्हें अपने घर में नहीं रहने दूँगा। जाओ, मेरे सामने से दूर हटो।"

दिवाकर का हृदय स्वाभिमान के धक्कों से प्रकम्पित हो उठा। वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला—इस घर में मेरे बाप का कोई हिस्सा नहीं है चाचा जी?

"जी हाँ, है क्यों नहीं?"—चौबे जी ने क्रोध-कम्पित स्वर में व्यंग का विष भर कर कहा—"आपके बाप तो इतने बड़े पुरुषार्थी थे कि अपने उद्योग-धन्धों से उपार्जन करके मेरे ऊपर पूरे पाँच हज़ार का ऋण छोड़ गए हैं!"

"मैं जो पूछ रहा हूँ उसका यही उत्तर है?"

"नहीं, उसका असली उत्तर यह है"—कह कर चौबे जी ने उसे ऐसी धौल जमाई कि लड़का चीख़ कर

धरती पर गिर पड़ा। तरह-तरह की गालियाँ दे-देकर वे उससे पूछने लगे—"बोल, और भी बाप की कमाई का हिस्सा लेगा ?"

दिवाकर कुछ न बोला। उसी तरह धरती पर पड़ा-पड़ा सिसकता रहा।

चौबे जी ने फिर डपट कर पूछा—उठते हो या दो-चार लात और खाओगे ?

इस बार दिवाकर उठ कर खड़ा हो गया और चुपचाप एक ओर चल दिया।

२

अपमान की ऐसी दारुण चोट दिवाकर को आज तक नहीं लगी थी। वह इसकी असह्य वेदना से व्याकुल हो उठा। चाचा के घर से निकल कर वह सीधे गङ्गा-तट पर पहुँचा। उसे अपने जीवन से घृणा हो आई। उसने गङ्गा के गर्भ में विलीन हो जाने का निश्चय कर लिया था। सहसा उसने देखा, उसका प्राणप्रिय मित्र गोपाल उसी की ओर लपका आ रहा है। उसका मृत्यु-सङ्कल्प ढीला पड़ गया। बिना प्रयास ही उसने अपने को गङ्गा में कूदने से रोक लिया। मृत्यु की कामना में जितना सुख है, अपने प्रेमपात्र को छोड़ कर मरने में उतना ही दुख। संसार में जितने भी असह्य दुख हैं, यह दुख उनकी अचूक दवा है। हृदय में इस दुख का प्रादुर्भाव होते ही मनुष्य अपने जीवन की समस्त यातनाओं को भूल कर एक बार फिर मृत्यु के मुख से बाहर निकलने की इच्छा करता है। इसी इच्छा का नाम माया है, और यह माया है ममत्व की सहोदरा। गोपाल के लिए दिवाकर के हृदय में अगाध ममता थी। इसलिए उस समय वह अपने को माया से मुक्त न कर सका। गङ्गा में डूबने के बदले वह अपने मित्र की छाती से चिपक गया और बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा।

गोपाल इस रोने का रहस्य नहीं समझ सका। उसने व्याकुल होकर पूछा—बात क्या है दीबू ? इस समय यहाँ कैसे आए ?

"और तुम कैसे पहुँच गए गोपू ?"—दिवाकर ने अपना रोना बन्द करके पूछा।

"मैं तो बाबू जी के लिए गङ्गा-जल लेने आया था। तुम्हें दूर ही से देखा, तुम स्थिर भाव से तट पर खड़े होकर गङ्गा जी को देख रहे थे। जी में आया, ज़रा मिल लूँ और पूछूँ कि इस तरह उदास भाव से क्यों खड़े हो।"

"न आए होते तो फिर भेंट भी न होती।"

"क्यों ? अरे ! सचमुच तुम्हें हो क्या गया है दीबू ? अपने चेहरे की हालत तुमने कैसी बना रक्खी है ! चाचा जी से कुछ कहा-सुनी हो गई है क्या ?"

"अब मैं जीवित नहीं रहना चाहता।"

"तो क्या तुम गङ्गा जी में डूब कर मरने आए थे ?"

"हाँ।"

"यह तो बड़ी भारी कायरता है।"

"हो सकती है, पर मेरे लिए और कोई राह नहीं रह गई।"

"आख़िर इस वैराग्य का कारण ?"

"परावलम्बन और पेट।"

"मालूम होता है, चौबे जी से लड़ कर आए हो। ब्याह के बारे में कुछ बखेड़ा हुआ है क्या ?"

"उन्होंने मुझे पीट कर अपने घर से निकाल दिया।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं उनकी इच्छा के अनुसार ब्याह नहीं कर सकता।"

"इसी बात पर घर से निकाल दिया ?"

"चुपचाप उठ कर चल न देता तो शायद घसीट कर सड़क पर फेंक देते।"

"तो इसके लिए डूब मरने की कौन सी ज़रूरत थी ?"

"ज़रूरत थी इस कष्टमय जीवन से छुटकारा पाने की।"

"तुम इतने दुर्बल विचार रखते हो ? आत्म-हत्या तो स्वयं एक पाप है। पाप से भी किसी को मोक्ष मिला है ? जीवन में कष्टों की अधिकता न हो तो इसकी सारी महत्ता ही चली जाय ! इतनी जल्दी घबड़ा उठे ? एक बार मुझसे मिलने की भी ज़रूरत नहीं समझी ?"

"मिलने की लालसा उमड़ रही थी, पर मिल न सका गोपू !"

"तो यह कहो कि भगवान ही ने मुझे इस समय यहाँ भेजा।"

"मैं भी यही समझता हूँ, पर थोड़ी सी भी देर हो जाती तो मुझे न पाते।"

"आह! तुम नहीं जानते, यह कितना बड़ा अनर्थ है!"

"इस तरह का मरना?"

"हाँ!"

"क्यों?"

"मृत्यु जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र और सुन्दर है। छोटी-छोटी बातों से ऊब कर उसका आह्वान करना उचित नहीं। जीवन-समर के प्राङ्गण में वीरता-पूर्वक लड़ते हुए मृत्यु की घाटी तक पहुँचना जितना गौरवपूर्ण, सुखद और मोक्ष-प्रदायक है, परिस्थिति के धक्कों से विचलित होकर, यातनाओं के दंशन से तिलमिला कर आत्म-हत्या कर लेना उतना ही गर्हित, दुखद और बन्धन-पूर्ण! इसीलिए जो आत्म-हत्या करते हैं वे अपना भी सर्वनाश करते हैं और दूसरों का भी!"

"तुम मेरी स्थिति में होते तो मैं भी तुमसे इसी तरह की बातें कहता।"

गोपाल की वाणी सहसा मूक हो गई। वह निस्तब्ध होकर दिवाकर की ओर ताकने लगा। दिवाकर की आँखें सजल थीं, उसके होंठ फड़क रहे थे। उसने थोड़ी देर के बाद फिर कहा—कल तक मैं भी आत्म-हत्या को पाप ही समझ रहा था, पर आज, जबकि मेरे जीवन में कष्टों के सिवा और कुछ रह ही नहीं गया है, जबकि मैं एक आश्रयहीन, अवलम्ब-हीन, सम्बल-हीन भिखारी बन कर घूम रहा हूँ, वही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य है। मेरे इस पुण्य की 'फ़िलॉसफ़ी' मुझे छोड़ कर और कोई समझ नहीं सकता।

गोपाल की आँखों में आँसू उमड़ आए। उसने अपने व्यथित मित्र का हाथ पकड़ कर स्नेह-विगलित स्वर में कहा—मुझे क्षमा करना दीवू! मैं सचमुच तुम्हारी इस 'फ़िलॉसफ़ी' को समझने की क्षमता नहीं रखता। मैं मानता हूँ कि तुम्हारी परिस्थिति में पड़ कर मैं भी वही करता जो तुम करने जा रहे थे। किन्तु सत्य सदैव सत्य ही है, उसका रूपान्तर कभी सम्भव नहीं। मैंने तुम्हारे सामने कोई नई बात नहीं रक्खी है—यह मेरा उपदेश नहीं है। जीवन को महत्वपूर्ण बनाने के लिए इस प्रकार के प्रौढ़ विचार नितान्त आवश्यक हैं। इन्हें तुम भी जानते हो। इस समय बहुत ही अधिक विचलित हो उठे हो, इसी से ये बातें तुम्हें अच्छी नहीं लग रही हैं। फिर कभी इन पर विचार करना। इस समय यहाँ से चलो।

"कहाँ?"

"घर।"

"घर होता तो इस समय यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?"

"जिस घर में मैं रहता हूँ, वह क्या तुम्हारा नहीं है?"

"नहीं, तुम्हें कष्ट न दूँगा।"

"सच?"

"मुझसे यह न हो सकेगा।"

"इसका अर्थ यह है कि तुम मुझे ख़ूब कष्ट दोगे, ख़ूब रुलाओगे, ख़ूब सताओगे।"

"मेरी विपदाओं के साथ मुझे अकेले छोड़ दो।"

"तुम्हारे सुख में भी मेरा आधा हिस्सा है और दुख में भी। चाहे जैसे हो तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा। न चलोगे तो मैं भी तुम्हारा साथ न छोड़ूँगा।"

दिवाकर चकित होकर अपने मित्र का मुँह निहार रहा था और गोपाल, आँखों में आँसू, वाणी में विनय और हृदय में हुलास भर कर उसका हाथ पकड़े खड़ा था! वह बार-बार कह रहा था—मेरी इतनी सी प्रार्थना भी न स्वीकार करोगे?

दिवाकर ने गद्गद स्वर में कहा—दुर्भाग्य भी एक संक्रामक रोग है—मुझे तुम अपनी सुन्दर दुनिया से दूर ही रहने दो।

"जो अपना है, उसके दुर्भाग्य में हिस्सा बँटाना स्वयं ही एक सौभाग्य है—मुझे तुम यह सौभाग्य-भिक्षा देकर मेरी सूनी दुनिया को वैभवपूर्ण कर दो। चलो, तुम्हें मेरी ही क़सम।"

प्रतिरोध की धारा रुक गई। दिवाकर का हाथ पकड़े गोपाल अपने घर की ओर चला।

३

गोपाल के पिता पं० शोभाराम पाण्डेय ने अपने घर में आए हुए इस अतिथि के मुँह से जब दो-तीन दिन बीत जाने पर भी जाने का नाम न सुना तब उन्होंने अपने पुत्र से पूछा—इसे कब तक यहाँ रक्खे रहोगे?

"इसे तो यहाँ रखने ही के लिए मैं लिवा लाया हूँ।"

"आख़िर इससे फ़ायदा ?"

"बच्चों को पढ़ाया करेगा, आप उसे दोनों वक्त भोजन और कुछ रुपए दे दिया कीजिएगा। मैं समझता हूँ, इससे आप भी घाटे में नहीं रहेंगे और इस बेचारे का भी काम चल जायगा। बच्चों को पढ़ाने के लिए एक आदमी तो रखना ही है, इसी को रख लीजिए।"

"हूँ"—कह कर पाण्डेय जी ने एक बेमन की स्वीकृति दे दी और थोड़ी देर तक अपनी मुखमुद्रा को गम्भीर बनाए रखने के बाद गोपाल से पूछा—यह घर से क्यों निकल भागा है ? स्वभाव का खोटा तो नहीं है ?

गोपाल को यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा। ग्लानि और रोष के भावों को दबा कर उसने उत्तर दिया—अपने मित्र की प्रशंसा करना स्वयं अपनी ही प्रशंसा करना है। इसलिए इसके स्वभाव के बारे में तो मैं कुछ नहीं कहना चाहता। हाँ, इतनी प्रार्थना अवश्य है कि इसे भी आप अपने ही पुत्र की तरह विश्वासपूर्ण दृष्टि से देखें। वे माँ-बाप का असहाय लड़का है। घर में इसे अपना समझने वाला कोई नहीं है। इसके चाचा ने इसको घर से निकाल दिया है।

"अगर ऐसी बात है, तो फिर रहने दो"—पाण्डेय जी ने कुछ सहानुभूति का भाव प्रकट करते हुए कहा—"मुझे तो एक आदमी चाहिए ही, इसी को रख लेता हूँ।"

उसी घर में धीरे-धीरे एक वर्ष समाप्त होगया। अब दिवाकर और गोपाल कॉलेज में पढ़ने लगे। दिन बड़े आनन्द से बीते जा रहे थे। उस सुखी परिवार में हिल-मिल कर दिवाकर, जैसे अपना सारा अभाव भूल गया। गोपाल का तो कहना ही क्या, उसकी छोटी बहिन सुभद्रा भी उसे बहुत मानने लग गई थी। पहले ही दिन दिवाकर को देख कर उसके हृदय में जिस नूतन उल्लास का आविर्भाव हुआ था अब वह धीरे-धीरे उसी की अभिव्यक्ति कर रही थी। उसकी इस अभिव्यक्ति ने दिवाकर को मोह लिया था, ठीक उसी तरह जिस तरह अपने सुरभित उच्छ्वासों से सुमन भौंरे को मोह लेता है। प्रणय की उल्लास-भूमि अपने गर्भ में एक गम्भीर वेदना छिपाए रहती है—वह वेदना, जिसमें तड़पने की हविस रखते हुए भी कोई तड़प नहीं सकता, रोने की चाह रखते हुए भी रो नहीं पाता! मनुष्य उदासीन द्रष्टा की तरह जब तक उस भूमि का सौन्दर्य दूर से निहारता रहता है तभी तक सुखी है, जहाँ उसने उसमें प्रवेश किया कि विश्व की समस्त यातनाएँ उससे ब्याह करने को अधीर हो उठती हैं—उसका सारा सुख, दुख के रूप में बदल जाता है। दिवाकर और सुभद्रा के बीच जब तक निस्पृह भाव से पारस्परिक उल्लास और हर्ष का आदान-प्रदान होता रहा, तब तक तो दोनों ही सुखी रहे। पर जब उनके हृदय में एक-दूसरे को पूर्ण रूप से अपना लेने की लालसा उमड़ आई तब उनकी सारी शान्ति, सारी स्थिरता, जाती रही—उनका आनन्द-कुसुम वासना के उत्ताप से झुलस उठा!

उनके पारस्परिक हेल-मेल में, बातचीत में बहुत अधिक स्वच्छन्दता आ गई थी। गोपाल इसके विरुद्ध नहीं था, पर उसके पिता इसे बहुत ही बुरा समझते थे। दोनों की गति-विधि पर वे सदैव अपनी सतर्क दृष्टि रखते थे।

एक दिन दिवाकर कॉलेज से कुछ पहले ही चला आया। आते ही आराम-कुर्सी पर लेट रहा। सुभद्रा ने झाँक कर देखा, उस समय वहाँ और कोई नहीं था। वह उसके पास जा खड़ी हुई और स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोली—आज भैया कहाँ रह गए ?

"अभी उनका क्लास हो रहा है"—कह कर दिवाकर ने बड़ी बेचैनी के साथ करवट बदल ली।

सुभद्रा ने फिर कोमल स्वर में पूछा—जलपान ले आऊँ ?

दिवाकर ने इसके उत्तर में मुग्ध भाव से एक बार उसकी ओर देख कर आह खींचते हुए आँखें बन्द कर लीं।

इस आह के धक्के से सुभद्रा का अन्तस्तल डगमगा उठा। उसने कुछ और पास पहुँच कर काँपती हुई वाणी में पूछा—जी अच्छा नहीं है क्या ?

दिवाकर ने बेचैनी के साथ गर्दन हिला कर कहा—नहीं !

"कहीं दर्द हो रहा है ?"

"सिर में।"

"दवा ले आऊँ ?"

"कोई ठण्ढा तेल नहीं है ?"

इसके उत्तर में सुभद्रा दौड़ कर अन्दर से चमेली का तेल ले आई। दिवाकर के सिर का दर्द और भी बढ़

गया। उसने रूमाल से सिर बाँध कर फिर आँखें बन्द कर लीं।

सुभद्रा ने घबरा कर पूछा—दर्द बढ़ रहा है क्या?

दिवाकर ने दर्द-भरी आँखों की भाषा में "हाँ" कह कर फिर एक आह खींची।

सुभद्रा ने पूछा—इसी पर लेटे रहोगे? चारपाई पर जाकर आराम से लेटो न? बिछा दूँ?

"उफ़! बड़ी पीड़ा है"—कह कर दिवाकर ने दोनों हाथों से अपना माथा पकड़ लिया।

पास ही चारपाई पड़ी थी। सुभद्रा ने चटपट बिस्तरा बिछा कर कहा—चलो, सिर में तेल मल दूँ।

दिवाकर चारपाई पर जाकर लेट रहा।

सुभद्रा ने उसके सिर का रूमाल खोलते हुए कहा—माथा तो बहुत गरम हो रहा है, कहीं ज्वर न आ जाय!

"देह में भी दर्द हो रहा है"—दिवाकर ने बड़े कष्ट से कहा।

तेल लगा कर सुभद्रा उसका सिर दबाने लगी। दिवाकर की आँखें छलछला आईं।

"यह क्या?"

"कुछ तो नहीं।"

"रोने क्यों लगे?"

"कह नहीं सकता।"

"पागल तो नहीं हो गए हो?"

"न हुआ हूँ तो होने में अब देर भी नहीं है। आह! मैं कैसा अभागा हूँ!"

"तुम्हें हो क्या गया है?"

"बता नहीं सकता सुभो!"—उसने कातर स्वर में कहा—"अब तुम जाओ, मुझे अकेले छोड़ दो।"

"कुछ देर और सर दबा दूँ, दर्द दूर हो जायगा।"

"नहीं, रहने दो।"

"क्यों?"

"मुझे तुमसे सेवा करवाने का कोई अधिकार नहीं है। मैं यह पाप कर रहा हूँ, मुझे क्षमा करो।"

सुभद्रा की आँखों से आँसू की बूँदें बरसने लगीं। वह उसी तरह चुपचाप उसका सर दबाती रही। वेदना से तपे हुए मस्तक पर उन बूँदों की चोट खाकर दिवाकर तड़प उठा। उसने सुभद्रा का हाथ पकड़ लिया और कहा—सुभो! तुम यह क्या कर रही हो?

सुभो का हृदय उमड़ रहा था, आँखें बरस रही थीं, शरीर काँप रहा था, वाणी स्तब्ध थी!

"सुभो! अब तुम अन्दर जाओ, मुझे चुपचाप सोने दो।"

सुभद्रा ने करुणा भरे स्वर में पूछा—आज तुम मुझसे इतने नाराज़ क्यों हो?

"ऐसा समझ कर तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो सुभो!"

"फिर मेरा यह काम तुम्हें पाप-सा क्यों लग रहा है?"

"इसलिए कि मैं इसके योग्य नहीं हूँ, इसका अधिकारी नहीं हूँ।"

"यह तुमसे किसने कहा?"

"मैं स्वयं समझता हूँ।"

"ऐसा समझ कर तुम मेरे ऊपर अन्याय कर रहे हो।"

"आख़िर तुम्हारी इस सेवा का, तुम्हारे इस प्रेम का बदला भी मैं कभी चुका सकूँगा?"

"हाँ।"

"कैसे?"

"मेरे ऊपर अपनी कृपा रख कर, मुझे अपनी दासी समझ कर।"

"मगर सुभो! तुम जानती हो, मुझे इसका भी अधिकार नहीं है।"

सुभद्रा इसके उत्तर में कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने में वहाँ गोपाल आ पहुँचा। वह चटपट अपना हाथ छुड़ा कर, घबड़ाए हुए स्वर में, बोली—कुछ पीड़ा कम हुई?

"हाँ, अब तुम जाओ।"

गोपाल ने गम्भीर दृष्टि से एक बार अपनी बहिन की ओर देखा और फिर अपने मित्र के सिर पर हाथ रख कर उससे पूछा—ज्वर आ गया क्या?

सुभद्रा धीरे से खिसक गई।

दिवाकर ने कहा—सर में बहुत दर्द हो रहा था, अब कुछ कम है।

गोपाल ने एक गहरा निश्वास फेंक कर पूछा—कोई और शिकायत तो नहीं है?

"नहीं"—कह कर दिवाकर ने करवट बदल ली।

"थोड़ी देर सो रहो"—कह कर गोपाल वहाँ से हट गया।

आँगन में जाकर उसने देखा उसके पिता जी सुभद्रा को बुरी तरह डाँट रहे हैं। लड़की धीरे-धीरे सिसक रही थी और वे उसे डपट कर कह रहे थे—अब तुम बच्ची नहीं हो, तुम्हें समझ से काम लेना चाहिए। लिखने-पढ़ने का यह अर्थ नहीं है कि तुम एकदम स्वतन्त्र हो जाओ। कम से कम मुझे तो यह स्वतन्त्रता पसन्द नहीं है।

गोपाल ने पूछा—हुआ क्या?

पं० शोभाराम जी एक बार कड़ी निगाह से अपने पुत्र की ओर देख कर चुपचाप आँगन से बाहर निकल गए। प्रश्न का कोई उत्तर न दिया।

सुभद्रा को एकान्त में ले जाकर गोपाल ने समझाया—बाबू जी इस तरह की स्वतन्त्रता बिल्कुल नहीं पसन्द करते, इसलिए उनकी डाँट-फटकार से घबराने की तो ज़रूरत नहीं है, पर इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि किसी वस्तु की क्षति न हो जाय। जीवन के प्रत्येक कार्य में संयम और साधना की आवश्यकता पड़ती है। जिसमें शान्ति और धैर्य का अभाव है, वह अपनी मर्यादा का पालन नहीं कर सकता। प्रेम मर्यादा का परिपालक है, संहारक नहीं।

"मैं ऐसा कौन सा काम करती हूँ जिससे आप लोगों की मर्यादा भङ्ग हो रही है?"—सुभद्रा ने रुदन-भरे स्वर में पूछा।

गोपाल ने अपनी सहोदरा को प्यारपूर्वक एक हलकी सी चपत लगा कर मुसकुराते हुए कहा—तू है निरी पगली ही। जा, अपना काम देख।

सुभद्रा का हृदय विक्षुब्ध महासागर की तरह विलोड़ित हो उठा। न जाने इस समय उसमें किन-किन भावनाओं की लहरें टकरा रही थीं! सिर झुका कर चुपचाप वह भाई के सामने से हट गई।

४

पं० शोभाराम ने अपने पुत्र से कहा—उसे कह दो, अब यहाँ से चला जाय, नहीं तो ठीक न होगा। मेरे कुल में कलङ्क लगाना चाहता है।

"आप उस पर अन्याय कर रहे हैं बाबू जी!"—गोपाल ने बड़ी नम्रता से कहा।

"चाहे जो कुछ भी हो, मैं उसे अब अपने घर में न रहने दूँगा।"

"मगर सुभद्रा उसे प्यार करती है।"

"और तुम्हें इसके लिए कोई शर्म नहीं है?"

"सुभद्रा के हक़ में मैं यही अच्छा समझता हूँ कि उसे अपने मन के लायक पति मिल जाय।"

"यह विलायत नहीं है।"

"भारत के लिए यह कलङ्क की बात है कि यहाँ ब्याह के नाम पर बालक-बालिकाओं का सर्वनाश किया जाय।"

"यह तुम्हारे जैसे नास्तिकों का मत है।"

"हो सकता है; पर इस समय ऐसी आस्तिकता हमें नहीं चाहिए जो हमारे जीवन को नारकीय बना दे।"

"ख़ैर, मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता। उसे कह दो, अपनी राह ले।"

"मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, उसे आप अपमानित न कीजिए। मैंने निश्चय कर लिया है, उसीको अपना बहनोई बनाऊँगा।"

"मेरे जीते जी ऐसा नहीं हो सकता, उस दरिद्र को मैं अपनी बेटी न दूँगा।"

"उसके साथ वह रानी बन कर रहेगी।"

"मैं उसके ब्याह की बातचीत ठीक कर चुका हूँ। तुम्हारा सपना सफल न हो सकेगा।"

"मेरी प्रार्थना है, आप यह ग़लती न कीजिए।"

"पागलों की तरह बातें मत करो। उस ज़मींदार के लड़के को छोड़ कर मैं एक ऐसे भिखारी को कन्या-दान दूँगा जिसके न घर है न द्वार? मैं अपना दामाद उसे बनाऊँ जो जाति में भी मुझसे कहीं छोटा है?"

"ख़ैर, मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन किया"—गोपाल ने क्षुब्ध होकर कहा—"आपकी जो इच्छा हो, कीजिए। पर इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

ये बातें आँगन में ज़ोर-ज़ोर से हो रही थीं। बाहर से दिवाकर सब सुन रहा था। वह खड़ा न रह सका। कटे हुए वृक्ष की तरह मूर्च्छित होकर धरती पर गिरने ही वाला था कि गोपाल ने दौड़ कर उसे सम्हालते हुए अपनी छाती से लगा लिया।

होश में आते ही दिवाकर ने कहा—गोपू! अब मुझे जाने दो।

"कहाँ ?"—गोपाल ने आँखों में आँसू भर कर पूछा।

"चाहे जहाँ भी जाऊँ, यहाँ तो अब पल भर भी नहीं रह सकता।"

"जहाँ तुम्हारा अपमान हो रहा हो"—गोपाल ने वेदना-विद्ध वाणी में अथाह करुणा भर कर कहा—"वहाँ अब मैं स्वयं तुम्हें नहीं रहने दूँगा। पर दो-एक दिन और ठहर जाओ, कोई स्थान ठीक हो जाय तब चले जाना।"

"मेरे लिए स्थान की कमी नहीं है।"

"फिर वही पागलपन तो नहीं करने जा रहे हो ?"

"नहीं, अब आत्महत्या करने की चेष्टा नहीं करूँगा।"

"प्रतिज्ञा करते हो ?"

"हाँ।"

"मेरे माथे पर हाथ रख कर मुझे विश्वास दिला दो कि तुम दग़ा देकर भाग न जाओगे।"

"दग़ा न दूँगा। अब मैं अपने जीवन का रहस्य समझ गया हूँ। भगवान ने मुझे कष्ट ही झेलने को भेजा है। उनकी इच्छा पूरी करूँगा। गली-गली ठोकरें खाता फिरूँगा, पर अपने ही हाथों अपनी हत्या करने का प्रयास न करूँगा।"

गोपाल ने पूछा—मगर अभी तुम जाओगे कहाँ ?

इसका कोई जवाब न देकर दिवाकर तेज़ी के साथ कमरे से बाहर निकल गया।

इसी समय वहाँ सुभद्रा भी आ गई। उसने देखा, उसके भैया दोनों हाथों से अपना मुँह ढक कर बच्चों की तरह सिसक रहे हैं। वह कुछ बोल न सकी। आँखों में आँसू भर कर उसने एक बार बाहर की ओर देखा। पर जिसे देखना चाहती थी वह आँखों के ओझल हो चुका था!

५

सन्ध्या का समय था। पं० भृगुनाथ चौबे आँगन से बाहर निकले ही थे कि गोपाल ने उन्हें प्रणाम किया।

चौबे जी ने आशीर्वाद देकर पूछा—कहिए, आपके मित्र का क्या हाल-चाल है ?

"अच्छा नहीं है।"

"क्यों ? क्या हुआ है ?"

"आज तीन दिन से धर्मशाला में बीमार पड़ा हुआ है।"

"अब आपके यहाँ नहीं रहता ?"

"रूठ कर चला आया है, अब जाता ही नहीं।"

"तब ?"

"तब क्या ? उसे अपने घर ले आइए नहीं तो वह मर जायगा।"

"वह आए भी, या मैं ज़बर्दस्ती ले आऊँ ?"

"ज़बर्दस्ती।"

"तो जाइए, आप ही बुला लाइए—मुझसे तो वह आएगा नहीं।"

"प्यार से पुचकार कर कहिएगा तो आ जायगा। मुसीबतों ने उसे बहुत ही मुलायम बना दिया है। वह दुलार का स्पर्श चाहता है, शासन का आघात नहीं।"

"उसकी दुरवस्था से मैं स्वयं ही बहुत दुखी और लज्जित हूँ। पर करूँ क्या ? यह मेरा दुर्भाग्य है कि जिसे पाल-पोस कर बड़ा किया वही मुझसे, कच्चे धागे की तरह, छूते ही टूट गया। इससे बढ़ कर और क्या अच्छा हो सकता है कि वह घर लौट आवे ?"

"ईश्वर के लिए, आप उसे मना लाइए।"

"आप भी साथ चलिए।"

"चलिए।"

जिस समय वे दोनों धर्मशाला में पहुँचे, दिवाकर बुख़ार की बेहोशी में डूबा हुआ था। उसकी दशा देख कर पं० भृगुनाथ जी की आँखों में आँसू उमड़ आए! उन्होंने गोपाल से कहा—जल्दी से एक पालकी का प्रबन्ध कर दो भैया, किसी दूसरी सवारी पर ले जाने में इसे कष्ट होगा।

कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वह उठा कर पालकी के भीतर लिटा दिया गया।

आँखें खुलने पर उसने देखा, उसके चाचा जी उसे पङ्खा झल रहे हैं। उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—सपना तो नहीं देख रहा हूँ!

"नहीं बेटा!"—पं० भृगुनाथ चौबे ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"यह सपना नहीं है। तुम अपने घर में हो। तुम्हें मेरे सिर की क़सम, अब बीती बातों का ख़याल न करो। मुझे क्षमा कर दो, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट पहुँचाया।"

दिवाकर कुछ बोल न सका। वह सजल नेत्रों से अपने चाचा का मुँह निहार रहा था, मानो उनके इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का रहस्य पढ़ रहा हो।

६

सुभद्रा का व्याह एक ज़मींदार के लड़के से होगा। बातचीत तो पहले ही से ठीक हो गई थी, व्याह की तिथि भी निश्चित हो गई।

गोपाल ने अपने पिता से कहा—बाबू जी! आप इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर रहे हैं।

"अभी मुझे तुमसे सलाह लेने की ज़रूरत नहीं है।"

"वह लड़का सुभद्रा के योग्य नहीं है।"

"क्यों?"

"न तो वह लिखा-पढ़ा है और न उसका आचरण पवित्र है। पता नहीं, आप उसके किस गुण पर रीझ गए हैं!"

"तुम, लोगों के बहकाने में आ गए हो। इतने बड़े आदमी के घर से सम्बन्ध हो रहा है, इसका तो कुछ ख़्याल नहीं करते। लोग जो-जो कहते हैं, उसी पर विश्वास कर लेते हो। इतना भी नहीं समझते कि लोगों को मेरा यह सम्बन्ध अखर रहा है।"

"केवल धन से ही आदमी बड़ा नहीं होता।"

"जी नहीं, गाँधी टोपी पहनने और व्याख्यान देने से होता है?"

"बड़प्पन के लिए सबसे पहली चीज़ है चरित्र।"

"और वह केवल उन्हीं लोगों के पास है जो आपके-से विचार रखने वाले हों?"

"मैं यह नहीं कहता; मेरा कहना तो यह है कि आप सुभद्रा का व्याह एक विलास के कीड़े से कर रहे हैं। धन की ढेरी पर रीझ कर आप एक अबला का सर्वनाश कर रहे हैं। मैं उस लड़के को जानता हूँ, वह शराबी है।"

"तुम्हारा दिमाग़ फिर गया है। जाओ, यहाँ से हट जाओ।"

"मैं जाता हूँ। मगर याद रखिएगा, यह विष आप ही के शरीर में व्यापेगा।"

"तुम बड़े बदतमीज़ हो गए हो।"

"आप ही ने बनाया है।"

"तुम्हारे जैसे पुत्र की अपेक्षा पुत्रहीन रहना अच्छा है।"

"पहले यही हो लीजिए तब बेटी का व्याह कीजिएगा।"

"जाओ, भागो यहाँ से।"

"अच्छी बात है।"

गोपाल ने फिर अपने बाप से इस सम्बन्ध में कभी बातचीत न की। झगड़ा बढ़ाने की उसकी आदत नहीं थी। एकदम ख़ामोश हो रहा। पर उसका हृदय रह-रह कर रोया करता था, उसके प्राण प्रति पल कलपते रहते थे। वह दिन-रात अपने लिखने-पढ़ने वाले कमरे में बन्द रहता था।

व्याह की तिथि आ गई। आज ही रात को बारात आएगी। घर भर में उत्सव का उल्लास छा रहा है। सब लोग सङ्गीत, वाद्य और विनोद में मस्त हैं। गोपाल आज सवेरे ही से कहीं चला गया। पं० शोभाराम जी को इसकी बिल्कुल परवा नहीं है। वे विवाह की तैयारी में व्यस्त हैं। हाँ, उनकी पत्नी को इस अवसर पर पुत्र का रूठ जाना अखर रहा है। वे रह-रह कर उसे याद कर रही हैं। पर इस बात को जानती हैं कि वह आज किसी तरह घर नहीं आवेगा।

बारात द्वार पर आ लगी। उसके वैभव-प्रकाश से सारा महल्ला जगमगा उठा। वर विवाह-मण्डप में लाया गया। मगर कन्या वहाँ नहीं थी। लोग अपने-अपने उल्लास में मग्न थे। किसी ने नहीं ख़्याल किया कि वह किस समय किधर को खिसक गई।

गोपाल की माँ ने कहा—कहीं जाकर सो न गई हो! उसे सोते देर नहीं लगती

लोग उसे घर में इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। आख़िर वह एक कमरे में पड़ी हुई मिली। पर वह सुभद्रा नहीं, सुभद्रा की लाश थी। अभी-अभी उसने कलेजे में कटारी भोंक कर आत्महत्या कर ली थी। उसके पास ही एक काग़ज़ पड़ा मिला। उसमें लिखा था—"बाबू जी! जिसके ऊपर मैं अपने को निछावर कर चुकी थी, उसे आपने दूध की मक्खी की तरह निकाल कर बाहर फेंक दिया और आज आप मेरी इच्छा के विरुद्ध एक ऐसे आदमी के साथ मेरा व्याह कराने जा रहे हैं जिसे मैं

जानती तक नहीं ! भैया ने मेरा हृदय खोल कर आपके चरणों पर रख दिया, किन्तु उसे भी आपने निष्ठुरता से कुचल दिया। धन की अधिकता और मूलगोत्र की श्रेष्ठता पर आप रीझ गए, मेरा कोई ख़याल न किया। ऐसी अवस्था में मैं अपने लिए ब्याह की अपेक्षा मृत्यु को ही अधिक उत्तम समझती हूँ। मुझे क्षमा कीजिएगा।"

गोपाल की माँ बेहोश होकर वहीं गिर पड़ीं। पं० शोभाराम जी सिर धुन-धुन कर रोने लगे। देखते ही देखते उत्सव का सारा आलोक अन्धकार में खो गया !

७

पं० भृगुनाथ चौबे के ससुराल में एक धनी सज्जन थे। उन्हें अपनी एक कन्या का ब्याह करना था। बहुत दिनों से वे चौबे जी के पीछे पड़े हुए थे, उन्हें मुँह-माँगे रुपए दे रहे थे, दहेज में कुछ ज़मीन भी दे रहे थे। पर न दिवाकर विवाह के लिए राज़ी होता था, न उन्हें वे चीज़ें मिलती थीं। हाथ से सोने की चिड़िया उड़ी जा रही थी, अवसर भागा जा रहा था। दण्ड-नीति से उन्हें भयङ्कर असफलता मिल चुकी थी। अब उन्होंने नेह-नीति से काम लेना शुरू किया।

दिवाकर को उन्होंने एक दिन समझाते हुए कहा—देखो बेटा ! अब तुम ब्याह कर लो। आख़िर कभी न कभी तो करोगे ही ? फिर इतना सुन्दर अवसर क्यों खो रहे हो ? इतने रुपए मिल रहे हैं, ज़मीन मिल रही है। अब और क्या चाहिए ? आजकल जिसके पास दो पैसे नहीं उसे पूछता ही कौन है ? ब्याह से ही अगर ज़िन्दगी भर के कमाने-खाने की चिन्ता छूट जाय तो इससे अच्छी और कौन सी बात हो सकती है ? मैंने तुम्हारे लिए इतना किया और तुम मेरा एक भी अरमान नहीं पूरा करोगे ?

दिवाकर ने स्वीकृति का भाव दर्शाते हुए कहा—चाचा जी ! आप जैसा उचित समझिए, कीजिए ! मैं अब कुछ नहीं बोलूँगा।

ब्याह की बात पक्की हो गई।

* * *

ब्याह के बाद जब बारात लौटने लगी तो बेटी के बाप ने पं० भृगुनाथ चौबे से हाथ जोड़ कर विनती की—समधी जी ! मैं इस समय पूरी रक़म नहीं दे सकता। आपके कुछ रुपए मेरे यहाँ रह जाते हैं। इन्हें मैं शीघ्र ही सेवा में भेज दूँगा।

चौबे जी ने तमतमा कर कहा—यह तो मैं नहीं मानूँगा साहब ! चाहे जैसे हो, मेरे सब रुपए अभी दे दीजिए।

"अभी तो न दे सकूँगा।"

"यह तो सरासर दग़ा देना है।"

"आप बड़े ओछे विचार के मालूम होते हैं।"

"बेटी का ब्याह करा दिया, उसके बदले अब गालियाँ दोगे ?"

"जैसा आपका व्यवहार देख रहा हूँ, वह कहीं मार-पीट की नौबत न ला दे !"

"कौन साला मुझे मारेगा ? आवे तो देखें।"—कह कर चौबे जी ने अपनी लाठी उठा ली।

"आप तो झूठ-मूठ गरम हुए जा रहे हैं।"—बेटी के बाप ने डपट कर कहा—"सचमुच मार खाने की इच्छा है क्या ?"

"असल बाप के होगे तो मुझे मारोगे।"—चौबे जी ने क्रोध में काँपते हुए कहा।

"असल बाप के होगे तो भागोगे नहीं"—कह कर बेटी-पक्ष वाले चौबे जी पर टूट पड़े। दोनों पक्ष के लोगों में पूरे पाव घण्टे तक युद्ध होता रहा। कितनों के सर टूटे, कितनों के पैर ! अन्त में बारात के लोग वर और कन्या को लेकर भाग चले।

दिवाकर अपनी क़िस्मत पर आँसू बहा रहा था !

* * *

प्रथम मिलन की सारी उत्कण्ठा, सारी लालसा और समस्त अभिलाषाएँ लेकर दिवाकर अपनी प्रेयसी के पास पहुँचा। बहुत देर तक वह पलङ्ग पर जाकर बैठा रहा, पर बहू उसके पास न आई—वह एक कोने में सिकुड़ कर खड़ी थी। अपने धैर्य पर वह अधिकार न रख सका। उठ कर उसके पास पहुँचा और उसका हाथ पकड़ कर बोला—अभी तक तो मुझसे कोई अपराध हुआ नहीं है, फिर यह नाराज़ी कैसी ?

वह कुछ न बोली।

दिवाकर ने मुँह पर से घूँघट हटा कर देखा—बहू की आँखों से आँसू की धारा बह रही है।

उसने घबरा कर पूछा—रो क्यों रही हो ?

इस बार बहू ने कातर दृष्टि से अपने पति की ओर देखा। उसके होंठ फड़क रहे थे।

दिवाकर ने कहा—कुछ बोलो भी।

इतना सुनते ही वह सिसकने लगी। उसकी आँखें अब भी पति के मुखड़े पर चिपकी हुई थीं। मालूम होता था, वे अपनी पलकों का गिराना ही भूल गई हों!

दिवाकर ने खीझ कर कहा—गूँगी हो क्या?

बहू ने सिर हिला दिया और दूने वेग से सिसकने लगी।

दिवाकर ने घबड़ा कर फिर पूछा—क्या सचमुच तुम गूँगी ही हो?

इस बार भी 'हाँ' द्योतक सिर हिला कर वह अपने पति के पैरों पर लोट गई।

दिवाकर उसे ज़ोर से ठुकराता हुआ तेज़ी के साथ कमरे से बाहर निकल गया। दौड़ कर वह अपने चाचा के पास गया और क्रोध-कम्पित स्वर में डपट कर बोला—रुपए के लोभ में पड़ कर आपने मेरा सर्वनाश कर दिया न?"

"हाँ, बेटा!" भृगुनाथ जी ने भयभीत होकर उत्तर दिया—"पीछे से मालूम हुआ कि लड़की गूँगी है। पूरे रुपए भी न मिले और धोखा भी खाया।"

"ख़ूब किया आपने।"

"मैं तुम्हारा दूसरा विवाह करा दूँगा।"

"हाँ, ज़रा जल्दी कीजिएगा और इस बात का ध्यान रखिएगा कि लड़की अन्धी और लँगड़ी दोनों हो। रुपए पहले ही गिनवा लीजिएगा।"

'अब मुझे लज्जित न करो बेटा! फिर ऐसी ग़लती न होगी।"

"भला!"—कह कर दिवाकर उसी समय घर छोड़ कर निकल गया।

८

इसके दो साल बाद की बात है। सायङ्काल का समय था। गोपाल शहर की एक गली से होकर कहीं जा रहा था। उसने देखा, एक जगह दो-तीन शोहदे किसी औरत को घेरे खड़े हैं। वह एक गूँगी भिखारिणी थी। वे दुष्ट उसे बुरी तरह तङ्ग कर रहे थे। वह बेचारी क़साइयों के चङ्गुल में फँसी हुई गाय की तरह छटपटा रही थी। जब उन लोगों ने उसे बहुत सताना शुरू किया, तब वह अस्फुट स्वर में चिल्लाने लगी। उस चिल्लाहट में अर्थ नहीं था, आर्त्तनाद था। उसे सुनते ही गोपाल दौड़ कर उसके पास जा खड़ा हुआ। शोहदे उसे देखते ही भाग गए और वह अबला उसके पैरों पर लोट-लोट कर रोने लगी।

गोपाल उसकी दुर्दशा देख कर रो पड़ा। उसने स्नेह भरे स्वर में पूछा—बहिन! तुम रहती कहाँ हो? चलो, मैं तुम्हें वहाँ तक पहुँचा दूँगा।

कृतज्ञता भरी दृष्टि से एक बार उसकी ओर देख कर भिखारिणी एक ओर को चल पड़ी। गोपाल उसके पीछे हो लिया।

आगे चल कर एक छोटा सा कच्चा मकान था। भिखारिणी उसी के पास जाकर खड़ी हो गई और आँखों में आँसू भर कर अपने त्राता की ओर देखने लगी।

गोपाल ज्योंही द्वार के पास पहुँचा, उसे भीतर से किसी के कराहने की आवाज़ सुन पड़ी। जेब से 'टॉर्च लाइट' निकाल कर वह तुरन्त घर के भीतर घुस गया। कराहने वाले ने एक बार अपनी आँखें खोल कर देखा। देखते ही वह कह उठा—गोपू!

गोपाल ने उसे लपक कर पकड़ लिया और व्याकुल होकर कहा—आह! तुम यह क्या हो गए दीवू?

"कुछ पूछो मत"—उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"यह गूँगी न मिल गई होती तो कब का चल बसा होता। तुम यहाँ कैसे?"

"यही ले आई है, नहीं तो मुझे क्या पता था?"

"इसे पहचान गए?"

"अब अधिक परिचय न दो। सब समझ गया।"

"मैं तो जा रहा हूँ, इसको ज़रा देखते रहना।"

"चलो, घर चलना होगा।"

"जाओ, गाड़ी ले आओ।"

गोपाल गाड़ी लाने को दौड़ा। लौट कर देखता है कि गूँगी दरवाज़े पर बैठी सिर धुन-धुन कर रो रही है। वह अपने मित्र को निकालने के लिए भीतर घुसा। पर हाय! उसका अभागा मित्र वहाँ से भी भाग चुका था—उसके स्थान पर केवल उसकी लाश पड़ी हुई थी।

गोपाल उसी से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

विडम्बना

[कविवर श्री० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय]

चौपदे

(१)

कण्टकित हो क्यों कुसुमित सेज,
बने क्यों अकलित कुसुम-कलाप ?
किसी की विलसित-ललित-उमङ्ग,
बने क्यों वेदन-वलित-विलाप ?

(२)

हटें क्यों अलकावलि का मान,
किसी के पलित पुरातन-केश ?
मधुरतम-स्वर लालायित-कान,
सुनें क्यों नीरस-कण्ठ-निदेश ?

(३)

दले क्यों कोई अमृदुल-वृत्ति,
किसी के कोमल कितने भाव ?
रोक दे क्यों सुख-सरस-प्रवाह,
मरु-महीतल सम शुष्क-स्वभाव ?

(४)

जरा-जित-मोह-राहु-अभिभूत,
रहे क्यों यौवन-मञ्जु-मयङ्क ?
हरे क्यों नवला-हृदय-विनोद,
किसी कङ्काल-भूत का अङ्क ?

(५)

सुनाते हैं यम का सन्देश,
श्वेत हो-होकर जिसके बाल।
विवश को क्यों लेवे वह बाँध,
ग्रन्थि-बन्धन का बन्धन डाल ?

(६)

कुचल दे क्यों कुसुमायुध-हीन,
किसी की विकच कामना-वेलि ?
करे क्यों युवती-सुख का लोप,
किसी गत-यौवन-जन की केलि ?

(७)

काल-बलि-भूत मिलिन्द निमित्त,
कमलिनी का क्यों हो बलिदान ?
करे क्यों दलित-कुसुम के हेतु,
नवलतम-कलिका जीवन-दान ?

(८)

काठ उकठा क्यों हो उत्कण्ठ,
वनज-सम विकसित वदन विलोक ?
बने क्यों अतन-बाण से विद्ध,
गलित-तन-नूतन-तन अवलोक ?

(९)

राग क्यों हो विराग आधार,
रहे क्यों अनुरञ्जन से दूर ?
बने क्यों किसी भाल का काल,
असुन्दर हो सुन्दर सिन्दूर ?
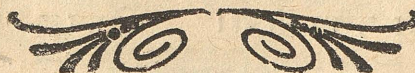
बैठी हुई—महात्मा गाँधी की स्थानापन्न कार्यकर्त्री भारत-कोकिला श्रीमती देवी सरोजिनी नायडू जिन्हें ९ मास के सादी क़ैद की सज़ा दी गई है।

खड़ी हुई—पं० मोतीलाल नहरू की पुत्री श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित, जो इलाहाबाद में विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देने का कार्य बड़ी योग्यतापूर्वक कर रही हैं।

परदा पाप है !

पाप की परिभाषा क्या है ?

आवरण मात्र ही पाप है। परदा आवरण है, अतएव पाप है। हाँ, वह पाप ही तो है !

संसार प्रायः पाप को ही छिपाने की चेष्टा करते देखा गया है। पापी अपने कार्यों को संसार के सम्मुख रखने में लज्जित होता है, भीत होता है, ऐसा करने का उसे साहस नहीं होता। सत्य के प्रकाश में पाप की छाया ठहरती नहीं, शायद ठहर सकती ही नहीं।

झूठ बोलना पाप है; क्योंकि झूठ बोलने वाला यह नहीं चाहता कि लोग उसका झूठ जान जायँ। चोरी करना पाप है, चोर दिन के प्रकाश में चोरी नहीं करता, रात्रि के अन्धकार में करता है, अपने कार्य को छिपाने की इच्छा से ; क्योंकि चोरी करना पाप है और वह प्रकाशित नहीं किया जा सकता। अज्ञान भी पाप है ; इसलिए कि वह मानव-हृदय का आवरण है और आवरण मात्र ही पाप है।

इन तीन प्रकार के पापों के विरोध में सारा संसार एक स्वर से अपनी आवाज़ बुलन्द करता, इनके प्रतिकार की चेष्टा करता, लेख लिखता, व्याख्यान देता और न जाने क्या-क्या करता है। बड़े-बड़े धर्म-ग्रन्थों से लेकर बच्चों के पढ़ने की बाल-पोथी तक में इसके विरुद्ध प्रचार किया जाता है। बचपन से इस बात को हम प्रत्येक हृदय में अङ्कुरित कर देना उचित समझते हैं कि झूठ बोलना पाप है, चोरी करना पाप है, और मूर्ख रहना तो महापाप है।

झूठ बोलना, चोरी करना तो बुद्धि का आवरण है, मूर्ख रहना हृदय का आवरण है ; लेकिन परदा ? वह क्या मानव-शरीर का आवरण नहीं है ? यदि है तो कितने लोगों ने उसके विरोध में अपनी आवाज़ उठाई है ? कितने लोगों ने उसके प्रतिकार की चेष्टा की है ? यदि नहीं की तो क्या उन्होंने एक पाप को प्रश्रय नहीं दिया ? उसे बढ़ने, फलने-फूलने और समाज में फैलने का अवकाश नहीं दिया ? हम नहीं समझतीं, उनका यह कार्य कहाँ तक युक्ति-सङ्गत और समाज के लिए हितकारी है।

मानव-शरीर के साथ ही साथ मनुष्य के हृदय की सत् और असत् प्रवृत्तियाँ भी बढ़ती हैं, विकसित होती हैं और मनुष्य के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेती हैं। विकास की इसी प्रगति के साथ-साथ, मनुष्य के हृदय में पाप भी बढ़ते हैं। पाप के होने से ही आवरण होगा। उन्हें छिपाने की आवश्यकता पड़ेगी और इस प्रकार हमें शारीरिक और मानसिक परदा की आवश्यकता प्रतीत होगी।

बच्चा पैदा होता है तो उसके शरीर पर सूत का एक धागा भी नहीं होता, सिर पर शायद पूरे बाल भी नहीं होते। धीरे-धीरे वह बढ़ता है। जब तक उसके मन में कोई विकार नहीं है, जब तक वह भले-बुरे को अलग-अलग पहचानने में समर्थ नहीं हुआ है, तब तक उसे किसी आवरण की ज़रूरत नहीं पड़ती, नङ्गा चारों ओर घूमता-

बाँद्रा व्यायाम शाला का एक ग्रूप

इस व्यायाम शाला में लाठी और लेज़िम की निःशुल्क शिक्षा, इसके सञ्चालक श्री० वाई० एम० मोकाशी के द्वारा दी जाती है। श्री० मोकाशी एक उत्साही और दक्ष नवयुवक हैं। इस समय इस संस्था में ७ से १२ वर्ष तक की बाईस लड़कियाँ और ७ से १५ वर्ष तक के २५ लड़के शिक्षा पा रहे हैं।

फिरता है; किन्तु यह दशा कब तक रहती है? शीघ्र ही वह बड़ा होता है, समझदार होता है, 'नङ्गा रहना तो ठीक नहीं।' यह पहली बार उसके मन में पाप का प्रादुर्भाव हुआ। उसने समझा कि नङ्गा रहना समाज के सदाचार के, शिष्टता के विरुद्ध है। उसे कपड़ा पहनने की ज़रूरत हुई। उसका मन पापी हुआ। उसने कपड़ा पहना।

उसके कुछ और बाद वह कुछ पढ़-लिख गया। सभ्यता और फ़ैशन का ज्ञान हुआ। औचित्य और अनौचित्य को समझने की शक्ति का विस्तार हुआ। भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़े, भिन्न-भिन्न समय में, भिन्न-भिन्न रूप से पहनना चाहिए। ऐसा नियम है, ऐसा औचित्य है, यह सारी बातें पाप ही तो हैं।

बातें बहुत साधारण हैं। रोज़-रोज़ होने और देखने के कारण, इनमें कोई विशेषता नहीं रह गई। ये बातें हमें आकर्षित नहीं कर पातीं, हम इन पर विशेष ध्यान नहीं दे सकते। शायद देने की ज़रूरत ही नहीं समझते। लेकिन क्या इन्हीं साधारणतम बातों में यह बात नहीं छिपी हुई है कि पाप ही परदा है! परदा ही पाप है?

हमारा समाज तो आज अन्धा हो रहा है। उसे अपना भला-बुरा, हित-अहित, कुछ सूझता नहीं। सूझता होता अगर, तो इस हानिकर और नाशकारी प्रथा को वह इतना प्रश्रय, इतना उत्तेजन न देता। पनपने के पहले ही उसे कुचल देता। किन्तु ऐसा कहाँ किया गया? यह क्या सर्वनाश के लक्षण नहीं हैं?

हमारे देश में परदा का जन्म कब हुआ, क्यों हुआ, यह तो अनर्थक बातें हैं। इनकी दुहाई देने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। किन्तु इस बात का समझना ज़रा मुश्किल है कि समाज ने इसे इस प्रकार फलने-फूलने का अवकाश देने की मूर्खता ही क्यों की? मान लिया, कभी इसकी उपयोगिता थी, इसका प्रचलन हुआ। लेकिन इसके क्या माने कि जो बात चल गई वह जन्म-

श्रीमती सुमति बाई देव
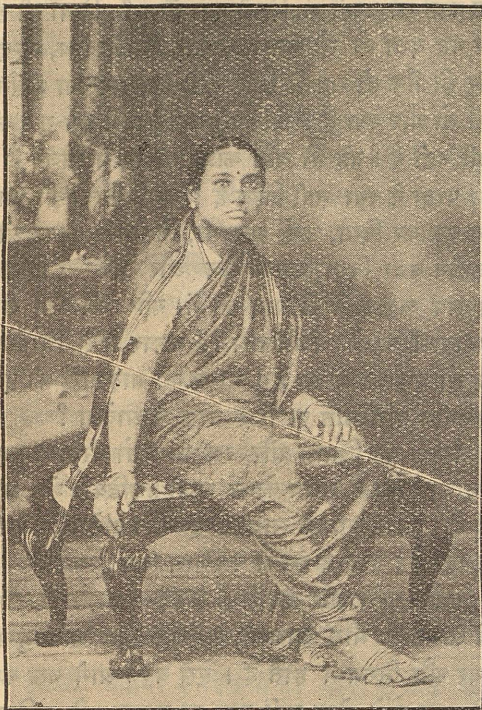
आप कर्नल के० पी० कुकडे आई० एम० एस० की विदुषी कन्या हैं। आप नागपुर में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

कुमारी जी० एन० श्रद्धा

आप हाल ही में चिटूटूर के डिस्ट्रिक्ट एजुकेशनल कौन्सिल की सदस्य निर्वाचित हुई हैं।

जन्मान्तर, पुश्त-दरपुश्त चलती ही जायगी! इस अन्धेर का भी कोई ठिकाना है?

सुनते हैं, यवनों के शासन-काल में परदा का जन्म हुआ था। उस समय परदा की कितनी आवश्यकता थी, यह बात बतलाने के लिए अनेक प्रकार की दलीलें पेश की जाती हैं। उनमें अनेक मान्य भी हैं। सब का तात्पर्य यह कि उस समय परदा अत्यन्त आवश्यक था। ठीक है। मानती हूँ। मानती हूँ कि बिना परदा के उस समय स्त्रियों का धन और धर्म अरक्षित था। इज़्ज़त और आबरू की रक्षा के लिए स्त्रियों को परदा में छिपा कर रक्खा गया। किन्तु वह समय तो बहुत दिनों तक रहा नहीं। शीघ्र ही उस ज़ारशाही का अन्त हो गया और ज़रूरी था कि उसके साथ ही परदा का भी अन्त कर दिया जाता, किन्तु ऐसा किया नहीं गया। परदा जो आकर स्त्रियों के शरीर पर जमा, तो उसने उस शरीर को अपना बपौती अधिवास समझ लिया। फिर टलने की उसने कभी बात ही नहीं सोची, शायद सपना तक नहीं देखा।

परदा तो देश की अक़्ल पर ही पड़ गया है। आज से नहीं, उस समय से जब से आत्मरक्षा के लिए इस घातक प्रथा का आश्रय लिया गया। बात समझ में नहीं आती कि परदा से रक्षा कैसे हो सकती है! परदा तो मनुष्य को और अधिक अरक्षित तथा असहाय बना देता है। आत्मरक्षा के लिए तो चरित्र और बहादुरी चाहिए। भला, हाथ भर घूँघट निकाल कर सड़क पर चलने वाली स्त्रियाँ क्या आत्मरक्षा कर लेंगी? ऐसी तो कोई घटना आज तक किसी के देखने-सुनने में आई

नहीं। इसके विपरीत, यह अक्सर देखा गया है कि परदे वाली स्त्रियाँ गुण्डों के द्वारा छेड़ी गईं, सताई गईं, अपमानित हुईं। अनेक बार रेल में, किसी उत्सव या मेला की भीड़ में परदे वाली स्त्रियाँ केवल परदे के कारण ही अपने सम्बन्धियों से बिछुड़ गई हैं। उसके बाद उन्हें कितनी ज़िल्लत, कितनी परेशानी उठानी पड़ी है और घर वालों के द्वारा भी कितना लाञ्छित और अपमानित होना पड़ा, यह बात कौन जाने!

श्रीमती के० टी० आचार्य

आप मद्रास प्रेज़ीडेन्सी में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

बुद्धि, सभ्यता और शिष्टाचार के विकास के साथ ही साथ, हमारे हृदय में पाप के साम्राज्य का विस्तार भी तो हो रहा है! परदा ने हमारे मन और मस्तिष्क दोनों ही को दुर्बल बना दिया है। दुर्बल मन और मस्तिष्क में सदाचार और सद्भावनाएँ कितनी देर तक टिक सकती हैं, यह बात विचारणीय है।

स्त्रियाँ तो मातृशक्ति हैं, जननी हैं न? संसार को उत्पन्न करने और उसका पालन-पोषण करने का महत्वपूर्ण कार्य तो उन्हीं के ज़िम्मे पड़ा है न? स्त्रियों की ही जब यह दशा हो, तो उनकी सन्तान कैसे स्वस्थ, सुन्दर और निर्भीक हो सकती है? ऐसी आशा रखना मूर्खता नहीं तो और क्या है? लेकिन हमारे देश में इस गुण की कमी नहीं है। यह तो यहाँ काफ़ी तादाद में मौजूद है।

परदा ने क्या नहीं किया है? उसने स्त्रियों का स्वास्थ्य नष्ट कर दिया, उन्हें आलसी, निरुद्यमी, कायर और तेजहीन बना दिया, उनका तेज और शौर्य खो दिया। यह सब चले जाने के बाद स्त्री में स्त्रीत्व ही क्या शेष रह गया? आमोद? विलास?? शृङ्गार??? छिः, यह सब तो घृणा के कारण हैं। भारत की मातृशक्ति की इस शोचनीय परिस्थिति पर किसे तरस न आवेगा?

स्त्रियों का दिमाग़ और रक्त-मांस तो परदा आत्मसात् कर चुका है। अब केवल सूखी हड्डियाँ शेष रह गई हैं। वह उत्साह के साथ, उन्हें भी चबाने की तैयारी कर रहा है। न जाने इसका परिणाम क्या होगा?

इन—शरीर और मन दोनों से ही—कमज़ोर स्त्रियों के बच्चे स्वभावतः भीरु, आलसी, शक्तिहीन, कर्त्तव्य-विमुख, कायर और निरुद्यमी होते हैं। ऐसे बच्चे आगे चल कर चरित्रवान होंगे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे दुनिया में उन्नति नहीं कर सकते, दुनिया के सामने सिर नहीं उठा सकते, अपनी इज़्ज़त और देश की प्रतिष्ठा के लिए मर-मिटने की हिम्मत नहीं रखते। हमारे देश में क्या ऐसे बच्चों की, या बच्चों के बापों की कमी है? ओफ़्! इनकी संख्या तो बहुत है, बेतादाद, बेशुमार!! ये भला अपने और अपने देश के लिए क्या कर सकेंगे?

किन्तु देश में कुछ जागृति के लक्षण दीख रहे हैं। मालूम पड़ता है कि निरन्तर इतने दिनों तक सोए रहने के बाद समाज की आँखें अब खुलने का उपक्रम कर रही हैं, नींद की ख़ुमारी दूर हो रही है और समाज अँगड़ाइयाँ ले रहा है। तिरस्कार, अपमान और पतन के ठोकर खाकर वह तिलमिला उठा है। वह उठना चाहता है, उठने की कोशिश करता है, किन्तु सदियों की नींद की ख़ुमारी क्या एक दिन में दूर होगी?

परदा के विरोध में, देश में जहाँ-तहाँ आन्दोलन होने लगा है। लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे क्रियात्मक रूप से इस आन्दोलन में भाग भी लेने लगे हैं। देश की बुद्धि यदि इसी तरह ठीक-ठिकाने

रही, तो सम्भव है, फिर हम अपना खोया हुआ सम्मान, शक्ति और अधिकार पुनः प्राप्त कर लें।

लेकिन यह तो सपने हैं। सपने हमेशा सच्चे नहीं हुआ करते। सच्चे हो सकते हैं, किन्तु होते प्रायः नहीं हैं। हमारा देश बड़ा भावुक है। किसी को छोड़ते हुए उसके दिल में बड़ा दर्द होता है। अच्छा हो या बुरा, एक बार जिसे आश्रय दिया, फिर उससे क्या नाता तोड़ना? सन्देह नहीं कि इन भावनाओं में भाव-प्रवणता और सहृदयता की पर्याप्त मात्रा है, किन्तु दुनिया में चलने और जीवित रहने के लिए केवल इन्हीं की ज़रूरत तो नहीं पड़ती। यहाँ तो युद्ध का, लड़ाई का जीवन है। कोमलता और सुकुमारता चाहे कम ही हो—न भी हो तो कोई चिन्ता नहीं—लेकिन बहादुरी, लड़ने का माद्दा और मरदानापन तो होना ही चाहिए। परदा कुप्रथा है ज़रूर, लेकिन मालूम पड़ता है, उसे छोड़ते हुए भी देशवासियों के दिल में दर्द होता है। ऐसी बात न होती अगर, तो कब का उसे उतार कर फेंक दिया होता! कौन बड़ा मुश्किल काम था?

हमारी बहिनों के दिल में तो परदा के प्रति अभी भी पूर्ण रूप से वितृष्णा उत्पन्न नहीं हुई है। और इसका कारण भी है। प्रारम्भ से ही समाज के नियामकों ने स्त्री-जाति को—जो पुरुष का आधा आवश्यक अङ्ग कही और शायद समझी भी जाती हैं—पीछे रखने, अपदस्थ करने और दबाने का प्रयत्न किया है। उनके इस असत् प्रयत्न के अन्तराल में उनकी कौन सी अच्छी या बुरी इच्छा छिपी है, यह समझना तो पहेलियों की तरह आसान नहीं है, अधिक सम्भव है कि समझने की चेष्टा करते हुए हमें धोखा खाना पड़े, किन्तु यह बात तो मुक्त-कण्ठ से कही जा सकती है कि उनके इस प्रयत्न का फल उन्हीं के लिए अधिक से अधिक हानिकर सिद्ध हुआ है।

किन्तु हम विषय से अलग जा रही हैं। हमारा अभिप्राय यह था कि सैकड़ों वर्षों तक परदे में रहने के बाद भी, जो स्त्रियाँ परदे का गुण-अवगुण नहीं जान सकी हैं, उसका कारण उनकी अशिक्षा के सिवा और कुछ नहीं है। और उनके अशिक्षित रहने का सारा दायित्व समाज के नियामकों पर ही है। उन्होंने ही तो स्त्रियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की? उसे उचित नहीं क़रार दिया, उसकी उपयोगिता नहीं स्वीकार की?

किन्तु यह तो विद्रोह का युग है न? क्या स्त्रियों का हृदय विद्रोही न हो उठेगा? क्या अपने ऊपर निरन्तर सैकड़ों वर्षों से होते आने वाले ज़ुल्मों और अत्याचारों के विरुद्ध वे बग़ावत का झण्डा न खड़ा करेंगी? यह असम्भव है!

उन्हें सब कुछ स्वयं ही करना होगा। उनके लिए उनका कोई नहीं है, अपने लिए उनका सभी कोई है। इसलिए, उन्हें तो अपने ही पैरों खड़ा होना पड़ेगा,

श्रीमती के० जे० आर० कामा
आप नागपुर (सी० पी०) में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

अपने लिए ख़ुद ही लड़ाई लड़नी होगी। तभी वे विजयी होंगी, तभी उनकी रक्षा होगी!

हर्ष की बात है कि कुछ बहिनों का ध्यान इधर गया है और वे सम्मिलित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ उद्योग भी कर रही हैं। उनके अतिरिक्त देश में इधर-उधर भी परदे की अनुपयोगिता और अव्यवहारिकता हमारी बहनें समझ रही हैं और उससे अलग हो रही हैं, किन्तु अभी इस आन्दोलन की प्रगति अत्यन्त मन्थर है। इस गति से तो विशेष कुछ होता दीख नहीं पड़ता। इस विचार को

देश भर में आग की तरह लहक उठना चाहिए, जलप्लावन की तरह फैल जाना चाहिए। इस गति से कहीं कुप्रथाओं की सीमा से अलग हुआ जा सकता है ?

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी यह बात सर्वांशतः ठीक है, लेकिन इसके साथ ही यह बात भी तो है कि हमारे देश के पुरुषों में बर्दाश्त करने की शक्ति अब शेष
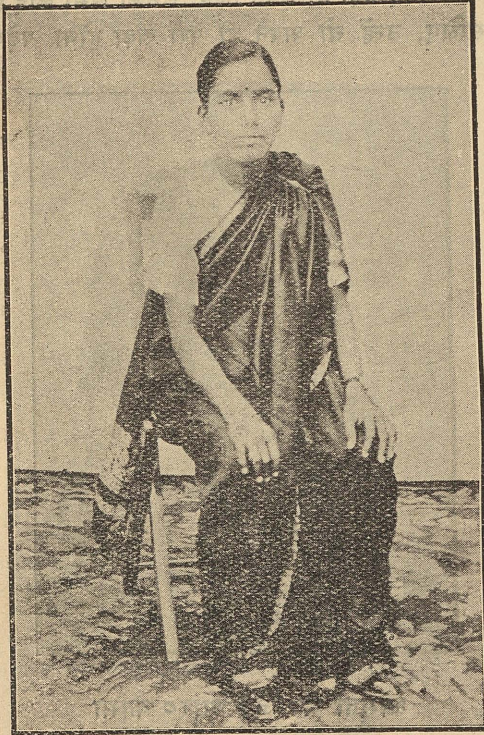
श्रीमती एम० मरगठावल्ली अम्मल

आप कराईकुडी के म्युनिसिपल कौन्सिल की सदस्या निर्वाचित हुई हैं। आप चेट्टी प्रान्त की किसी भी म्युनिसिपल कौन्सिल में निर्वाचित होने वाली प्रथम महिला-रत्न हैं।

नहीं रह गई है। वे असहिष्णु और क्रोधी हो गए हैं। हमारे इन आन्दोलनों को, उनमें से कितने ही पुरुष उचित समझते हैं ज़रूर, रूढ़ियों और कुप्रथाओं के विरुद्ध उनके विचार भी अग्निमय और क्रान्तिकारी होते हैं, दूसरों को उपदेश देने में भी उनकी ज़बान तलवार से कम तेज़ नहीं चलती, लेकिन जब मौक़ा आता है, काम करने की जब ज़रूरत पड़ती है, वे बग़लें झाँकने लगते, कन्नी काट जाते, मुँह छिपा लेते हैं। कुछ पुरुष नरम नीति के होते हैं। भई, परदा से हानि तो है, उसे हम रखते भी नहीं। लेकिन एक बात है, परदा से आज तो हम स्त्रियों को मुक्त कर दें। कल को वे दूसरी फ़र्माइश करें। अगले दिन अधिकारों में समानता चाहें। यह बात तो, भाई, ज़रा मुश्किल है। स्त्रियों को तो स्त्रियों की तरह ही रहना चाहिए। अब उनसे पूछिए भला, स्त्रियों की तरह रहने का क्या मतलब? क्या किसी ख़ास तरह से स्त्रियों को रक्खी जाने का ख़ुदा के यहाँ से कोई हुक्मनामा पुरुष-जाति को मिला है? यही उनका अभिप्राय है न कि सदा से वे कुचली जाती रही हैं, अपदस्थ की जाती रही हैं, उन पर ज़ुल्म और अत्याचार होते रहे हैं, अतः अब भी वे उन्हीं ज़ुल्मों को सहें, बर्दाश्त करें, उसी बेड़ी में जकड़ी रहें। लेकिन यह क्या उचित है? न्याय-सङ्गत है? मैं पूछती हूँ, उसी पुरुष-जाति से, जिसने स्त्रियों के लिए इन क़ानून-क़ायदों का निर्माण किया है!

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपने हक़ और अधिकार को इच्छापूर्वक छोड़ देना कोई पसन्द नहीं करता। अङ्गरेज़ ही आज हिन्दुस्तान में राज्य कर रहे हैं, सारे देश ने उनके विरुद्ध बग़ावत का झण्डा खड़ा किया है, सारा मुल्क उनके ख़िलाफ़ अपनी ख़ूनी आँखें गुरेर रहा है; लेकिन इसीसे क्या वे अपना अधिकार सहज में ही छोड़ देंगे? उहुँक! इतनी बड़ी हुकूमत, इतना बड़ा अधिकार, यह क्या आसानी से छोड़ा जा सकता है? असम्भव !!

यह सब तो ठीक है, किन्तु यह तो न्याय की बातें नहीं हैं न! यह तो ज़ुल्म और अत्याचार है। ज़्यादती है। और ज़ुल्म कब तक सहा जा सकता है? आख़िर एक न एक दिन ऐसा आवेगा ही, जब ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानी पड़ेगी, बग़ावत करना होगा। किसी बात की अति जब हो जाती है, तो ऐसा ही होता है। यह तो मानव-स्वभाव है।

लेकिन ये भले आदमी यह भी तो स्वीकार नहीं करते। ये तो कहते हैं, हमने बहुत किया। जो कुछ कर रहे हैं, वही क्या कम है? मीठी-मीठी बातें कह कर

बच्चों की तरह हमें भुला देना चाहते हैं—तुम तो गृहिणी हो, घर की स्वामिनी हो ! कौन कहता है पराधीन हो, दुखी हो ? सारे घर के शासन का सूत्र तो तुम्हारे हाथ में है। इच्छानुरूप तुम उसका सञ्चालन करती हो। यह अधिकार क्या किसी से कम हैं ? लेकिन मीठी-मीठी बातें सुनने का ज़माना तो अब नहीं रह गया। अब तो साफ़-साफ़ बातें हो जानी चाहिएँ। जो कुछ जैसा भी हो, उसका निबटारा हो जाना चाहिए। या तो पुरुष हमें अधिकार दें, हमारे साथ समानता का व्यवहार करें, अर्धाङ्गिनी कहते हैं, तो क्रियात्मक रूप से अर्धाङ्गिनी स्वीकार भी करें, और या फिर यही कह दें कि चाहे ज़ुल्म हो या अत्याचार हम तुम्हें अधिकार न देंगे। अपने बराबर आसन पर न बिठाएँगे। बस, फ़ैसला ही हो जाय ! या इधर या उधर !!

हमारे कथन में प्रतिहिंसा का भाव नहीं है। पुरुष ऐसा करते हैं, इसलिए हम भी ऐसा करें, यह कोई बात नहीं है। मैं इसे पसन्द भी नहीं करती। किन्तु हमारी बात तो यह है कि हमें ऐसा ही होना चाहिए, इसलिए ऐसा हो। परदा तो हमारे जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। ऐसा न होता अगर, तो मैं उसके सम्बन्ध में कुछ न कहती। जैसे पुरुष जाति के और अनेक ज़ुल्म हम सहती हैं, वैसे ही इसे भी सह लेतीं, लेकिन दबने का फल—मैं देख रही हूँ—कुछ अच्छा नहीं हो रहा है। हम जितना ही दबती हैं, ग़म खाती हैं, सन्तोष करती हैं, उतना ही अधिक प्रबल वेग से समाज हमें दबाता है, कुचलता है, मिटा देने का प्रयत्न करता है। यह तो हमें अभीष्ट नहीं है। हम पुरुषों के लिए अपना अस्तित्व खो दे सकती हैं, अपने को मिटा दे सकती हैं। ऐसा करती भी हैं, किन्तु हम इसलिए मिटें कि वे हमें मिटा दे सकते हैं वे समर्थ हैं, बलवान हैं, हम पर हुकूमत करते हैं, यह तो असह्य है। इसके प्रतिकार की चेष्टा तो करनी ही होगी। चाहे जैसे हो, इस ज़ुल्म का अन्त तो करना ही पड़ेगा !

तर्क और दलीलों का कोई मूल्य हमारी दृष्टि में नहीं है। इनका तो निर्माण ही शायद सच को झूठ और झूठ को सच बनाने के लिए हुआ है। हमारे लिए इनकी कोई उपयोगिता नहीं है, और ये हमारे पास हैं भी नहीं। यह सब तो पुरुष जाति को ही मुबारक हो ! हमारे पास तो अपनी सच्ची और सीधी-सादी बातें हैं और अपना अटल कार्यक्रम है। हमारा विश्वास है, विजयी होने के लिए इनके अतिरिक्त और किसी वस्तु की ज़रूरत हमें न पड़ेगी।

प्रकृति ने हवा, पानी, धूप और रोशनी का व्यवहार करने का सब को समान अधिकार दिया है, किन्तु हमारा समाज तो यह समानता भी नहीं देख सकता।

सी० पी० कौन्सिल की नवीन सदस्या
श्रीमती मैकफ़ेडिन

आप नागपुर युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर श्री० मैकफ़ेडिन की धर्मपत्नी हैं। आप नागपुर में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं। सी० पी० सरकार ने जिन महिलाओं की नियुक्ति की है, उनमें से एक आप भी हैं।

हमारे मुँह पर परदा डाल कर और सात तालों के अन्दर घर की कोठरी में हमें बन्द करके उसने हमें रोशनी और साफ़ हवा से तो वञ्चित कर ही दिया। अब हम यह सोचती हैं कि कल अगर वह कहीं कह दे कि साँस मत लो, पानी मत पिओ, रोशनी मत देखो तब ? तब हमारा क्या कर्त्तव्य होगा ? यह तो जीवन-मरण का प्रश्न है न ? यहाँ तो चुप नहीं रहा जा सकता।

और रहा भी जा सकता है, बशर्ते कि समाज हमें लिख दे कि तुम मिट जाओ, तुम्हारी हमें कोई ज़रूरत नहीं है। ऐसा होने पर हम संसार के किसी दूसरे कोने में अपने लिए स्थान ढूँढ़ लेंगी। किन्तु अगर ऐसा नहीं है, तो हमें जीने दीजिए, सुख और शान्ति से ही जीने दीजिए। आपका तो इसमें कुछ बिगड़ता नहीं?

श्रीमती इस्थरबालू अम्मल

आप "मेटरनिटी ऐण्ड चाइल्ड वेलफ़ेयर एसोसिएशन" की सुयोग्य धाय हैं। हाल ही में आपकी अमूल्य सेवाओं के लिए आपको एक स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ था जिसे आपने एसोसिएशन को ही दे दिया।

हमारी बातें तो यहाँ ख़तम होती हैं। मैं अपनी बहिनों से कहती हूँ, वे इस ओर विशेष ध्यान दें, इसका परिणाम सोचें और कार्य-पथ में अग्रसर हों।

हमारे सामने दो ही कार्यक्रम हैं। पहला, परदा को अत्यन्त अनावश्यक समझ कर उसे दूर कर देना और दूसरा, देश की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करना। स्त्रियों की शिक्षा कैसी होनी चाहिए, इस विषय पर हम फिर विचार करेंगी। आज तो बस इतना ही बहुत है।

—श्यामकान्ता देवी

* * *

स्त्रियों का स्वर्ग—रूस

संसार में एक भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ महिलाओं का जीवन उतना सुखी हो, जितना रूस में। क्रान्ति के बाद, बोलशेवा शासन के उदय के समय से ही, इन महिलाओं का जीवन इतना सुखी और सम्पन्न हो गया है कि समस्त संसार की स्त्रियाँ ईर्ष्यापूर्वक उनकी ओर देखती हैं। इङ्गलैण्ड में इतना आन्दोलन करने पर स्त्रियों को मताधिकार मिला ज़रूर, किन्तु अब भी अनेक बार पुरुष उनकी 'समानता' स्वीकार करना पसन्द नहीं करते! ऐसे उदाहरणों की हमारे पास कमी नहीं है। पार्लामेण्ट में पुरुष सदस्यों ने पार्लामेण्ट के भोजनालय में स्त्रियों के साथ भोजन करना अस्वीकार कर दिया था। 'केवल पुरुषों के लिए' अनेक क्लब आदि आए दिन स्थापित किए जा रहे हैं। कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं को बड़े-बड़े सरकारी ओहदे प्राप्त होते हैं, पर देखा जाता है कि वहाँ भी शान्ति और सुव्यवस्था नहीं दीख पड़ती; रोज़ ही एक न एक झगड़े उठते रहते हैं। एक बार एक प्रसिद्ध उड़ाकी स्त्री के पति ने समाचार-पत्रों में यह सूचना छपवा दी थी कि वे अपनी स्त्री के क़र्ज़ों के ज़िम्मेदार नहीं हैं।

किन्तु रूस में ऐसा नहीं हो सकता। वहाँ की स्त्रियों के अधिकार इतने ऊँचे हैं कि पाठकों को—विशेषकर भारतीय पाठकों को—उन्हें सुन कर आश्चर्य होगा! प्रथम हम राजनीतिक समानता से प्रारम्भ करते हैं। क्रान्ति के बाद से स्त्रियों को पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई है। इनको केवल मत देने का ही अधिकार नहीं प्राप्त है, किन्तु ये सर्वोच्च सरकारी पद भी ग्रहण कर सकती हैं! यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह इन्हें वोट देने का उतना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है,

पर ग्रामों की स्त्रियों को तो उन्हीं के समान अधिकार प्राप्त है और आश्चर्य इस बात का है कि ग्रामीण महिलाओं को नगर की स्त्रियों से कहीं अधिक अधिकार प्राप्त हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में दो महिलाएँ दो राज्यों की गवर्नर चुन ली गईं, नौ महिलाएँ कॉङ्ग्रेस की सदस्य हो गईं! बस, यही बात उनके लिए अत्यन्त महत्व की हो गई और समाचार-पत्रों में इसकी शोहरत मच गई! इङ्गलैण्ड में पार्लामेण्ट की दस-बारह महिलाएँ सदस्य हो जाती हैं तो इस बात को बहुत ज़्यादा महत्व दिया जाता है, किन्तु रूस में यह इतनी मामूली बात हो गई है कि इसका कोई महत्व ही नहीं रह गया है।

राजनीतिक स्वाधीनता की पराकाष्ठा

वहाँ इतनी महिलाएँ ऊँचे ओहदों पर, सरकारी पदों पर तथा रूसी पञ्चायत (रूस की वास्तविक शासक संस्था) की सदस्या हैं कि यह एक साधारण सी बात हो गई है! न्यूयार्क के 'एशिया' नामक पत्र में श्री मारिस हिन्दूज़ महाशय (Maurice Hindus in 'Asia' of New york) ने लिखा है कि—"जहाँ भी कोई जाता है वहीं ऊँचे पदों पर महिलाएँ मिलती हैं। रूस की मुख्य शासक संस्था अखिल रूसी पञ्चायत में आठ प्रतिशत सदस्याएँ स्त्रियाँ हैं। कोड़ियों स्त्रियाँ प्रान्तीय तथा नगर पञ्चायतों की अध्यक्षा होती हैं तथा हो चुकी हैं!" वास्तव में स्थिति इससे भी अधिक रोचक है! नित्य-प्रति शासन में महिलाओं का हाथ तना बढ़ता जा रहा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रेटब्रिटेन वा संयुक्त राज्य की तरह रूस के पुरुषों को इस बात का भय ही नहीं है कि यदि यही हाल रहेगा तो एक दिन पुरुषों पर स्त्रियों का राज्य हो जायगा! अदालतों में महिला न्यायाधीश भी कम नहीं हैं। अधिकारियों का कथन है कि यदि इस विभाग में इनकी संख्या इसी तरह बढ़ती गई तो कुछ दिनों में पुरुष तथा स्त्री जजों की संख्या बराबर हो जायगी। स्त्रियों की स्वाधीनता के क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका में, जहाँ कम से कम बीस राज्यों में औरतों को जजों की अदालत में जूरी (पञ्च) बनाने की मुमानियत है, वहाँ रूस की प्रत्येक अदालतों में स्त्री पञ्चों की संख्या बेशुमार है! गत शताब्दि में नॉरवे (Narwoy) के पुरुषों के एक विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम महिला प्रोफ़ेसर होने वाली एक रूसी गणित-शास्त्र की पण्डिता सोफ़ी कोलावस्केया महिला थीं, उसी प्रकार इस शताब्दि में सर्व-प्रथम पर-राष्ट्र में राजदूत का पद ग्रहण करने वाली भी एक रूसी महिला ही हैं! देखा जा रहा है कि शिक्षा आदि सभी विभागों में महिलाएँ ही एक प्रकार से सर्वोच्च पदों पर हैं!

सामाजिक अधिकार की चरम सीमा

ग्रेटब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य की तरह रूस में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जो केवल पुरुषों के लिए हो! यदि स्त्रियाँ किसी विशेष संस्था में अपनी भिन्न रुचि के कारण भाग न लें तो बात दूसरी है, अन्यथा कोई शक्ति उन्हें किसी बात में पुरुषों के बराबर बैठने से रोक नहीं सकती। वहाँ पुरुषों के लिए न तो ख़ास होटल है और न होटलों में "स्त्रियों के लिए सुरक्षित" मेज़ होते हैं। किसी क्लब में केवल पुरुष ही सदस्य नहीं हैं। खेल-कूद की संस्थाओं में सम्मिलित सदस्य हैं। शिक्षा एक साथ होती है और अलग विद्यालय नहीं हैं। व्यवसाय-सङ्घ या साम्यवादी दल में स्त्री-पुरुष बराबर की शर्तों पर मेम्बर हो सकते हैं। समाज के किसी भी नियम में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। ग्रेटब्रिटेन की तरह यहाँ यह नियम नहीं है कि महिला अध्यापिकाएँ पुरुषों के साथ—पुरुष अध्यापकों के साथ—खुले-आम हँसें-खेलें नहीं! वे जहाँ चाहें सिगरेट पी सकती हैं (यद्यपि सिगरेट पीना अच्छी बात नहीं है), जिस तरह की पोशाक चाहें पहन सकती हैं! बिना किसी विरोध के यह स्वीकार कर लिया गया है कि औषधि—डॉक्टरी, इञ्जिनीयरिङ्ग, वकालत सब मुहकमों में औरतें पुरुषों के समान दक्षता प्राप्त करके पेशा ग्रहण कर सकती हैं। इस विषय में ग्रेटब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य में बड़ा आन्दोलन मचा हुआ है!

उपर्युक्त बातों से पाठक समझ सकते हैं कि इनको स्वाधीनता की कितनी चरम सीमा प्राप्त है! क़ानूनी हक़ों में भी ये पुरुषों से किसी अवस्था में कम नहीं हैं! पाठकों ने देखा होगा कि अङ्गरेज़ी तथा जर्मन-प्रणाली के अनुसार विवाह के बाद कुमारी कन्या का नाम बदल कर पति के नाम के अनुसार हो जाता है और उसे पति का ख़ान्दानी नाम ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु रूस में पतियों से यह अधिकार भी छीन लिया गया है। कोई पति विवाह के बाद अपनी स्त्री को अपनी राष्ट्रीयता अथवा नाम ग्रहण करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।

यदि वह अपना स्थान बदलना चाहे तो अपनी पत्नी को भी अपने साथ स्थान बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यदि पत्नी पति का साथ छोड़ दे और बाक़ायदा तलाक़ न दे दिया गया हो तो पति को कोई हक़ नहीं है कि वह समाचार-पत्रों में छपवा दे कि 'वह अपनी पत्नी के क़र्ज़ों का ज़िम्मेदार नहीं है।'

ठीक यही दशा सम्पत्ति के विषय में भी है! पुरुष तथा स्त्री के लिए सम्पत्ति के अलग उत्तराधिकार की कोई व्याख्या ही नहीं है! सबको बराबर अधिकार प्राप्त है! पुरुष मज़बूत तथा अधिक अधिकार वाला है और स्त्री कम अधिकार वाली अतः 'रक्षणीया' है, इस प्रकार की क़ानून के अन्दर कोई गुञ्जायश नहीं है। इसीलिए वहाँ "'प्यार की कमी' या 'वादा ख़िलाफ़ी'" के मुक़दमे नहीं होते। क़ानून के सामने स्त्री-पुरुष बराबर दण्डनीय हैं। हाँ, यदि स्त्री गर्भवती है तो बात दूसरी है।

रूसी महिलाओं की विशेषता

रूसी महिलाओं को काम करने तथा जीविकोपार्जन के काफ़ी साधन मौजूद हैं। सरकार की ओर से घर पर ही उनके लिए कारख़ाने व बच्चों के पोषण का प्रबन्ध हो जाता है। किन्तु सरकार यह आदर्श रखती है कि कारख़ानों में माता काम करे, उसके बच्चे के लिए वहीं पर प्रबन्ध रहे और वह सुख से पाला जाय! उनकी शिक्षा के लिए इतने साधन हैं, कारख़ानों में काम के बाद इतना अधिक समय मिलता है कि ये महिलाएँ खाने-पीने से सम्पन्न होने के साथ ही मानसिक शिक्षा भी ख़ूब पाती हैं।

संसार की महिलाओं से रूसी महिलाओं के जीवन में महान अन्तर है। ऊपर हमने यहाँ की महिलाओं के जीवन की तुलना ग्रेटब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से की है। इसका कारण केवल यह है कि इन्हीं दोनों देशों में सबसे अधिक स्त्री-स्वाधीनता समझी जाती है। हम समझते हैं कि यहाँ ही स्त्रियों का स्वर्ग होगा। किन्तु हमें रूसी महिलाओं के जीवन का पता ही नहीं है। बोल्शेविक शासन-प्रणाली से भले ही हम पूरी तरह सहमत न हों, किन्तु वस्तुस्थिति का अध्ययन एक अत्यावश्यक कार्य है। रूसी महिलाओं के जीवन का वृत्तान्त सुन कर चित्त प्रसन्न हो उठता है।

किन्तु संसार की महिलाओं में और रूसी महिलाओं में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। रूसी महिलाओं के कर्म ही इतने पवित्र हैं कि वे इस सुख की अधिकारिणी हैं। बर्लिन, पेरिस, लन्दन, दिल्ली, कलकत्ता जहाँ जाइए, आपको जहाँ एक स्त्री सड़क पर चिथड़ों में लिपटी भीख माँगती दीख पड़ेगी तो दूसरी हीरे-जवाहरात में सजी चमकती निकलेगी। किन्तु रूस में यह बात नहीं है। वहाँ सभी स्त्रियाँ सादी पोशाक में मिलेंगी। जवाहरात लापता हो गए हैं। अमीर-ग़रीब सब एक समान रहते, खाते-पीते हैं! गहनों से लदी भारतीय स्त्रियों को देखने का आदी वहाँ जाकर एक बार चकरा जायगा! पर जैसे आप वहाँ गहने और ठाट-बाट न देखेंगे उसी प्रकार सादे कपड़ों के साथ फटे कपड़ों का नामोनिशान भी न दीख पड़ेगा! समानता के पवित्र सङ्कल्प में अपनी बहिनों के लिए बड़प्पन को तिलाञ्जलि देने का पवित्र कार्य कितना सराहनीय है।

यह तो एक विशेषता है! दूसरा प्रश्न पाठक-पाठिकाओं के मन में यह उत्पन्न हो सकता है कि पुरुष अन्य देशों की भाँति स्त्रियों के इस बढ़ते हुए अधिकार-प्रवाह को रोकते क्यों नहीं? किन्तु इसके दो कारण हैं। प्रथम तथा सर्व-श्रेष्ठ, सर्वोच्च तथा पवित्र कारण यह है कि रूसी स्त्रियाँ अन्य देशों की स्त्रियों की तरह कभी 'मताधिकार, सरकारी नौकरी व ओहदों' के लिए लड़ीं नहीं। किन्तु क्रान्ति के समय, बोल्शेविक क्रान्ति के समय, ये पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर प्रजा के सुख के लिए तथा ज़ार की क्रूरता के विरुद्ध लड़ी थीं। रूस में बोलशेवी शासन की स्थापना के लिए जितना ख़ून पुरुषों ने बहाया है उतना ही स्त्रियों ने। किसी भी पुरुष-बच्चे को यह गर्व नहीं है कि वह यह कहे कि उसने—उसकी जाति ने, देश के लिए अधिक त्याग किया है। रूस में स्वतन्त्रता की लड़ाई में जितने दल थे—मेंशविक, बोल्शेविक, साम्यवादी, क्रान्तिकारी, उदार, सब में ही स्त्रियाँ बराबर संख्या में थीं। अतः किसी भी दल की सहानुभूति इनके विपरीत नहीं हुई। दूसरा कारण यह है कि इस सहचार तथा समान मात्रा में पीड़ा सहने का परिणाम यह हुआ कि उनमें पारस्परिक 'प्रतिस्पर्द्धा' की भावना नष्ट होकर 'सहचार' की भावना जाग्रत हो उठी। एक-दूसरे को साथी मानते हैं, अतः बड़प्पन की 'प्रिटिश' होड़ उनमें नहीं है!

हमारी भारतीय बहिनें इन बातों को सुन कर कुछ सीख सकती हैं। प्रथम तो यह कि पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए पहले आपस में समानता प्राप्त करना चाहिए। अपनी दरिद्र बहिन के लाभ तथा समानता के लिए अपने गहने की तड़क-भड़क अलग कर देनी चाहिए! दूसरी बात यह है कि देश में राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरुषों द्वारा प्राप्त राजनीतिक अधिकार में ज़बर्दस्ती साझा लगाने के लिए युद्ध न करके, उनके साथ राजनीतिक युद्ध में भाग लेना चाहिए। उस समय सहचार की भावना का जो उदय होगा वह स्थायी होगा तथा भारत में भी 'बड़े-छोटे' 'समान-असमान' का प्रश्न न रह जायगा।

—परिपूर्णानन्द वर्मा

* * *

भारतीय वाद्ययन्त्र

आदि काल से ही मनुष्य रोने और गाने का अभ्यासी रहा है। पहले-पहल जब मनुष्य की सृष्टि हुई तो संसार में उसे विनोद की, मनोरञ्जन की कोई सामग्री न दीख पड़ी। संसार उसे फीका मालूम पड़ने लगा। तब अपना जी बहलाने के लिए उसने गाना प्रारम्भ किया। किन्तु गाने से भी उसे विशेष तृप्ति न हुई, सन्तोष नहीं हुआ। उसे इसमें अपूर्णता जान पड़ी। वह इस अपूर्णता को दूर करने का उपाय सोचने लगा।

अन्त में, बहुत दिनों तक लगातार प्रयत्न करने के बाद उसने एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार किया, जिसके सुर में सुर मिला कर वह गा सकता था। यह आविष्कार करके वह बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु अभी इसमें भी कुछ अभाव था। क्रम से समय बीतता गया और यन्त्र में अनेक सुधार होते रहे। मनुष्य ने उस यन्त्र के सुर में सुर मिला कर, आनन्द-विभोर होकर गाया और उसकी मधुर किन्तु करुण रागिनी भूमण्डल में गूँज उठी। वह अपने गीत पर स्वयं ही मुग्ध हो गया, विह्वल हो गया। हर्ष से, प्रसन्नता से, तृप्ति से, उसका हृदय नाच उठा। वह उसकी सफलता का, विजय का पहला दिन था।

उसके बाद, मनुष्य जाति की सभ्यता और शिक्षा की अभिवृद्धि के साथ ही साथ वाद्ययन्त्रों में भी उन्नति होती रही। अनेक प्रकार के नए-नए यन्त्रों के आविष्कार हुए और क्रम से देश भर में इनका प्रचार हुआ। उस समय के आविष्कृत वाद्ययन्त्रों में से कितने तो समय के साथ ही नष्ट हो गए, किन्तु कितने अब तक अपने तीव्र-कोमल स्वर से देश के वायुमण्डल को गुँजाते चले आ रहे हैं।

धीरे-धीरे बंसी, मुरली, वीणा, अलगोज़ा, ढोल, मँजीरा, डफ़ली आदि कितने ही बाजों का आविष्कार हुआ और लोग इनके सहारे गाने-बजाने लगे। ढोल, डफ़ली, अलगोज़ा आदि का व्यवहार अशिक्षित और पहाड़ी लोग ही अधिकतर किया करते हैं। वे लोग इनकी गूँज में मस्त होकर उछलते-कूदते और नाचने लगते हैं। वे लोग बहुत संख्या में इकट्ठे होकर एक साथ गाते और बहुत शोर-गुल मचाते हैं। वास्तव में इन बाजों का स्वर होता भी बहुत उत्तेजक है। बंसी की मधुरता के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं है। द्वापर में जब भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाई तो सारा संसार उसकी मधुर-ध्वनि से विह्वल, उन्मत्त हो उठा था।

इनके सिवा पटह, दुन्दुभि, शङ्ख, आडम्बर, बनस्पति नाम के बाजों का भी आविष्कार हुआ, जिनमें अनेक बाजों का तो अब केवल नाम ही शेष रह गया है।

वीणा

वीणा हमारे देश का सर्वोत्तम बाजा है। इसका आविष्कार तञ्जोर के एक गायक ने किया था। वीणा की बनावट भी अत्यन्त मनोहर है। यह बाजा प्रायः दो हाथ लम्बा होता है और इसके दोनों सिरों पर दो तूँबे लगे होते हैं। इसके बीच में एक भुजा होती है, जिसमें प्रायः चौबीस तार लगे रहते हैं। इसे लोहे या पीतल की एक अँगूठी से—जिसे मिज़राब कहते हैं—बजाते हैं, किन्तु जो लोग इसे बजाने में विशेष निपुण होते हैं, वे अपने नाख़ून बढ़ा लेते हैं और उन्हीं से बाजा बजाते हैं। वीणा का स्वर अत्यन्त मधुर और मोहक होता है। इसे सभी लोग पसन्द करते हैं। शायद इसके समान मधुर स्वर वाला दूसरा कोई बाजा संसार में नहीं है। हमारे देश में इसे बजाने वाले दो ही विशिष्ट व्यक्ति हैं। एक तो रामपुर के

राजा साहब और दूसरी हैदराबाद सिन्ध की मिसेज़ हामद अली।

सारङ्गी

वीणा के बाद सारङ्गी का नम्बर आता है। इसके आविष्कारक उज्जैन दरबार के एक गवैया हकीम साहब थे। आपका नाम मियाँ सारङ्ग था। उनकी इच्छा एक ऐसा यन्त्र बनाने की थी, जिसका स्वर और ढाँचा ठीक मनुष्य की तरह हो। किन्तु इस प्रयोग में, बहुत परिश्रम करने पर भी, इन्हें सफलता न मिली। हार कर, अन्त में इन्होंने वीणा की भाँति ही एक नया बाजा बनाया, जिसके तार मनुष्य की नसों के समान थे। इस बाजे का नाम इन्हीं के नाम पर सारङ्गी रक्खा गया। अभी भी भारत में कुछ ऐसे लोग हैं, जो सारङ्गी पर कुछ बोल ठीक मनुष्य की तरह निकाल लेते हैं। यह बाजा एक कमान (Bow) से बजाया जाता है। इसका स्वर बहुत मीठा होता है।

सितार

अलाउद्दीन ख़िलजी के दरबार में ख़ुसरो नाम का एक गवैया था। उसने एक ऐसा यन्त्र बनाया जो देखने में वीणा और सारङ्गी से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। इसमें सात से लेकर बारह तार तक होते हैं। इसके निचले हिस्से में केवल एक तूँबा लगा होता है। इसे भी अँगूठी (Plectrum) से बजाते हैं। जो लोग अधिक निपुण होते हैं, वे उँगलियों से भी इसे बजा लेते हैं। इसका स्वर भी बहुत मधुर होता है और इसे प्रायः भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के लोग बजाते हैं।

दिलरुबा और इसराज

इसके बाद दिलरुबा, इसराज और ताऊस आदि अनेक बाजों का आविष्कार हुआ। इन बाजों के निर्माण का श्रेय हम किसी ख़ास आदमी को नहीं दे सकते। समय-समय पर अपनी ज़रूरत और बुद्धि के अनुसार अनेक लोगों ने मिल-जुल कर ये बाजे बनाए। ये बाजे पुराने बाजों से भिन्न नहीं हैं, बल्कि पुराने बाजों में ही कुछ हेर-फेर आर सुधार कर के इन्हें दिलरुबा और इसराज आदि नाम दिया गया है। इन बाजों का प्रचार सबसे अधिक पञ्जाब में है, क्योंकि पञ्जाबी लोग अक्सर इन्हीं पर गाते हैं। गान-विद्या के प्रसिद्ध प्रेमी और हितैषी पटियाला महाराज के दरबार में गुजरसिंह नाम के एक पञ्जाबी गवैया थे, जिनके मुक़ाबले दिलरुबा और इसराज के बजाने वाले बहुत कम लोग थे। दिलरुबा और इसराज को बङ्गाल और मद्रास के भी कुछ मनचले गवैये बड़े चाव से बजाते हैं।

तम्बूरा

तम्बूरा बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध यन्त्र है। इसकी चर्चा पुराणों तक में आई है। देवर्षि नारद सदा ही भगवद्भक्ति में मस्त होकर इस पर झनकार दिया करते हैं। स्वर्ग और मर्त्य की सभी यात्राओं में यह उनका सहचर और उनके विनोद की सामग्री रहा है। अभी भी इस देश में इसका अच्छा प्रचार है और पञ्जाब में यह बहुतायत से बजाया जाता है। यद्यपि इसके साथ गाया नहीं जा सकता, तथापि सुर भरने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। इसमें पञ्चम और सिराज़, दो स्वर निकलते हैं।

तबला

तबला, पखावज और मृदङ्ग का प्रचार आज भी हमारे देश में बहुतायत से है। ये बाजे प्रायः ताल की शुद्धि के निमित्त बजाए जाते हैं और भारतवर्ष के सभी प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध गवैये इसे बजाते हैं। तबला का प्रचार सारे भारत में अधिक है, मृदङ्ग और पखावज के बजाने वाले प्रायः बङ्गाल और मद्रास में ही अधिक हैं। इसे बजाने वाले लोग हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त होते हैं, क्योंकि इनके बजाने में बड़ा बल लगता और हमेशा ही व्यायाम होता रहता है।

हारमोनियम

हारमोनियम का नाम हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है। जितना प्रचार इस बाजे का इस देश में हुआ, उतना शायद और किसी का नहीं। लेकिन इसका मूल-स्थान भारतवर्ष नहीं है। बात यह हुई कि मुसलमानों के शासन-काल में जब अङ्गरेज़ पहले-पहल यहाँ आए, तो उन्होंने बादशाह को एक ऑरगन (Organ) भेंट किया। उस समय तो वह बाजा सँभाल कर रख दिया गया, क्योंकि उसे बजाना कोई जानता ही न था। किन्तु उसके बाद बङ्गाल के गवैयों ने उसे देख-देख कर उसी के अनुरूप एक नए बाजे का आविष्कार कर डाला।

पहले इस बाजे पर केवल ठुमरी, क़ौवाली आदि बजाया-गाया जाने लगा। फिर ज्यों-ज्यों इसका प्रचार बढ़ता गया, इसमें अनेक प्रकार के सुधार होते गए, लोग इस पर प्रत्येक राग-रागिनी सफलतापूर्वक बजाने लगे। अब तो इस बाजे का प्रचार इतना अधिक बढ़ गया है कि जिसे ही मुँह खोलना आया, वही हारमोनियम-मास्टर बन बैठा। किन्तु भारतवर्ष में हारमोनियम के बजाने वाले भी कुछ ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, जो इसके बजाने में अपना सानी नहीं रखते। हारमोनियम के प्रचार से गाने-बजाने में जहाँ इतनी सुविधा हो गई है, वहीं हमारे प्राचीन वाद्ययन्त्रों को इससे हानि भी बहुत पहुँची है। धीरे-धीरे लोग सितार और वीणा आदि को भूलते जा रहे हैं।

ऑरगन, पियानो आदि पश्चिमीय वाद्य-यन्त्रों का प्रचार भी हमारे देश में हो रहा है और वह दिन दूर नहीं जान पड़ता, जब प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए गाने-बजाने का ज्ञान आवश्यक समझा जाने लगेगा।

—कुमारी विद्यावती भगत

* * *

मिश्र की एक महिला

मिश्र धन-धान्य से परिपूर्ण एक मनोरम देश है। वहाँ की राजधानी 'कैरो' संसार के सुन्दरतम स्थानों में एक है। उसे लोग दूसरा पेरिस भी कहते हैं। वह नाइल नामक एक अत्यन्त सुन्दर और रमणीय नदी के तट पर बसा हुआ है। नदी के किनारे होने के कारण नगर की शोभा और भी बढ़ गई है।

किन्तु कुछ समय पहले इस समृद्ध और सुन्दर देश की सामाजिक अवस्था कैसी थी, यह जान कर आश्चर्य होता है। सबसे बुरी दशा वहाँ स्त्रियों की थी। वे केवल पुरुषों के विषय-वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझी जाती थीं और घरों में उनकी कोई इज़्ज़त न थी। वे दिन भर खेतों में जी-तोड़ परिश्रम किया करती थीं और पुरुष घर में बैठ कर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत किया करते थे। सिर से पैर तक लटकता हुआ काला बुर्क़ा ओढ़ कर उन्हें घर से बाहर निकलना पड़ता था, जिसमें अनेक बार उनके पैर उलझ जाया करते थे। इनमें बहुतेरी स्त्रियों की गोद में और कन्धों पर दो-दो, तीन-तीन बच्चे लदे रहते थे और अपने साथ उन्हें एक गधा भी खींच कर ले जाना पड़ता था। यह दृश्य कितना वीभत्स, कितना करुणा-जनक होता था !!!

स्त्रियों को घर से बाहर पैर रखने की भी आज़ादी नहीं थी। साधारण लोगों की बात तो दूर रहे, शिक्षित और सम्भ्रान्त कुल के पाशा लोग भी इन रूढ़ियों की सख़्त पाबन्दी किया करते थे। वहाँ की स्त्रियाँ किसी पर-पुरुष से बातचीत करने का साहस भी नहीं कर सकती थीं। यदि किसी सड़क पर बिना बुर्क़े वाली, श्वेत वस्त्र धारिणी कोई रमणी दीख पड़ती थी, तो ताड़ने वाले तुरन्त ताड़ जाते थे कि यह शिक्षा और स्वतन्त्रता के लाड़ले पश्चिम देश की देवी है। इन आत्माभिमानी स्वतन्त्र रमणियों के बीच में, काला बुर्क़ा ओढ़ कर चलने वाली स्त्रियों के मन में कैसे-कैसे भाव उठते होंगे, यह कौन जान सकता है!

काले बुर्क़े से ढकी हुई ये असभ्य स्त्रियाँ ही मिश्र देश की और उसके धन-सम्पत्ति की जननी हैं, उस समय इस बात पर कौन विश्वास कर सकता था? उस समय क्या यह बात कोई मान सकता था कि इन्हीं स्त्रियों के कठोर और अथक परिश्रम से मिश्र को लाखों रुपए सालाना की आमदनी होती है? उस समय यदि उस देश की स्त्रियाँ क्षण भर के लिए भी बुर्क़ा उतार कर फेंक देने का विचार करतीं, तो मिश्र के सात पुरखों की नाक कट जाती। कदाचित इसका कारण यह था कि वे इस बात से डरते थे कि परदा हट जाने पर जब स्त्रियाँ सब कुछ देख पावेंगी, जब वे अपनी स्थिति से संसार की स्त्रियों की तुलना करेंगी, तो स्वभावतः ही उनके मन में असन्तोष होगा और वे अधिकार तथा समानता के लिए पुरुष जाति के प्रति विद्रोही हो उठेंगी। और वैसी अवस्था में, जबकि पुरुष इन अनपेक्षित आक्रमणों के लिए तैयार न होंगे, स्त्रियों का यह विद्रोह उनके सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवन में अत्यन्त दुर्वह और कष्टकर हो उठेगा। चिरकाल से चली आने वाली व्यवस्थाएँ विशृङ्खलित हो जायँगी और अधिक सम्भव है कि पुरुषों के हाथ से बहुत से अधिकार छिन भी जायँ। इसीसे, शायद वे इस बात की कल्पना का आघात भी नहीं सह सकते थे, नहीं सहते थे।

परन्तु अब उस देश की स्त्रियों की दशा वैसी ही नहीं है। अब उनकी कायापलट हो गई है। वहाँ की स्त्रियाँ अपने पति, पुत्रों और मित्रों के साथ बैठकर बात-चीत कर सकती हैं, देश की दशा पर विचार कर सकती हैं और समाज तथा राष्ट्र की हितचिन्तना में समान रूप से भाग भी ले सकती हैं। किन्तु इतना होने पर भी मिश्र की सभी स्त्रियाँ सुशिक्षित और स्वाधीन हो गई हों, यह बात नहीं है। अभी भी कितनी ही स्त्रियाँ उसी प्रकार परदा करती हैं, उसी प्रकार के लम्बे-काले बुर्क़े में ढकी हुई सड़कों पर निकलती हैं, लेकिन ऐसी स्त्रियों की संख्या कम है और क्रमशः कम ही होती जा रही है।

स्त्रियों को यह स्वाधीनता कब और कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा बड़ी मनोरञ्जक है। मनोरञ्जन के साथ ही भारतीय रमणियों के सीखने और अनुकरण करने लायक़ बहुत सा मसाला भी उसमें है।

घटना उन दिनों की है, जब पराधीन, विवश और निःशस्त्र मिश्र के निवासियों ने परतन्त्रता की बेड़ी तोड़ डालने का निश्चय किया था, जब वे संसार के सामने चिल्ला कर कह देना चाहते थे कि हम मरे नहीं हैं। अभी भी हमारे शरीर में उष्ण-रक्त का सञ्चार हो रहा है। अभी भी हममें स्वतन्त्र का अभिमान शेष रह गया है। हम स्वतन्त्र हैं, जीवित हैं। उस समय समाज के विधि-विधान की ओर भ्रू-क्षेप करने का अवकाश किसी को नहीं रह गया था। स्वतन्त्रता के संग्राम में मातृभूमि की पुकार सुनकर स्त्रियाँ और पुरुष—दोनों ही—समान रूप से अग्रसर हुए। माता की पुकार सुन कर न तो स्त्रियाँ चुपचाप बैठी ही रह सकीं, और न आगे बढ़ने से पुरुष उन्हें रोक ही सके। स्त्रियों ने बड़ी मुस्तैदी और सफलता के साथ इस संग्राम में पुरुषों का हाथ बटाया। और इस प्रकार स्वयं ही उन्होंने पुरुषों के समीप अपने लिए एक स्थान बना लिया।

स्त्रियों ने अपना एक बड़ा भारी जत्था बनाया, जिसकी अधिनायिका रुसडी पाशा की स्त्री मई होदा बनाई गई। यह जत्था नावों पर सवार होकर वहाँ पहुँचा जहाँ अङ्ग्रेज़ों का कमिश्नर बैठा मिश्र की स्वाधीनता से खेल रहा था। इन रण-चण्डिकाओं का जत्था इस समय भी काले वस्त्र और काला बुर्क़ा ओढ़े-पहने हुए था। जब ये स्त्रियाँ अङ्ग्रेज़ों की रेज़िडेन्सी के समीप पहुँचीं तो एक गोरे सिपाही ने फकिया होसनी नाम की एक रमणी का बुर्क़ा उतार लिया और उसको टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उस समय वह वीर रमणी अपना मुँह छिपाने के लिए वहाँ से भाग नहीं खड़ी हुई, किन्तु उसने वहीं खड़ी होकर एक रक्तोत्तेजक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। पहली बार, इसी दिन मिश्र से परदे का प्रतिकार प्रारम्भ हुआ और आगे चल कर वह सफल होता गया।

ज़गलुलपाशा यदि मिश्र की स्वाधीनता के जनक हैं, तो उनकी स्त्री जननी हैं। स्वतन्त्रता के इस महायुद्ध में दोनों ही योद्धा जीवन का मोह छोड़ कर लड़े हैं और उन्होंने विजय प्राप्त की है। आज मिश्र का राष्ट्रीय जीवन सुख और सन्तोष से भर उठा है। किन्तु इसका श्रेय किसको है? इसी युगल दम्पति को न?

मिश्र में जाकर अन्य स्त्रियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की पूछताछ कीजिए, सबसे पहले आपको जो नाम सुन पड़ेगा वह मई शरोई का होगा। कैरो नगर की प्रधान सड़क के पीछे इस देवी का निवास-स्थान है। वह स्थान कस्र-इल-नील कहा जाता है। इस भवन में एक बड़ा सुन्दर बग़ीचा है, जिसमें प्रवेश करने का केवल एक ही फाटक है। इस देवी का रहन-सहन, खान-पान तथा विधि-व्यवस्था किसी भी यूरोपीय महिला से कम व्यवस्थित नहीं है। इनके मकान के एक कमरे में उच्च-कोटि के ग्रन्थ क़रीने से आलमारी में सजाए हुए हैं। ये इनकी अध्ययनशीलता के परिचायक हैं।

राष्ट्र की स्वाधीनता की जननी यह देवी अपनी मन्त्रिणी श्रीमती मल्ली नानरोई के साथ अब सादे और काले रङ्ग के लम्बी आस्तीन वाले वस्त्र पहने, यूरोप की महिलाओं के हाथ में हाथ मिला कर घूमा करती है। उनके देशवासी जब कभी इनके सम्बन्ध में बातचीत करते हैं तो बड़ी इज़्ज़त और बड़े आदर के साथ इनका नाम लेते हैं। यद्यपि उन सभी के विचार इनके विचारों से बिलकुल मिलते हों, ऐसी बात नहीं है।

श्रीमती शरोई ने स्वतन्त्रता के युद्ध में जो प्रमुख भाग लिया और जिस प्रकार की योग्यता से राष्ट्र को स्वाधीन बनाया, इसके कारण, उनके देशवासी उनके किसी विचार या कार्य में बाधा देने का साहस नहीं कर सकते। और सच्ची बात तो यह है कि इनके

विचार-व्यवहार में आधुनिक सभ्यता के भद्देपन की झलक भी नहीं आ पाई है। इन्होंने नई रोशनी की सभ्यता और अपने आचार-व्यवहार को इस प्रकार साध रक्खा है कि इनकी ओर उँगली उठाने का किसी को मौक़ा ही नहीं मिलता। इधर कई वर्षों से ये एक स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रिका निकाल रही हैं। इस पत्र के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए दूसरा कोई सामयिक और उपयोगी मासिक मिश्र में नहीं है।

आजकल ये मिश्र में बहु-विवाह की कुप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन कर रही हैं। इनका ध्यान तलाक़ आदि आवश्यक प्रश्नों की ओर भी है। इनका विचार है कि किसी पुरुष को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह किसी स्त्री को पकड़ कर इच्छानुसार अपने घर में रख सके। मिश्र के पुरुष ऐसा प्रायः किया करते हैं। ये इसके विरुद्ध घोर आन्दोलन कर रही हैं।

इनके धार्मिक और सामाजिक विचार भी बड़े प्रबल और दृढ़ हैं। इनका कहना है कि पुरुषों के समान ही स्त्रियों का भी अधिकार होना चाहिए और इस बात को ये क़ुरान से भी साबित करती हैं। ये बताती हैं कि जो लोग स्त्रियों से दासियों तथा पशुओं का सा व्यवहार करते और सफ़ाई पेश करने के लिए मुहम्मद साहब का नाम लेते हैं, वे ग़लती करते हैं और इस्लाम की तौहीन करते हैं।

इसीलिए आज मिश्र में स्वतन्त्रता है। आज वहाँ की स्त्रियाँ सब प्रकार के वस्त्र पहन सकती हैं। उनके लिए काले बुर्क़ों का ओढ़ना अब बिलकुल आवश्यक नहीं रह गया।

मेडम शरोई की अवस्था इस समय लगभग ४२ वर्ष की है। किन्तु स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण देखने में ये इतने दिन की नहीं मालूम होतीं। इनके जीवन का लक्ष्य केवल स्त्रियों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना ही है और उसी के लिए तन, मन, धन से ये बराबर कार्य करती आ रही हैं। इतने ऊँचे विचार रखते हुए और संसार के आचार-व्यवहार से परिचित होते हुए भी ये अपने रस्म-रिवाजों पर लात मार कर नहीं चलतीं, उनका तिरस्कार नहीं करतीं। ये अब भी अपने देश की प्रथा के अनुकूल पोशाक पहनती हैं और समय-समय पर बुर्क़ा भी ओढ़ती हैं।

ईश्वर इन्हें चिरायु करे और ये कुसंस्कारों से भरे, रूढ़ियों के ग़ुलाम हमारे देश की स्त्रियों के लिए उदाहरण बन सकें। हमारा विश्वास है कि यदि हमारे देश की स्त्रियाँ उनके चरित्र पर एक प्रकाशमयी नज़र डालेंगी तो वहाँ उन्हें बहुत सीखने लायक़ बातें मिल सकेंगी।

—ब्रजेन्द्रपाल शर्मा, बी० ए०

* * *

नारी-हृदय

नारी का हृदय प्रेम, करुणा, ममता और सहानुभूति की रङ्गभूमि है।

वह कोमलता और सुन्दरता की कल्पलता है।

वह उदारता और सहनशीलता की तपोभूमि है।

वह क्षमा और त्याग की क्रीड़ास्थली है।

वह उत्थान और पतन का केन्द्र है।

वह उत्कर्ष और अपकर्ष की सीमा है।

वह विभिन्न भावनाओं का एक आश्चर्य-सम्मिश्रण है।

किन्तु, वह क्या है ?

नारी स्वभाव से ही प्रेममयी, करुणामयी, ममतामयी और सहानुभूतिमयी है। ये गुण उसके चरित्र और स्वभाव के साथ—सृष्टि के आदिकाल से—मिल कर एकाकार हो गए हैं। उसके हृदय की सहानुभूति अपने-पराए सभी पर सुधा की शत-शत धाराओं के समान बरस पड़ती है। उसकी आँखों के आँसू कभी सूखते नहीं, उसके ओठों की हँसी कभी मिटती नहीं, उसके अन्तर का प्यार कभी कम नहीं होता। वह चिर-सुन्दर है, चिर-कोमल। वह उदार है दूसरों के लिए, सहनशील है अपने लिए। वह अपने प्रिय के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर सकती है, अपने मान-अपमान और निन्दा-स्तुति की भी चिन्ता नहीं करती। वह बड़े से बड़े अपराधी को भी, अपना गुरुतर अनिष्ट करने वाले को भी, हँसते-हँसते क्षमा-दान दे सकती है। यही नारी का हृदय है, यही नारी का स्वभाव है।

किन्तु जहाँ वह उन्नत है, वहीं वह अवनत भी है। जहाँ उसका उत्कर्ष है, वहीं उसका अपकर्ष भी है। जहाँ उसका उत्थान है, वहीं उसका पतन भी है।

मानव-स्वभाव ही पतनशील है। जीवन में वह उठता एक बार है, गिरता अनेक बार। शायद, एक बार उठने के लिए ही, वह अनेक बार गिरता है, पतित होता है। सृष्टि के आदि से ही मनुष्य फिसलन की उस सीढ़ी पर खड़ा है, जहाँ से ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करने पर भी उसे नीचे ही गिरना पड़ता है; गिरना उसके लिए आसान और स्वाभाविक होता है, उठना मुश्किल और अस्वाभाविक; किन्तु उसे उठना ही है। गिरना उसका लक्ष्य नहीं, वह उठने का साधन है, पथ है। वह जीवन में अनेक बार, बार-बार, कभी-कभी तो जीवन भर, इसी आशा से गिरता रहता, फिसलता रहता और पतित होता रहता है कि एक बार वह उठेगा, उन्नत होगा! उठने से गिरने का नित्य सम्बन्ध है। उठने के लिए गिरना नितान्त अपेक्षित है!!

दो परस्पर प्रतिकूल तत्वों से शायद संसार का ही निर्माण हुआ है। अन्धकार न हो तो आलोक की कोई क़द्र ही क्यों करे? दुःख न हो तो सुख में मज़ा ही क्या रह जाय? वियोग न हो तो संयोग की कामना ही कोई क्यों करे?

किन्तु इस प्रतिकूलता में ही सृष्टि के आनन्द का रहस्य छिपा हुआ है। अभाव आकांक्षा का जनक है। अभाव, जीवन का चिन्ह है। अभाव से ही प्राणों में पूर्ति की इच्छा का उद्रेक होता है। अभाव में आकर्षण है, मोहकता है, पूर्ति की आकांक्षा है। यदि हमारे जीवन में कोई अभाव न हो, हमारा जीवन चारों तरफ़ से पूर्ण हो, तो सम्भवतः सबसे अधिक अप्रीतिकर और जी उबाने वाली बात जो हमारे लिए होगी, वह हमारे जीवन के अतिरिक्त और कुछ न होगी। भला, वह भी कोई जीवन है जिसमें न हलचल हो, न सुख-दुःख का द्वन्द हो, न आशा और निराशा का घात-प्रतिघात हो? सर्वदा एक भाव, एक रस रहने वाला जीवन कितना अप्रीतिकर, कितना अवाञ्छनीय होगा? ओः!

नारी के हृदय के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि एक बार वह प्यार कर सकती है, तो उपेक्षा से, घृणा से, तिरस्कार से, दूसरी बार वह ठुकरा भी सकती है। एक बार यदि वह सहनशीला हो सकती है, तो दूसरी बार घोर असन्तोषमयी होकर चण्डिका का रूप भी धारण कर सकती है। उपेक्षापूर्वक मुसकुरा कर यदि वह एक बार भयङ्कर से भयङ्कर अपराध को क्षमा कर सकती है, तो दूसरी बार उसे ही वह कठोर से कठोर दण्ड देने में भी सङ्कुचित नहीं होती। वह कोमल भी है, कठोर भी। वह सरल भी है, क्रूर भी। वृद्धों की तरह वह विचारशीला भी है और बच्चों की भाँति अपरिणामदर्शिनी भी। किन्तु क्रूरता, कठोरता, सङ्कीर्णता, उसके स्वभाव नहीं हैं। परिस्थितियों की विषमता और संसार के निष्ठुर घात-प्रतिघात उसे ऐसा बनने के लिए बाध्य करते हैं। वह प्रेम करने के लिए ही ईर्ष्या करती है, वह क्षमा करने के लिए ही दण्ड देती है, वह सहन करने के लिए ही असहनशीला हो उठती है। उसके क्रोध में भी प्रेम है। उसके तिरस्कार में भी आदर है। उसकी उपेक्षा में भी उसके हृदय का आकुल आह्वान प्रतिविम्बित रहता है। नारी का हृदय ऐसा ही है। किन्तु वह क्या है?

स्त्री और पुरुष, दोनों ही सृष्टि की महाशक्तियाँ हैं; किन्तु एक दूसरे के बिना दोनों ही अपूर्ण हैं, अधूरे हैं। पूर्ण होने के लिए दोनों का सहयोग अपेक्षित है। मिल कर, एकाकार होकर ही वे संसार में कुछ काम कर सकते हैं। दोनों में ही अभाव है, दोनों में ही अपूर्णता है, और इसीलिए उनमें एक-दूसरे से मिलने की आकांक्षा है, प्रवृत्ति है। पुरुष और स्त्री का पारस्परिक सम्मिलन आत्मा का सम्मिलन है। एक दूसरे के बिना अधूरा है।

संसार के एक प्रसिद्ध लेखक का मत है—पुरुष की क्षमता ऐश्वर्य में है और स्त्री की दरिद्रता में। जहाँ पुरुष दुर्बल है, वहीं स्त्री की शक्ति प्रकट होती है। पुरुष सर्वस्व प्राप्त कर सकता है और स्त्री सर्वस्व दे सकती है। पुरुष के लिए अप्राप्य कुछ भी नहीं है और स्त्री के लिए अदेय। पुरुष स्त्री को गिरा कर खड़ा रहता है और स्त्री गिर कर भी पुरुष की रक्षा करती है। अपने धर्म की रक्षा के लिए पुरुष स्त्री का परित्याग कर सकता है और परित्यक्त होकर भी स्त्री पुरुष के धर्म की रक्षा करती है। स्त्री पृथ्वी की कल्प-लता है। जब पुरुष अकिञ्चन हो जाता है, तब वह स्त्री से सर्वस्व प्राप्त कर सकता है।

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

* * *

महात्मा गाँधी की धर्मपत्नी

आदर्श रमणी-रत्न श्रीमती कस्तूरीबाई गाँधी

जिनके नेतृत्व में हज़ारों सुशिक्षित महिलाएँ गुजरात तथा बम्बई के विभिन्न स्थानों में शराब की दूकानों पर धरना दे रही हैं !

पति को ख़ुश कैसे रखना चाहिए ?

जब तुम्हें अपना पति चुनने के लिए कहा जावे, तो तुम किसी धनी को मत चुनो। मनुष्य के पास जितना अधिक धन रहता है, उतनी ही अधिक उसके चरित्र के अपवित्र होने की सम्भावना रहती है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, जीवन के सच्चे सुख के लिए यह आवश्यक है कि पति अच्छे स्वभाव का हो।

किसी भी कुटुम्ब में कलह या अशान्ति का होना सम्भव नहीं है, यदि स्त्री पति के सुख की सामग्री इकट्ठी कर सकती है और उनकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करने का तरीक़ा जानती है।

मैंने देखा है कि कई वैवाहिक बन्धन इसलिए तोड़ दिए गए हैं कि स्त्री को ठीक भोजन बनाना नहीं आता, अतएव स्त्रियों को पाक-शास्त्र का अच्छा ज्ञान होना ज़रूरी है। अच्छे भोजन से प्रकृति ठीक बनी रहती है और मन प्रसन्न रहता है। मन की प्रसन्नता पर ही जीवन का सुख निर्भर है।

तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि कब तुम्हें चुप रहने की ज़रूरत है। यदि पतिदेव नाराज़ हैं तो अपनी नाराज़ी उनके साथ मिला कर कलहाग्नि प्रज्वलित मत करो। तुम्हारे चुप रहने से सिर्फ़ कलह ही नहीं रुकता; परन्तु पति को भी अपनी नाराज़ी के लिए पश्चात्ताप होने लगता है।

यदि तुम अपने पति के दिल में यह बात जमाना चाहती हो कि मुझे एक स्त्री-रत्न मिला है, तो तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम भी यह बात ज़ाहिर करो कि मुझे एक गुणी पुरुष-रत्न मिला है।

यदि तुम्हें चिढ़ने की आदत है तो उस पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करो।

पति के सामने अधिक सोना ठीक नहीं है।

अपने पति के दुर्गुणों की ओर ध्यान न दो। परन्तु तुम्हारे हृदय में उनके लिए जो स्थान है उस पर पूरी तरह से प्रकाश डालो। तुम्हारा उनके प्रति जो कुछ प्रेम है उसे छिपा कर मत रक्खो। उसी सच्चे प्रेम को देख कर वे सन्तुष्ट हो सकेंगे। सन्तोष ही सुख की कुञ्जी है।

वे जो बात कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनो। इस बात की परवाह मत करो कि वह तुम्हारे मतलब की नहीं है। सारी बातों का अभिप्राय यह है कि अपने सब दुर्गुणों को हटाओ। इसका परिणाम यह होगा कि पति के दुर्गुण भी—यदि कोई होंगे तो—आप ही हट जावेंगे, तभी एक से दो हृदयों का मिलन होगा। तभी सच्ची सुख-प्राप्ति होगी।

—सौ० सरस्वतीबाई देव

*　　*　　*

व्यभिचार क्यों फैला ?

"व्यभिचार" शब्द सुनते ही मनुष्य के हृदय में घृणा, उपेक्षा और अप्रीति के भाव उठ खड़े होते हैं। यह स्वाभाविक है। किन्तु फिर भी हमारे देश में व्यभिचार की वृद्धि हो रही है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारा देश वह देश है जहाँ भीष्म से ब्रह्मचारी पैदा हुए थे, लक्ष्मण से जितेन्द्रिय। जहाँ राम, कृष्ण और युधिष्ठिर ने जन्म धारण किया था। यद्यपि आज वे विश्व-वन्द्य पुरुष-पुङ्गव हमारे देश में नहीं रहे, लेकिन उनकी कीर्ति-कहानी आज भी हमारे कानों में गूँज रही है। आज भी उनके पुनीत कार्यों की स्मृति हमारे हृदय को बल, उत्साह और उत्तेजना से भर देती है। आज भी हम अपने पूर्वजों के नाम पर लाखों रुपए व्यय करते हैं, मन्दिर बनवाते हैं और उनमें स्थापित देवताओं की पूजा करके भगवान् रामचन्द्र व महात्मा श्रीकृष्ण के भक्त होने का दम भरते हैं; परन्तु इतना होने पर भी आज भारतवर्ष में दिन-प्रतिदिन व्यभिचार की वृद्धि होती जा रही है !! इसका कारण क्या है ?

साधारण व्यक्तियों को जाने दीजिए, जो भगवान् के भक्त कहे जाते हैं, रामनामी दुपट्टा ओढ़ते हैं, लम्बे-चौड़े तिलक लगाते हैं, ठाकुरजी के सामने आड़े-तिरछे खड़े होकर प्रार्थना करते हैं और दिन-रात माला फेरा करते हैं, इतना ही नहीं, बल्कि उठते-बैठते, सोते-जागते जिनके मुँह में राम-राम की ही रट लगी रहती है, उनके व्यवहारों का भी जब पता लगाया जाता है, तो मालूम पड़ता है कि अमुक सज्जन ने अमुक स्त्री के गर्भ रख दिया और लोक-भय से गिरा दिया। अमुक सज्जन का अमुक स्त्री से अनुचित सम्बन्ध है। अमुक स्त्री का अपने श्वसुर

अथवा जेठ से ताल्लुक़ है ! कहने का तात्पर्य यह कि दिन-प्रतिदिन व्यभिचार व भ्रूण-हत्या आदि की अधिकता होती जा रही है। कोई भी समाचार-पत्र ऐसा देखने में नहीं आता जिसमें भ्रूण-हत्या आदि के विषय में कुछ न कुछ समाचार न रहता हो। यह सब कुछ होने

गुजरात की सत्याग्रही महिलाओं का जत्था, जो श्रीमती कस्तूरीबाई गाँधी के नेतृत्व में शराब और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन कर रहा है।

पर भी लोग अपने को ईश्वर-भक्त और धर्मात्मा समझे बैठे हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है !!

इन सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आज भारतवासियों का अधःपतन वेद और शास्त्रों के पठन-पाठन छोड़ने के कारण हुआ है। आज लोगों ने भगवान् मनु के उपदेश को भुला दिया है; आज महर्षि पराशर जी के अध्याय ४ के २० और २१ वें श्लोक को लोग भूल गए हैं। यदि उन्होंने नीचे लिखे श्लोक को याद रक्खा होता, तो ऐसा अनर्थ करने का साहस उन्हें कदापि न होता। यदि आज लोगों ने "अनुज-वधू भगिनी सुत-नारी, सुन शठ कन्या सम ये चारी" वाली चौपाई पर ही विचार किया होता तो वे अपने घरों में व्यभिचार न करते। महर्षि पराशर जी कहते हैं :—

यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥

अर्थात्—जो पाप ब्रह्म-हत्या का है, उससे दूना गर्भपात करने का है। गर्भपात करने वाले अथवा कराने वाली का प्रायश्चित्त कुछ नहीं है; किन्तु उसका त्याग ही कर देना चाहिए। इसके पूर्व और पश्चात महर्षि पराशर जी ने अनेक बड़े से बड़े पापों के प्रायश्चित्त बताए हैं; परन्तु गर्भपात करने वालों का कोई प्रायश्चित ही नहीं बतलाया। इसी प्रकार अन्य अनेक धर्म-ग्रन्थों में भ्रूण-हत्या करने वाले के समान पापी कोई नहीं ठहराया गया। परन्तु जब से पौराणिक धर्म का प्रचार हुआ है, तभी से इस देव-भूमि पर भ्रूण-हत्या और दुराचार व व्यभिचार की अधिकता हुई है। अब "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृते कर्म शुभाशुभम्" के महत्वपूर्ण आदर्श को लोगों ने पैरों तले कुचल कर अपना ध्येय पुराण को बना लिया है। उन्होंने समझ लिया है कि यदि हम असंख्य पाप भी कर लें, तब भी एकादशी के व्रत करने से सब पापों से मुक्त हो जायँगे। गङ्गा-स्नान

से हम सीधे स्वर्ग चले जायँगे। शिवरात्रि का व्रत तो हमें करोड़ों पापों से मुक्त कर देगा, इसलिए जब थोड़े से परिश्रम से ही हमें मुक्ति मिलती है—अनेकानेक पाप करने की आज्ञा मिलती है, तो हमें क्या आवश्यकता है जो हम "अवश्यमेव भोक्तव्यं" की ओर

अर्थात्—दस सहस्र राजसूय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस व्रत के करने वाले को प्राप्त होता है। करोड़ों गौदान करने वाले को जो फल होता है, वही फल इस व्रत के करने से होता है। केवल इतना ही नहीं, आगे और भी हद कर दिया है :—

काशी की सत्याग्रही महिलाएँ नमक बना रही हैं

ध्यान दें? यही कारण है कि आज इस देश में पैशाचिक कृत्यों की भरमार हो रही है। कुछ समाचार-पत्र भी ऐसे हैं, जिनमें इन बातों का विशेष प्रतिपादन किया जाता है। हमें दुःख है कि इन समाचार-पत्रों के ऐसे लेखों से जनता में अन्धकार की वृद्धि होती जा रही है।

एक बार किसी पत्र में महा शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य हमारे पढ़ने में आया था। लेखक महोदय ने माहात्म्य वर्णन करते हुए ये श्लोक उद्धृत किए थे :—

राजसूयायुतं यज्ञात् यत्फलं लभते नरः।
शिवरात्रि व्रतं कृत्वा तत्फलं समवाप्नुयात्।
कपिलादान कोटीनां कर्ता यल्लभते फलम्।
शिवरात्रि व्रतं कृत्वा तत्फलं लभते नरः॥

सप्त सागर संयुक्तां महीं दत्वा तु यत्फलम्।
शिवरात्रि व्रतं कृत्वा तत्फलं लभते नरः॥
सुरापान सहस्राणि भ्रूणहत्या युतानि च।
वीरहत्या सहस्राणि नश्यन्ति व्रत दर्शनात्॥
गवांहत्या सहस्राणि चाण्डाली गमनायुतम्।
शिवरात्रि व्रतं दृष्ट्वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणात्॥

अर्थात्—सातों समुद्र सहित पृथ्वी के दान करने से जो फल होता है, वही इस व्रत के करने से प्राप्त होता है। सहस्रों बार मदिरा-पान करने से, दस हज़ार गर्भ नष्ट करने से, सहस्रों वीरों की हत्या करने से जो पाप लग गया हो, सहस्र गौ-हत्या, दस सहस्र बार चाण्डालिनी के प्रसङ्ग

करने से जो पाप हो गए हों, वे सब शिवरात्रि व्रत के करने से तथा उस महाव्रत के दर्शन-मात्र से उसी समय नष्ट हो जाते हैं। यदि ऊपर लिखे श्लोकों से संसार में पापों की वृद्धि न हो तो और हो ही क्या सकता है ? ये श्लोक साफ़-साफ़ पापों को प्रश्रय देते और पाप करने के लिए मनुष्य को उत्तेजित करते हैं। इन श्लोकों को सत्य मानने और इन पर विश्वास रखने वालों की कमी हमारे देश में नहीं है, और पापों का विनाश तथा उनसे उद्धार पा लेना जब इतना आसान है तब पतनशील संसार में कौन एक बार बहती गङ्गा में हाथ धो लेने के लिए अधीर न हो उठेगा ? क्योंकि उसे विश्वास है कि वह कैसा भी पाप क्यों न करे, फाल्गुन १४ का व्रत करने से उसके पाप नष्ट हो ही जायँगे। ऐसी अवस्था में हमारी राय तो यह है कि जेलख़ाने के समस्त क़ैदियों को छुड़वा कर उनसे शिवरात्रि का व्रत करा देना चाहिए। यदि वे न कर सकें तो दर्शन ही करा देना चाहिए और भारत-सरकार को भी चाहिए कि यह हमल इस्तकात् व अन्य धार्मिक और सामाजिक क़ानूनों, क़ानूनी दफ़ाओं को बन्द कर दे। क्योंकि शिवरात्रि व्रत करने वाले को किसी भी क़ानून की आवश्यकता ही न रह जायगी।

दुःख है कि इस पुण्यमयी भारत-भूमि पर ऐसे फलों और माहात्म्यों के कारण दिन-प्रतिदिन पाप की वृद्धि होती जा रही है। इसी प्रकार गङ्गा-स्नान से करोड़ों पापों का नाश होना बतलाया गया है :—

श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू

पं० मोतीलाल जी नेहरू की सुयोग्य धर्मपत्नी। आप राष्ट्रीय झण्डा लिए हुए स्थानीय म्युनिसिपल मार्केट (विदेशी कपड़े का बाज़ार) के दरवाज़े पर धरना दे रही हैं।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूया-
द्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो
विष्णुलोकं स गच्छति।
हरिर्हरति पापानि
हरिरित्यक्षरद्वयम्।
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा
निशि पापं विनश्यति॥
आजन्म कृत मध्याह्ने
सायाह्ने सप्त जन्मनाम्।

अर्थात्—चार सौ कोस से गङ्गा-गङ्गा कहने वाला सारे पापों से मुक्त होकर सीधा विष्णु-लोक को चला जाता है। 'हरि' इन दो अक्षरों का नामोच्चारण समस्त पापों को दूर कर देता है और प्रातःकाल में जो मनुष्य शिव (मूर्ति) का दर्शन करे, तो रात्रि में किया हुआ, और मध्याह्न में करे तो जन्म भर का और सायङ्काल में दर्शन करे तो सात जन्मों का पाप छूट जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है !!

यह बात साधारण बुद्धि में भी आ सकती है कि यदि ऊपर लिखे अनुसार अनेक प्रकार के माहात्म्य न बने होते और पौराणिक मत का प्रचार न हुआ होता तो आज इस गौरवमयी भूमि पर पाप, दुराचार, अन्याय और अत्याचार की इतनी भरमार न होती ! यदि हमारा

लक्ष्य वेद और शास्त्रों के ऊपर होता—यदि हमारा ध्येय अपने कर्त्तव्य होते और हम ईश्वर को न्यायकारी व सर्वान्तर्यामी समझते तो निःसन्देह आज भगवान् रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के योग्य वंशज होने का गौरव हमें प्राप्त होता और इस प्रकार अनाचार और भ्रूण-हत्या व व्यभिचार आदि की अधिकता भी न दीख पड़ती। हमारा उद्देश्य "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृते कर्म शुभाशुभम्" का न रहा, इसी कारण भारतवर्ष में व्यभिचार फैला। यही इसका तात्पर्य है। आशा है, हमारी इस बात पर हमारी पाठक-पाठिकाएँ कुछ विचार करने का कष्ट उठावेंगी।

—गङ्गाराम गुप्त

* * *

मध्य-अफ़्रिका की एक विचित्र प्रथा

अफ़्रिका के एक प्रदेश के लोग अपनी वाग्दत्ता पत्नी के ओठों को काट कर विवाह की बात पक्की करते हैं। सारास-जिङ्गेस प्रदेश का कोई युवक जब किसी कृष्ण-वर्ण सुन्दरी के प्रेम-पाश में आबद्ध होकर अस्थिर हो जाता है, तब वह निम्न-लिखित रीतियों द्वारा उसके साथ विवाह स्थिर करता है। उस सुन्दरी के दोनों ओठों को समान भाव से आधे इञ्च के परिमाण में चौड़ा करके उसमें छेद कर देते हैं। किसी पेड़ के काँटा अथवा धारदार अस्त्र द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। इसके बाद उन दोनों छिद्रों में दो पतली-पतली लकड़ियों के टुकड़े ($\frac{1}{10}$ इञ्च के व्यास वाले) भर देते हैं। कुछ सप्ताह के बाद बड़े माप की दो मोटी लकड़ियों के टुकड़े उन पतली लकड़ियों के स्थान में भर देते हैं। ये लकड़ियाँ ओठ की अपेक्षा लम्बी नहीं होतीं तथा दाँत के अन्तिम भाग को स्पर्श करती रहती हैं। यह कार्य समाप्त होते ही उस रमणी की गणना उस ग्राम की सुन्दरी स्त्रियों में होने लगती है।

यह क्रिया करने के समय उस स्त्री की वयस बहुत थोड़ी रहती है। उसको उस समय बालिका ही कहना उचित होगा। अफ़्रिका की अनेक जाति के लोग अति अल्प वयस की बालिका को ही अपनी भावी पत्नी स्थिर कर लेते हैं। भावी पत्नी की अवस्था तीन-चार मास की भी होती है। बालिका की पाँच से दस वर्ष की अवस्था के भीतर ओष्ठ-छेदन क्रिया होती है।
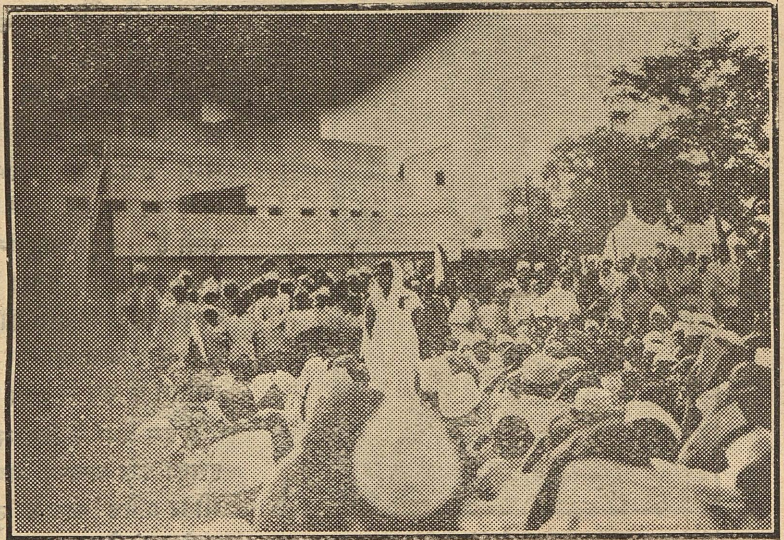
स्थानीय मोतीपार्क में विद्यार्थियों की विराट सभा

प्रयाग विद्यार्थी-मण्डल की सभानेत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित विद्यार्थियों को उत्साहित कर रही हैं।

इस 'सारास-जिङ्गेस' जाति को अनेक लोग भूल से 'सारास-कावास' कहते हैं। यह जाति याद झील के दक्षिण ओर, साहरि नदी के दक्षिण किनारे पर तथा अरब के सालामात प्रदेश के मध्य में निवास करती है। भूत-प्रेत की पूजा इनमें अधिक प्रचलित है। पुरुष अपने ही हाथ का बुना हुआ कपड़ा पहनते हैं और स्त्री पत्ते के बने छोटे-छोटे वस्त्रों के टुकड़े पहना करती हैं। इस प्रदेश की भूमि उर्वरा है, तथापि यहाँ के निवासी बहुत ही ग़रीब हैं। इस जाति के लोग जीवन-निर्वाह के लिए सिर्फ़ दो-

एक बहुत ज़रूरी फ़सलों को छोड़ कर और किसी चीज़ की खेती नहीं करते।

फ़्रान्सीसियों के आने के पूर्व यह स्थान वाडाई एवं अन्यान्य सुलतानों के क्रीतदास संग्रह करने का प्रधान केन्द्र था। वर्ष में एक बार सुलतान की सेना अस्त्र-शस्त्र लेकर इस जिङ्गेस जाति पर धावा करती थी तथा लूट-पाट मचाती थी। इस आक्रमण से डर कर उस जाति के लोग समय-समय पर उत्तर तथा पूर्व की ओर भाग जाते थे। रास्ते के कष्ट तथा क्षुधा और तृष्णा के कारण उन

कुमारी ललिता पाठक, एम० ए०

आप स्वर्गीय कविश्रेष्ठ पं० श्रीधर जी पाठक की कन्या हैं और इस वर्ष प्रयाग-विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई हैं।

लोगों को अन्त में पराजय स्वीकार करना पड़ता था। जो लोग इतना कष्ट सहन करने के बाद भी वश्यता नहीं स्वीकार करते थे उन्हें मिश्र देश में भगा दिया जाता था। ट्रिपॉली तथा टर्की में भी उन्हें कभी-कभी भगा दिया जाता था। इसी कारण 'सारास-जिङ्गेस' जाति सदा इन सब आक्रमणकारियों के भय से त्रस्त रहा करती थी। बहुत लोगों की धारणा है कि ओठ काटने की प्रथा का आविर्भाव इसी समय से हुआ था। वे लोग समझते थे कि इस प्रकार स्त्रियों का रूप विकृत कर देने से उन पर कोई अन्य जाति अत्याचार नहीं कर सकती तथा आक्रमणकारी भी अपने आक्रमण को कम कर देंगे। किन्तु इस मत के समर्थक बहुत कम लोग थे।

फ़्रान्सीसियों ने इस देश को दख़ल कर ओष्ठ-छेदन प्रथा को रद कर दिया। एक विशेषज्ञ व्यक्ति का कहना है—इस ओष्ठ-छेदन प्रथा का विकास स्त्रियों को दासत्व के बन्धन से मुक्त करने के लिए नहीं हुआ था—सम्भवतः उस प्रदेश की स्त्रियों ने सौन्दर्य-वृद्धि ही के लिए इस प्रथा का अनुसरण किया था। अपने मत के समर्थन में उनका कथन है कि—"दासत्व की प्रथा से मुक्ति पाने के लिए यदि यह प्रथा स्त्रियों में प्रचलित रहती तो पुरुष-जाति भी इस प्रथा का अनुसरण अवश्य करती। कारण मुक्ति पाने की लालसा दोनों में प्रायः एक ही सी थी।" इस जाति को छोड़ कर अफ़्रिका के प्रायः सभी अञ्चलों की असभ्य स्त्रियाँ अपनी सौन्दर्य-वृद्धि के लिए कष्ट सह कर अपने सभी अङ्गों को इसी तरह फोड़वाती हैं। बहुत अनुसन्धान करने के बाद डॉ० मुराज (Dr. Muraz) ने यह आविष्कार किया कि बालिकाओं का विवाह स्थिर होते ही यह ओष्ठ-छेदन क्रिया की जाती है। कुछ काल अनन्तर यह प्रथा इस जाति में जातीय-सम्मान के रूप में देखी जाने लगी।

इस प्रथा के विकास का कारण चाहे जो हो, किन्तु इसका फल अत्यन्त भयानक होता है। वे लोग ओठ के भीतर प्रविष्ट काठ के टुकड़े के आयतन में क्रमशः वृद्धि करते जाते हैं। इस प्रकार कुछ वर्ष के बाद ओठ के मांस परिधि में इतने बढ़ जाते हैं कि देखने से वे दो तश्तरी के समान मालूम होते हैं। नीचे के ओठ का मांस ढीला तथा परिधि में ऊपर के ओठ की अपेक्षा बड़ा होता है। सर्व-प्रथम ये दोनों ओठ सीधी तश्तरी के सदृश जान पड़ते हैं, किन्तु बाद में माँस का तौल बढ़ जाने पर वे झूलने लगते हैं। कुछ खाने अथवा पीने के समय इन मांस-तश्तरियों को सुविधानुसार पकड़े रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में स्त्रियाँ आपस में विशेष बातचीत भी नहीं कर पातीं। सङ्केतों द्वारा ही अनेक कार्य साधित होते हैं। मिट्टी के बने पाइप द्वारा ये लोग धूम्रपान करती हैं। इस जाति के पुरुष ओठ को छोड़ कर अपने शरीर के प्रायः सब अङ्गों को विशेष प्रकार के चिन्हों द्वारा चिन्हित कराते हैं। तश्तरी के समान ओठ के ऊपर भी यह जाति

अनेक प्रकार की चित्रकारी बनाती है। जो स्त्री देखने में सर्वापेक्षा भीषण होती है वही अपने पति की दृष्टि में सब से अधिक सुन्दरी समझी जाती है।

फ़ान्सीसी लोग आजकल काङ्गो राज्य के एक प्रदेश में शासन करते हैं। विगत महायुद्ध के फल-स्वरूप यह उपनिवेश उन लोगों के हाथ लगा है। इस प्रदेश से नर-मांस खाने की प्रथा का मूलोच्छेदन करने की चेष्टा फ़ान्सीसी लोग कर रहे हैं। आशा की जाती है कि बहुत शीघ्र ही इस भयानक प्रथा की जड़ कट जायगी। अफ्रिका में एक प्रकार की असभ्य जाति है, वह मांस के लिए नरहत्या करती है। नर-रक्त उसे बहुत ही प्रिय है। इस जाति के लोग "Black Panthers" अर्थात् "काला चीता" के नाम से विख्यात हैं! वर्तमान फ़ान्सीसी सरकार इन समस्त भीषण प्रथाओं का मूलोच्छेद करने तथा वहाँ की असभ्य जनता में शिक्षा-प्रचार करने का भगीरथ-प्रयत्न कर रही है।

—बख़शी उमेशप्रसाद सिंह, बी० ए०

* * *

स्त्रियों पर अनुचित दबाव

न्याय सभी चाहते हैं—छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, समर्थ-असमर्थ। जहाँ न्याय की प्रतिष्ठा और आदर नहीं, वहाँ पिशाचों का नग्न-नृत्य होता है। स्वार्थपरता की छत्र-छाया में रह कर मानव-समाज पैशाचिक आनन्द में विभोर हो उठता है। उसे इस बात की याद भी नहीं रहती कि अन्याय का आतङ्क शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

स्त्री-पुरुष का युग्म विश्व-स्रष्टा की श्रेष्ठ सृष्टि है, विमल विभूति है। दोनों के हाथों में सृष्टि-सञ्चालन का महान कार्य-भार सौंपा गया है। दोनों एक ही पथ के पथिक हैं और एक ही साधना के साधक। फिर भी समाज इन मामूली बातों को समझना नहीं चाहता और उनका विकास रोक कर अपना ही मार्ग कण्टकाकीर्ण बनाता है। जहाँ प्राचीन समय में स्त्रियाँ "गृहिणी सचिवः सखी" कहलाती थीं, वहाँ अब वे पैरों की जूतियाँ और दासी कही जाने लगी हैं। जब समाज ने ही स्त्री-शिक्षा को ठुकरा कर नारियों का चिर-प्राप्त अधिकार छीन लिया—अर्थात् गृहिणी होने की आशा-लतिका को पनपने के पहले ही सुखा दिया—तब अज्ञान के गहरे गड्ढे में पतित सुकुमारियाँ सचिव किस प्रकार हों, और सखी कहलाने की ही योग्यता कैसे प्राप्त करें?
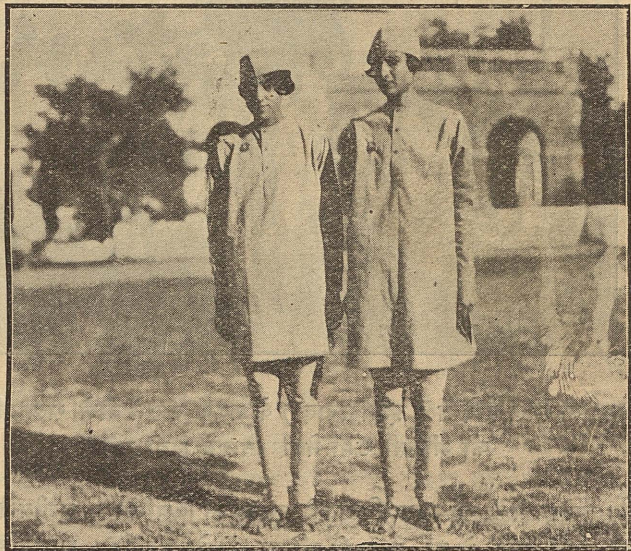
खद्दर की मर्दानी पोशाक में कॉङ्ग्रेस के स्वयंसेवक की हैसियत से कार्य करने वाली (दाहिनी ओर) पं० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू तथा (बाईं ओर) पं० जवाहरलाल नेहरू की छोटी बहिन कुमारी कृष्णा नेहरू।

भला यह किस देश की सभ्यता है? जो हमारे लिए सब कुछ करने को तैयार है, प्राण तक न्यौछावर कर देती है, उसका सत्कार हम लाल आँखों और झिड़कियों से करें; जो हमारी मृत्यु के बाद असीम यातना झेलती और हमारी स्मृति में ही द्रौपदी के चीर-सा लम्बा जीवन सूने मन से बिता देती है, उसकी मौत के बाद हम दो बूँद आँसू गिराने के बदले नई दुलहिन पाने की ख़ुशी में फूले नहीं समाते! सुन्दरी, सुशीला और कार्य-

कुशला को भी घुल-घुल मरने के लिए छोड़ कर हम बार-वनिताओं के चरण चूमें और हमारे जैसे अहदी, कुरूप तथा नपुंसक के लिए भी वह अपने अमूल्य जीवन की माया छोड़ ज़हर का प्याला पिए ? ओः !

स्वार्थत्याग की मात्रा भी स्त्रियों में परले दर्जे की है। बचपन में ही वह माता-पिता की ममता को विसर्जित कर नूतन-भवन में या अजनबी-परिवार में केवल पति का ही मुँह देख कर रह जाती है। फिर भी बहू के स्वार्थी आत्मीय सर्वदा उसकी छोटी-छोटी भूलों को देख कर उसकी ताड़ना करते या अपशब्दों से उसका सत्कार करते हैं। वह भीगी बिल्ली बनी रहती है। सबका मुँह जोहा करती है।

इच्छा न रहते भी उसे पति का अनुगमन करना होता है। हविस मिटाने को जघन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। प्रेम या अनुराग तो पारस्परिक होता है। इस पर किसी का भी दबाव नहीं रहता। किन्तु इन बेचारी अबलाओं को गला दबा कर प्रेम करने के लिए विवश किया जाता है। इनके पास तो आत्म-बल या आत्म-गौरव नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। क्या स्त्रियों का हृदय रक्त-पिण्ड का नहीं होता ?

क़ैदी की दशा से तनिक भी अच्छी दशा इस देश में इनकी नहीं है। हाँ, है तो कुछ उससे भी बुरी है। क्योंकि उसकी तो अवधि निर्धारित है, उसके बीत जाने पर वह मुक्त हो जायगा, पर इनके कारागार का द्वार तो सदा के लिए बन्द है।

तहसील हँड़िया (इलाहाबाद) के नमक बनाने वाले सत्याग्रहियों को श्रीमती उमा नेहरू तिलक लगा रही हैं।

इन दिनों की सुकुमारियाँ तो सजीव मैशीन हैं, जो केवल बच्चा देतीं या अपने जीवन की शेष घड़ियाँ रो-धो या रोटी बना कर व्यतीत कर देती हैं।

भारत-भू के पवित्र हृदय-पटल पर गृह-देवियों के प्रति होने वाले इन दुःसह अत्याचारों का अन्त कब होगा भगवान् !!

—साहित्याचार्य 'मग'

कणिका

[श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी]

पतन, पतन की सीमा का भी होता है कुछ अन्त !
उठने के प्रयत्न में लगते हैं अपराध अनन्त !!

परीक्षा

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

लो घनश्याम! क्या हो रहा है?"

"आओ भाई—अच्छे आए। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था।"

शाम के पाँच बज चुके थे। घनश्यामदास अपने कमरे में बैठे हुए एक पुस्तक पढ़ रहे थे। इसी समय उनके मित्र बाबू मनोहरलाल ने कमरे में प्रवेश किया। घनश्यामदास विलायत की एक कम्पनी के एजेण्ट हैं। एजेन्सी से उन्हें ढाई-तीन सौ रुपए मासिक की आमदनी हो जाती है—यही उनकी जीविका है। घनश्यामदास पञ्जाबी खत्री हैं। उनके परिवार में वह तथा उनकी पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं है। बाबू मनोहरलाल उनके सजातीय तथा परम मित्र हैं। मनोहरलाल एक बैङ्क में हेड क्लर्क हैं। घनश्यामदास दुबले-पतले तथा काठी के कमज़ोर हैं, मनोहरलाल हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान काठी के आदमी हैं।

मनोहरलाल एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले—घूमने चलोगे?

"हाँ-हाँ घूमने भी चलेंगे, ज़रा दम तो ले लो।"

"यह कौन पुस्तक पढ़ रहे हो?"—मनोहरलाल ने पूछा।

"यह एक उपन्यास है। बड़ा अच्छा है—मुझे बहुत पसन्द आया।"

"अच्छा! तब तो मैं भी पढ़ूँगा।"

"अवश्य पढ़ना! मैं इसे समाप्त कर चुका हूँ—केवल बीस-पचीस पृष्ठ और रह गए हैं। कल दे दूँगा।"

"प्लाट क्या है?"

"प्लाट बताऊँ? एक मित्र के विश्वासघात की कहानी है। दो व्यक्तियों में बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। एक की स्त्री बड़ी सुन्दर थी। उसके मित्र ने स्त्री को फुसला कर उससे अनुचित सम्बन्ध कर लिया। कुछ दिनों पश्चात् × × ×।"

मनोहरलाल बोल उठे—रहने दो, बस आगे कहने की आवश्यकता नहीं, नहीं तो पढ़ने में आनन्द न आवेगा।

घनश्याम हँस कर बोले—हाँ यह तो ठीक है, प्लाट मालूम हो जायगा तो पढ़ने का आनन्द आधा रह जायगा।

"अच्छा अब पढ़ना-वढ़ना बन्द कीजिए और चलिए कहीं घूम आवें। हफ़्ते में एक दिन तो घूमने-फिरने का अवकाश मिलता है। तुम उस्ताद मज़े में हो, न किसी के नौकर न चाकर—जब जहाँ जी चाहा, चल दिए। यार मुझे भी कोई ऐसी ही एजेन्सी-वेजेन्सी दिलवा दो, तो मैं यह पिसौनी छोड़ दूँ।"

"यह पिसौनी है! क्यों नाशुकरी करते हो? आराम से कुर्सी पर बैठे रहते हो और महीने में तीन सौ रुपए फटकारते हो। यहाँ तो दिन भर दौड़ना पड़ता है और आमदनी निश्चित नहीं। आकाशी-वृत्ति है, रोज़ कुँआ खोदना पड़ता है तब कहीं पानी नसीब होता है।"

"कुछ भी करते हो, परन्तु स्वतन्त्र तो हो।"

"हाँ, बस यही कह सकते हो अन्यथा और कोई विशेषता नहीं है।"

"यह विशेषता थोड़ी है?"

घनश्याम कुर्सी से उठते हुए बोले—अच्छा तो मैं कपड़े पहन आऊँ।

"हाँ पहन आओ, लेकिन जल्दी आना।"

घनश्याम भीतर चले गए। मनोहरलाल ने उपन्यास उठा लिया और उसके पृष्ठ उलटने लगे।

दस मिनिट पश्चात् घनश्याम कपड़े पहन कर आ गए और कमरे में घुसते ही बोले—हर मेजिस्टी भी चलेंगी।

"अच्छा!"—इतना कह कर मनोहरलाल कुछ सङ्कुचित हो गए।

घनश्यामदास ने मुस्करा कर पूछा—क्यों, सन्नाटे में क्यों आ गए?

"यार क्या बताऊँ, औरतों के साथ होने से मुझे

बड़ा सङ्कोच होता है—खुल कर बातचीत नहीं करने पाता।"

"तो तुम्हें कौन से ऐसे विषय पर बातचीत करनी है?"

"यह ठीक है, परन्तु सतर्क तो रहना ही पड़ता है। निश्चिन्तता और स्वाधीनता नहीं रहती।"

"तुम अपनी पत्नी को पर्दे में रखते हो इसलिए तुम्हारे तो विचार ऐसे होने ही चाहिए।"

"कौन? मैं तो पर्दे में नहीं रखता। माता-पिता जिस तरह उसे रखते हैं उसी तरह उसे रहना पड़ता है। और आप यह भी नहीं कह सकते कि पर्दे में रखता हूँ। मेरी पत्नी खुले मुँह बाहर निकलती है।"

"तुम्हारे साथ तो मैंने उसे कभी खुले मुँह घूमते-फिरते देखा नहीं।"

"तो इसके अर्थ यह तो नहीं होते कि मैं पर्दे में रखता हूँ। मैं अपने साथ लेकर इसलिए नहीं निकलता कि माता-पिता नाक-भौं चढ़ाते हैं। उसे जहाँ कहीं आना-जाना होता है माता जी तथा भाभी साहबा के साथ हो आती है, मेरे साथ जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।"

"और मैं अकेला हूँ।"

"हाँ यही तो बात है।"

इसी समय घनश्यामदास की पत्नी वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर आ पहुँची। उसकी वयस १८-१९ वर्ष के लगभग होगी। दोहरा बदन, गौर वर्ण और नखशिख सुन्दर था। मनोहरलाल को देख कर उसने 'नमस्ते' कहा। मनोहरलाल ने भी उत्तर में 'नमस्ते' कह दिया। घनश्यामदास अपनी पत्नी की ओर देखते हुए बोले—तुम्हारे कारण मनोहरलाल कुछ झेंपते हैं।

पत्नी ने किञ्चित् मुस्करा कर पूछा—क्यों, झेंपने का क्या कारण है?

"यह तो इन्हीं से पूछो।"

"क्यों मनोहरलाल जी, क्या बात है?"—घनश्याम की पत्नी ने मनोहरलाल से पूछा।

"कुछ नहीं, यह तो व्यर्थ की बातें करते हैं।"—मनोहरलाल ने उत्तर दिया।

घनश्याम हँस कर बोले—अच्छा, अब ऐसी बातें करोगे? और अभी क्या कह रहे थे?

"कह रहा था तुम्हारा सर—अब चलोगे या यहीं खड़े बातें बनाओगे?"

घनश्याम हँसते हुए बोले—चल तो रहे ही हैं।

"तो फिर चलो न।"

"चलिए!"

तीनों प्राणी मकान के बाहर निकले।

२

तीनों व्यक्ति घूमते-घामते पार्क में पहुँचे। इस समय यथेष्ट अँधेरा हो चुका था। एक ओर एकान्त में एक ख़ाली बेञ्च पर सब लोग बैठ गए।

थोड़ी देर तक वार्त्तालाप होता रहा। हठात् घनश्याम की पत्नी बोली—मुझे प्यास बड़े ज़ोर की लगी है। यहाँ कोई पानी वाला नहीं दिखाई पड़ता।

घनश्याम बोल उठे—हाँ, पानी वाला तो कोई नहीं दिखाई पड़ता।

मनोहरलाल ने कहा—यहाँ पानी वाला नहीं मिलेगा, मैं लपक कर बाज़ार से लिए आता हूँ।

घनश्याम बोले—उतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता है, यहाँ पानी वाला होगा—मैं देखता हूँ।

यह कह कर घनश्याम उठ कर एक ओर चल दिए।

घनश्याम की पत्नी तथा मनोहरलाल चुपचाप बैठे रहे। पाँच मिनिट व्यतीत हो जाने पर घनश्याम की पत्नी बोली—कहाँ चले गए!

"पानी वाले को ढूँढ रहे होंगे। इस समय उसका मिलना कठिन है। मैं बाज़ार से लपक के ले आता।"—मनोहरलाल बोले।

दोनों पुनः मौन हो गए।

हठात् घनश्याम की पत्नी 'ओह' कह कर मनोहरलाल की ओर गिर पड़ी। मनोहरलाल ने उसका कन्धा पकड़ कर सँभाला और बोले—क्या है?

घनश्याम की पत्नी बोली—किसी कीड़े की सरसराहट मालूम हुई थी।

मनोहरलाल ने झट जेब से दियासलाई की डिब्बी निकाली और दियासलाई जला कर बेञ्च को भली-भाँति देखा, परन्तु वहाँ कुछ न था। बेञ्च के नीचे भी देखा, पर वहाँ भी कुछ न दिखाई पड़ा। मनोहरलाल ने कहा—यहाँ तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

घनश्याम की पत्नी बोली—कहीं इधर-उधर हो गया होगा।

"या शायद भ्रम हुआ हो।"—मनोहरलाल बोले।

"भ्रम तो नहीं हुआ, या भ्रम ही हो गया हो। मुझे कुछ सरसराहट सी मालूम हुई थी।"

इसी समय घनश्याम हाथ में दो दुग्गडे लिए हुए आ गए। मनोहर को दियासलाई जलाए हुए देख कर उन्होंने पूछा—क्या हुआ, कुछ गिर गया क्या?

"नहीं गिरा कुछ नहीं, इन्हें किसी कीड़े की सरसराहट मालूम हुई थी; परन्तु यहाँ तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।"

"होगा भी, हटाओ! पानी पियोगे?"

मनोहरलाल दियासलाई की डिबिया जेब में रखते हुए बोले—पहले श्रीमती जी को पिलाओ।

घनश्याम एक दुग्गडा पत्नी के हाथ में देकर बोले—मैं एक दुग्गडा फ़ालतू ले आया हूँ।

"पहले इन्हें पी लेने दो, सम्भव है एक दुग्गडे से प्यास न बुझी।"

घनश्याम की पत्नी बोल उठी—नहीं, मेरे लिए इतना काफ़ी है, आप पीजिए।

मनोहरलाल घनश्याम के हाथ से दुग्गडा लेकर बोले—बाज़ार चले गए थे?

"हाँ, यहाँ कोई मिला नहीं तो उधर चला गया।"

"मैंने पहले ही कहा था—तब न माने।"

"तो क्या हर्ज हो गया?"

"हर्ज कुछ नहीं, बात कही।"

तीनों व्यक्ति पुनः अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। थोड़ी देर पश्चात् घनश्याम बोले—यार मनोहरलाल, तुम भी अपनी पत्नी को घुमाने लाया करो।

मनोहरलाल बोले—लाऊँ तो सब कुछ, परन्तु माता जी के मारे लाने पाऊँ तब न।

"तुम्हारे साथ भी नहीं आने देतीं, यह आश्चर्य है।"

"अब चाहे जो समझो।"

"ऐसा पर्दा किस काम का?"

"पर्दा भी तो नहीं है। यही तो आनन्द है। स्वयं साथ लेकर बेधड़क घूमती हैं, पर मेरे साथ नहीं आने देतीं। और तुमने तो मेरी पत्नी को देखा है।"

"हाँ एक बार देखा है—या दो बार देखा होगा। बस!"

"तो फिर पर्दा कैसे है? पर्दा होता तो तुम देख पाते?"

"हाँ यह मैं मानता हूँ कि उसे पर्दा नहीं कहा जा सकता; परन्तु है बेजा।"

घनश्याम की पत्नी बोल उठी—किसी दिन मैं ले आऊँगी। मेरे साथ तो माता जी आने देंगी कि नहीं?

मनोहरलाल बोले—हाँ आपके साथ तो शायद भेज दें!

"शायद!"—घनश्याम ने कहा।

"भेज देंगी। मैंने शायद इसलिए कहा कि किसी सनक में हों तो सम्भव है इन्कार भी कर दें।"

"यदि ऐसी बात है तो मैं न कहूँगी।"—घनश्याम की पत्नी ने कहा।

घनश्याम बोले—वाह! कहोगी क्यों नहीं, अवश्य कहना। इन्कार कर देंगी तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा? जैसी इनकी माता वैसी हमारी माता। उनके इन्कार करने से तुम्हारा कुछ अपमान थोड़ा ही हो जायगा?

"अच्छा तो किसी दिन कहूँगी।"

घनश्याम बोल उठे—या ऐसा करो कि पहले अपने घर पर बुलाओ, फिर हम सब एक साथ घूमने निकलें।

घनश्याम की पत्नी प्रसन्न होकर बोली—हाँ, यह ठीक है। ऐसा ही करूँगी।

"परन्तु तुम्हारी श्रीमती जी मेरे साथ होने से कुछ भड़केंगी तो नहीं?"

"भड़कने का तो कोई कारण न होना चाहिए, मैं भी तो साथ रहूँगा।"

"और मेरी पत्नी भी तो रहेगी।"

"हाँ, इसलिए लेखा-ज्याद़ा बराबर हो जाने के कारण नहीं भड़केंगी।"

"अच्छा तो अगले इतवार को उन्हें बुलाया जाय।"

"जब चाहो बुला लो। तुम्हारे घर भेजने से कोई इन्कार नहीं कर सकता।"

३

मनोहरलाल प्रायः नित्य ही घनश्याम के घर जाते थे। चार बजे वह बैङ्क से लौटते थे। घर आकर कुछ

जलपान करने के पश्चात साढ़े पाँच और छः के बीच में वह घनश्याम के मकान पर पहुँच जाते थे।

एक दिन नियमानुसार वह छः बजे के लगभग घनश्याम के घर पहुँचे। घनश्याम का कमरा ख़ाली था। मनोहरलाल जाकर कमरे में बैठ गए। कुछ देर बाद घनश्याम का नौकर कमरे में आया। मनोहर ने पूछा—बाबू कहाँ हैं ?

नौकर बोला—बाबू तो कहीं गए हैं।

"कुछ कह गए हैं, कितनी देर में लौटेंगे ?"

"मुझसे तो कुछ नहीं कह गए, सायत बहू जी से कह गए हों ?"—कहार ने उत्तर दिया।

"अच्छा, ज़रा बहू जी से पूछ आओ।"

नौकर चला गया। कुछ देर बाद नौकर आकर बोला—"बहू जी आती हैं।"

मनोहरलाल का कलेजा धड़कने लगा। अभी तक घनश्याम की पत्नी केवल घनश्याम की उपस्थिति में मनोहरलाल के समक्ष आती थी—अकेले कभी नहीं आती थी। अतएव इस नई बात को सुन कर मनोहरलाल कुछ घबराए। उन्होंने नौकर से कहा—मैंने बहू जी को तो बुलाया नहीं था, केवल बाबू के आने की बात पुछवाई थी।

"मैंने भी वही बात पूछी थी, पर बहू जी अपने आप ही बोलीं कि हम नीचे आती हैं !"

मनोहरलाल चुप हो गए। वह मन में सोचने लगे—आज घनश्याम की पत्नी मेरे पास क्यों आती है ? विशेषतः जब कि घनश्याम घर पर नहीं हैं। परसों इतवार की शाम को वह पार्क में मेरे ऊपर गिर पड़ी थी। कीड़े की बात कही थी; परन्तु वहाँ तो कोई कीड़ा-वीड़ा था नहीं, मैंने ख़ूब अच्छी तरह देख लिया था। क्या बात है ? कहीं × × ×।

इसी समय घनश्याम की पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में पान की तश्तरी थी। पान की तश्तरी मनोहरलाल के सम्मुख मेज़ पर रखते हुए वह बोली—वह तो कहीं काम से गए हैं।

मनोहरलाल तश्तरी में से पान उठाते हुए बोले—कितनी देर में लौटेंगे ?

"यह तो वे कुछ बता नहीं गए।"—कहते हुए घनश्याम की पत्नी मनोहरलाल के पास ही दूसरी कुर्सी पर बैठ गई। मनोहरलाल के कलेजे की धड़कन पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र हो गई।

कुछ क्षणों तक मौन रहने के पश्चात् घनश्याम की पत्नी बोली—आवेंगे तो जल्दी ही।

मनोहरलाल बोले—जब कुछ कह नहीं गए तो क्या पता कब आवें ?

"यह तो आवश्यक नहीं है कि यदि कह नहीं गए तो देर ही से आवें—जल्दी भी आ सकते हैं। आपको और कहीं तो जाना नहीं है ?"

मनोहरलाल बोले—नहीं, और तो कहीं नहीं जाना है—परन्तु × × ×।

"परन्तु क्या ?"—घनश्याम की पत्नी ने पूछा।

"यही कि उनके आने की आशा न हो तो समय नष्ट क्यों करूँ ?"

"अच्छा, तो क्या आपका समय नष्ट हो रहा है ?"

मनोहरलाल ने आँखें ऊपर उठाईं—एक क्षण के लिए उनकी तथा घनश्याम की पत्नी की आँखें मिल गईं।

इच्छा न रहते हुए भी मनोहरलाल के मुख से निकल गया—"नहीं, जब आप बैठी हैं तो समय नष्ट कैसे हो सकता है ?" परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें इन शब्दों के कहने पर पश्चात्ताप हुआ।

फिर दोनों मौन हो गए। मनोहरलाल सोच रहे थे कि किसी प्रकार यहाँ से खिसकना चाहिए। हठात् घनश्याम की पत्नी बोली—आज मेरा बदन टूट रहा है, कुछ हरारत भी मालूम होती है। आप नब्ज़ देखना तो जानते होंगे—ज़रा देखिए तो।

यह कह कर उसने अपना हाथ मनोहरलाल की ओर बढ़ाया। मनोहरलाल पहले तो कुछ सिटपिटाए, परन्तु फिर सँभल गए और उन्होंने नब्ज़ देखी। नब्ज़ देख कर बोले—हरारत तो नहीं मालूम होती।

घनश्याम की पत्नी बोली—तो मुझे भ्रम होगा, बदन टूट रहा था।

मनोहरलाल ने पूछा—दोपहर को आप सोती हैं ?

"आदत तो नहीं है, परन्तु आज सो गई थी।"

"तो बस इसी कारण बदन टूट रहा है, हरारत-वरारत कुछ नहीं है।"

दोनों फिर मौन हो गए। पाँच मिनिट तक चुप रहने

के पश्चात् मनोहरलाल बोले—घनश्याम न जाने कब आवें, इसलिए अब चलूँगा।

"बैठिए न, कहीं जाना है क्या?"

मनोहरलाल बोले—जाना तो नहीं है, परन्तु इस प्रकार हमारा-आपका एकान्त में बैठना क्या उचित है?

"क्यों, इसमें अनुचित क्या है?"

"कुछ अनुचित नहीं है?"

"मैं आप ही से पूछती हूँ, बताइए, क्या अनुचित है?"

"ख़ैर, यदि अनुचित नहीं है तो ठीक है।"

"नहीं, यदि अनुचित हो तो बता दीजिए।"

"जब आप ही अनुचित नहीं समझतीं तो मैं क्या बताऊँ?"

"मैं तो अनुचित नहीं समझती।"

इस वार्त्तालाप के तीन-चार मिनिट पश्चात् ही घनश्याम ने द्वार पर आकर नौकर को पुकारा। घनश्याम का कण्ठ-स्वर सुनते ही उनकी पत्नी शीघ्रतापूर्वक वहाँ से उठ कर चली गई।

घनश्याम द्वार पर अपनी साइकिल नौकर को सौंप कर भीतर आए और मनोहरलाल को बैठे देख मुस्करा-कर बोले—आप बैठे हैं?

मनोहरलाल बोले—हाँ, बड़ी देर से बैठा हूँ।

"मैं भी यही सोच कर भागा हुआ आया हूँ।"

"तो फिर चलो चलें।"

"चलो! परन्तु ज़रा 'हर मेजिस्टी' से भी पूछ लूँ, शायद वह भी चलें।"

मनोहरलाल ने कहा—और देर लगेगी।

"नहीं, देर का कौन काम, अभी चलता हूँ।"

यह कह कर वह भीतर चले गए। थोड़ी देर में आकर बोले—वह नहीं चलेंगी। आओ चलें।

दोनों चल दिए।

४

उपर्युक्त घटना से मनोहरलाल को विश्वास हो गया कि घनश्याम की पत्नी सच्चरित्र नहीं है। इससे उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। घनश्याम को वह अपना परम मित्र समझते थे। ऐसी दशा में मित्र की पत्नी दुश्चरित्र हो—यह बात मनोहरलाल को दुखदाई प्रतीत हुई। उन्होंने सोचा कि कम से कम मित्र के नाते उनका यह कर्त्तव्य है कि वह मित्र को सचेत कर दें। परन्तु साथ ही वह यह भी सोचते थे कि कहीं ऐसा न हो कि घनश्याम उनकी बात पर विश्वास न करें। और यह भी है कि यदि विश्वास कर लिया तो उन्हें दुःख भी बड़ा होगा। और वह दुःख क्षणिक नहीं—स्थायी होगा। मनोहरलाल दोनों बातें नापसन्द करते थे। न वह यह चाहते थे कि घनश्याम उनका विश्वास न करें और न वह उनके सुखमय जीवन को दुखमय बनाना चाहते थे।

मनोहरलाल कई दिन तक इसी उधेड़-बुन में रहे, परन्तु कोई बात निश्चय नहीं कर सके और इतवार का दिन आ गया।

इतवार को सवेरे आठ बजे उन्हें घनश्याम का पत्र मिला। उसमें लिखा था:—

"प्रियवर,

आज मेरी पत्नी की ओर से तुम्हारी दावत है। खाना यहीं आकर खाना। तुम्हारी पत्नी को भी बुलवाया है। शाम को सब लोग इकट्ठे घूमने चलेंगे।

तुम्हारा,
घनश्याम"

पत्र पढ़ कर मनोहरलाल ने पत्रवाहक से पूछा—क्या और कोई चिट्ठी है?

पत्रवाहक बोला—जी नहीं, चिट्ठी तो नहीं है; पर ज़बानी कहा है कि बहू को भेज दें।

"किससे कहा है?"

"यह कहा था कि भीतर 'माँ जी' से कह देना।"

मनोहरलाल बोले—बहू की तो तबीयत ख़राब है, वह नहीं आ सकेंगी—मैं आऊँगा।

पत्रवाहक "बहुत अच्छा" कह कर चला गया।

मनोहरलाल बोले—ऐसी स्त्री के पास मैं अपनी पत्नी को भेजूँगा? हुँह! मैं इतना बेवक़ूफ़ नहीं हूँ। ऐसी स्त्री की सङ्गति अच्छी नहीं। यह घनश्याम वज्र मूर्ख है। स्त्री जो कहती है वही करता है। मेरी दावत की है। न जाने मेरे पीछे क्यों पड़ी है? जान पड़ता है, घनश्याम से मित्रता तोड़नी पड़ेगी।

मनोहरलाल बड़ी देर तक इसी प्रकार की बातें सोचते रहे।

ग्यारह बजे के लगभग मनोहरलाल घनश्याम के मकान पर पहुँच गए। घनश्याम उन्हें देखते ही बोले—यार तुम्हारी श्रीमती जी की तबीयत आज ही ख़राब होनी थी? सारा प्रोग्राम नष्ट हो गया।

मनोहरलाल शुष्कतापूर्वक बोले—संयोग की बात है—और क्या बताऊँ?

"बड़ा अफ़सोस हुआ।"

"ख़ैर, फिर सही!"

"आज तो सारा मज़ा किरकिरा हो गया।"

मनोहरलाल सोचने लगे—मेरी पत्नी के न आने से इनका मज़ा किरकिरा हो गया! ख़ूब! यह अच्छी रही।

घनश्याम बोले—खाना तैयार है!

"अच्छी बात है। परन्तु भाई, मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ।"

घनश्याम बोले—कहो!

"मैं यह भी सोच रहा हूँ कि वह बात तुमसे कहनी चाहिए या नहीं।"

घनश्याम मुस्करा कर बोले—क्या कोई ऐसी बात भी है जो मुझसे छिपाने योग्य है?

"छिपाने योग्य तो कदापि नहीं है, परन्तु फिर भी यह सोचता हूँ कि कहूँ या न कहूँ।"

"नहीं कहनी थी तो उसका चर्चा ही न करते; परन्तु अब जब कि मेरे हृदय में उत्सुकता उत्पन्न कर दी है तो कह डालो।"

"मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि तुम्हारी पत्नी के स्वभाव में अल्हड़पन बहुत है। उसे ज़रा सँभाले रहना।"

इतना सुनते ही घनश्याम ने अट्टहास किया। मनोहरलाल अवाक् होकर उनका मुँह ताकने लगे। वह समझ गए कि घनश्याम को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

हँस चुकने पर घनश्याम ने पूछा—आख़िर आपको यह बात कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

मनोहरलाल बोले—उनके सम्बन्ध में मेरी जो धारणा हुई वही मैंने तुमसे बताई, आगे तुम जानो तुम्हारा काम।

"उसकी ओर से आप निश्चिन्त रहिए। वह बहुत भली स्त्री है।"

मनोहरलाल सोचने लगे—घनश्याम या तो जोरू का गुलाम है और या फिर उस पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करता है।

घनश्याम ने कहा—अच्छा चलो खाना खावें।

मनोहरलाल बोल उठे—हाँ, यह तो बताओ आज यह दावत कैसी?

"अब यह तो आप मेरी पत्नी से पूछिएगा।"

मनोहरलाल ने सोचा—न जाने यह कैसा आदमी है? मैं तो इसे ऐसा नहीं समझता था। स्त्री पर इतना विश्वास नहीं करना चाहिए।

हठात् घनश्याम बोले—अच्छा बता ही दूँ, तुम्हें अधिक परेशान करने से कोई लाभ नहीं। बात यह है कि मेरी पत्नी और मुझमें एक शर्त हुई थी। उस शर्त में यह था कि यदि मैं शर्त हार जाऊँ तो मैं तुमसे मिलना-जुलना छोड़ दूँ और यदि मेरी पत्नी हार जाय तो वह तुम्हारी दावत करे। सो ईश्वर की दया से मैं जीत गया, मेरी पत्नी हार गई।

मनोहरलाल चकित होकर बोले—ऐसी कौन सी शर्त थी जिसके हार जाने से तुम मुझसे मिलना-जुलना छोड़ देते?

घनश्याम ने कहा—घबराओ नहीं, सब बताए देता हूँ। जब पहले-पहल मेरी पत्नी तुम्हारे सामने आई तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने तुम्हें सच्चरित्र नहीं समझा। यह बात उसने मुझ से कही। मैंने उसकी बात का खण्डन किया। उसने कहा—"मैं तुम्हें यह साबित करके दिखा सकती हूँ कि मनोहरलाल सच्चरित्र नहीं है।" इसी पर आपस में हमारी शर्त हो गई। उसने कहा—"यदि मनोहरलाल सच्चरित्र प्रमाणित न हुए तो तुम्हें उनसे मिलना-जुलना बन्द करना पड़ेगा और यदि वह वैसे ही भले निकले जैसा तुम बताते हो तो मैं उनको सादर बुला कर उनकी दावत करूँगी।" सो जनाब, ईश्वर की दया से आप पूरे भले आदमी प्रमाणित हुए, इसलिए आपकी दावत की गई है।"

यह सुन कर मनोहरलाल सन्नाटे में आ गए। कुछ क्षणों तक चुप बैठे रहने के पश्चात् बोले—तो यह कहिए मेरी परीक्षा ली गई थी?

"अब इसे आप चाहे जो समझिए।"

"और मैं आपको आपकी पत्नी की ओर से सचेत कर रहा था।"

"यह आपकी नेकनीयती और मेरे प्रति आपका स्नेह-भाव था।"

"परन्तु तुमने तो मेरा गला कटवाने का ही प्रबन्ध किया था।"

"क्यों ?"

"ऐसी कड़ी शर्त की थी—यदि मैं परीक्षा में फ़ेल हो जाता तो ?"

"मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि तुम फ़ेल नहीं होगे, इसीलिए मैंने शर्त की थी। मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ मनोहरलाल !"

यह कह कर घनश्याम ने स्नेहपूर्वक मनोहरलाल के गले में अपनी बाँह डाल दी। मनोहरलाल बोले—और मैं तुम्हारे और तुम्हारी श्रीमती जी के सम्बन्ध में न जाने कितनी बुरी-बुरी बातें सोच गया।

"सोचना स्वाभाविक था, उसमें तुम्हारा अपराध नहीं।"

"मेरी परीक्षा के लिए तुम्हारी श्रीमती जी ने जो आचरण किए उससे मैंने उनकी सच्चरित्रता पर सन्देह किया और उसका परिणाम यह हुआ कि मैंने आज अपनी पत्नी को यहाँ नहीं आने दिया।"

घनश्याम घबरा कर बोले—सच ?

"वाक़ई। उसकी तबीयत बिल्कुल अच्छी है। मैंने बहाना कर दिया था।"

"अरे, यह तो बड़ा ग़ज़ब किया—ख़ैर अब बुलवा लो।"

"अब तो वह भोजन-वोजन कर चुकी होगी।"

"यह बुरी रही।"

"अब यह तो आप ही जानिए। इसके उत्तरदायी आप ही हैं।"

"ख़ैर चलो खाना खावें—हर मेजिस्टी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"उनके सामने जाते हुए मुझे शर्म मालूम होती है।"

"परीक्षा में पास हो गए तब भी शर्म ?"

"शर्म केवल यह सोच कर कि उनके सम्बन्ध में मैंने न जाने कितनी बुरी धारणाएँ बना ली थीं।"

"उन बातों को भूल जाओ। मुझे तुम दोनों पर गर्व है। ऐसी पत्नी और ऐसा मित्र बड़े सौभाग्य से मिलता है।"

याञ्चा

[श्री रामनगीना चौबे]

(१)

भूल जगत के कोलाहल में,
भटका था मैं इस मग में।
आश्रयहीन हृदय था, आश्रय—
पाया नहीं कहीं जग में॥

(२)

फिर भी भूलूँ यदि प्रभुवर !
तो मेरी भूल भुला देना।
जीवन की अन्तिम घड़ियों में,
नाथ ! तुम्हीं अपना लेना॥

[श्रीमती दयावती देवी जी गुप्ता]

आज सारे विश्व का स्त्री-समाज सुन्दरता के पीछे पागल हो रहा है। संसार भर की स्त्रियाँ, चाहे वह किसी जाति या समाज की हों, सुन्दरता की पुनीत इच्छा रखती हैं। वास्तव में, यह गुण है भी इसी आदर और सम्मान के योग्य। किन्तु यह लिखते हुए हमें दुख होता है कि इसे प्राप्त करने के लिए जिन कृत्रिम और अस्वाभाविक उपायों का अवलम्बन किया जाता है, वे इसके पक्ष में उलटे पड़ते हैं। लाभ के स्थान पर उनसे हानि ही अधिक होती है। स्त्री का सबसे बड़ा धन, उसका रूप है। इसी रूप के कारण, सब जगह, उसका मान होता है। घर-बाहर इसी गुण के कारण वह पूजी जाती है, उसका आदर-सम्मान होता है। सौन्दर्य के साथ ही साथ यदि उसमें और भी स्त्रियोचित गुणों का विकास हुआ हो तो फिर क्या कहना। सोने में सुगन्ध पड़ जायगी।

यूरोप का स्त्री-संसार, सुन्दरता के लिए, आज सबसे अधिक उतावला और प्रयत्नशील हो रहा है। वहाँ सुन्दर बनने के लिए, नित्य नए-नए आविष्कार होते, नित्य नई-नई तरकीबें सोची जातीं और अनेक प्रकार के स्वाभाविक-अस्वाभाविक उपाय काम में लाए जाते हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें अपने प्रयत्नों में कितनी सफलता मिलती है। मेरे विचार में तो सौन्दर्य कुछ दूसरी ही वस्तु है और इन कृत्रिम उपायों से उसे किसी प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता।

अब हमको इस बात पर विचार करना है कि सुन्दरता क्या वस्तु है। इसकी उचित परिभाषा, मेरे विचार में, आज तक किसी भी विद्वान ने नहीं की और शायद इसकी परिभाषा की भी नहीं जा सकती। प्रत्येक स्थान पर सौन्दर्य की परिभाषा अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अलग-अलग पाई जाती है। यूरोप में कमर का छोटा होना सुन्दरता की निशानी है तो भारत के कई प्रान्तों में कमर का भरा हुआ होना ही सुन्दरता समझी जाती है। चीन-जापान के लोग चपटी नाक और उभरी हुई गाल की हड्डी को सुन्दर समझते हैं। चीन में वह स्त्री अधिक रूपवती समझी जाती है जिसके पाँव अधिक न बढ़ सकें। हबशी लोग मोटे ओठ और आबनूसी चमकीले रङ्ग को ही सुन्दरता की पराकाष्ठा मान बैठे हैं। इसी प्रकार प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति सौन्दर्य की परिभाषा अपनी इच्छा के अनुसार करती है। कहीं पर सुन्दरता को प्राप्त करने के लिए ओठ और मसूड़े मिस्सी लगा कर रँगने की चाल है, तो कहीं पर साबुन, तेल, पाउडर का प्रयोग करके निर्बल और जीर्ण शरीर में भी सुन्दरता की आभा झलकाने की चेष्टा की जाती है।

वास्तव में इन सब कृत्रिम उपायों से सुन्दरता प्राप्त नहीं हो सकती। सुन्दरता प्राप्त करने का साधन स्वास्थ्य प्राप्त करना है। जहाँ स्वास्थ्य है वहाँ सौन्दर्य अवश्य है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सुडौल होने को ही सुन्दरता कहते हैं। जब प्रत्येक अस्थि की आकृति ठीक होती है, मांस-पेशियाँ बलिष्ठ होती हैं, चर्बी आवश्यकता के अनुकूल होती है, तो उस शरीर में स्वयं ही सुन्दरता की आभा झलकती है।

जब शरीर के रक्त-सञ्चालन की क्रिया ठीक रहती है

तथा धमनी और शिराएँ अपना कार्य ठीक तौर से करती हैं, तो रूप-लावण्य का विकास वहाँ स्वभाव से ही होता है। रङ्ग का काला और गोरा होना, यह तो जन्म से सम्बन्ध रखता है; किन्तु बहुधा यह भी देखा गया है कि काले रङ्ग के आरोग्य सुडौल मनुष्य, गौर वर्ण के दुर्बल शरीर से कहीं अधिक सुन्दर होते हैं। सम्भव है, जहाँ स्वास्थ्य हो वहाँ सुन्दरता न भी हो, किन्तु जहाँ सुन्दरता है वहाँ स्वास्थ्य का होना अवश्यम्भावी है। हमारे शास्त्रकारों ने जहाँ-जहाँ स्त्रियों की सुन्दरता का वर्णन किया है, तथा कवियों ने उपमाएँ दी हैं, उनसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि सुन्दरता के सब सिद्धान्त स्वास्थ्य-नियमों के अनुकूल थे। एक पुस्तक में सुन्दरता के चिन्ह इस प्रकार लिखे हैं:—

स्त्री-शरीर में चार भाग उज्ज्वल वर्ण के होने चाहिएँ—

(१) नेत्र (२) दन्त-पंक्ति (३) नखावली (४) मुख की कान्ति।

चार भाग कृष्ण वर्ण होने चाहिएँ—

(१) केशपाश (२) पलकें (३) भृकुटी (४) कनीनिका (पुतली)।

चार भाग रक्त वर्ण के हों—

(१) मसूड़े (२) जिह्वा (३) कपोल (४) ओठ।

चार भाग गोल हों—

(१) सिर (२) उँगलियों का अग्रभाग (३) पैर की एँड़ी (४) बाहु-प्रदेश।

चार भाग लम्बे हों—

(१) कदम (२) सिर के केश (३) पलकें (४) उँगलियों के पोरवे।

चार भाग मोटे हों—

(१) नितम्ब (२) ग्रीवा (३) पिंडली (४) जङ्घा।

चार भाग विशाल हों—

(१) मस्तक (२) नेत्र (३) छाती (४) कन्धे।

सुन्दरता के लिए मसूड़ों और ओठ का रक्त वर्ण होना आवश्यक है, जिससे शरीर में रक्त का यथेष्ट होना ज्ञात होता है। हमारे यहाँ बनावटी ढङ्ग से ओठ इत्यादि रँगने का रिवाज चल पड़ा है, किन्तु जिनके यह अङ्ग स्वभाव से ही लाल हों, वे ही वास्तव में सुन्दर हैं। सिर, पलक और भौंह के बालों की कालिमा सौन्दर्य का अङ्ग है। सिर के केश लम्बे मनोहर होते हैं, यह स्वस्थ होने का भी चिन्ह है। विस्तृत और भरी हुई छाती, जो सौन्दर्योपासकों की दृष्टि को आकृष्ट करती है, फेफड़ों की सबलता और स्वस्थ होना भी बतलाती है। स्तन यदि ढीले और लटके हुए हों, तो वे रोग का प्रमाण हैं। कूल्हे, पिंडली और जङ्घा मोटी पसन्द की जाती है; यह निर्बलता के न होने का प्रबल प्रमाण है। अस्तु, सुन्दरता के उपासकों को चाहिए कि पहले आरोग्य प्राप्त करें, फिर सुन्दरता स्वयमेव ही आ जायगी।

पुराने इतिहास को पढ़ने से ज्ञात होगा कि यहाँ सीता, मन्दोदरी, सावित्री, दमयन्ती इत्यादि जो रूप-राशियाँ जन्मी थीं, उनका मुक़ाबला आधुनिक विश्व की कोई स्त्री नहीं कर सकती। अधिक दूर न जाइए, मुग़लों के शासन-काल पर ही नज़र डालिए, जब पद्मिनी सरीखी रूपवती स्त्रियाँ इस देश में पैदा हुई थीं, जिनके कारण देश की राजनीति में कितने उलट-फेर और कितनी मार-काट हुई। लेकिन आज हमारे पास उस रूप-किरण की एक रेखा भी शेष नहीं रह गई है। इस ह्रास का कारण स्पष्ट है। हमारे समाज में जो नाशकारी कुप्रथाएँ चल पड़ी हैं, उनके कारण जीते जी ही हम नरक-यन्त्रणा का अनुभव कर रही हैं। उम्र भर पालतू चिड़िया की तरह पिंजरे में बन्द रहना, बाल-विवाह, अविद्या और घर के कलह के कारण जलना-कुढ़ना, अच्छे भोजन तथा स्वच्छ वायु का दर्शन दुर्लभ होना, हमारी सुन्दरता को सब प्रकार से ले डूबता है। जब भारत में यह कुप्रथाएँ न थीं, स्त्री-जाति का समुचित आदर था, तब उपरोक्त देवियाँ जन्मती थीं। अब वह बात न रही, तो वह शौर्य और सुन्दरता ही कैसे रह जाय? वर्तमान काल में सुन्दरता के कुछ चिन्ह मारवाड़ (राजपूताने) की स्त्रियों में किसी अंश तक पाए जाते हैं, क्योंकि उधर अब भी स्वास्थ्य के नियमों का कुछ-कुछ पालन किया जाता है। चाहे पश्चिमी सभ्यता का दम भरने वाले उनकी वेश-भूषा तथा वाह्य आडम्बरों को देखते हुए उन्हें रूपवती न बतावें, किन्तु वास्तव में सुन्दर वे ही हैं। हाँ, उनकी सुन्दरता बहुत अधिक बढ़ जाती, यदि उनमें शिक्षा-प्रचार की कोई व्यवस्था कर दी जाती। वहाँ की स्त्रियाँ घर का सब

(शेष मैटर २०६ पृष्ठ में देखिए)

[स्वर्गीय बङ्किम बाबू]

अङ्गरेज़ स्तोत्र

हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम अनेक गुणों से विभूषित, सुन्दर कान्ति-विशिष्ट और विपुल सम्पद-सम्पन्न हो, अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम हर्त्ता हो शत्रुओं के, तुम कर्त्ता हो आईन-क़ानून के, तुम विधाता हो नौकरी-चाकरी के, अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

तुम समर में दिव्यास्त्रधारी, शिकार में बल्लमधारी, विचारालय में आध इञ्च मोटा बेतधारी और भोजन के समय काँटा-चम्मचधारी हो, इसलिए हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें दण्डवत् करता हूँ।

तुम एक रूप से राजपुरी में रह कर राज्य करते हो, दूसरे रूप से हाट-बाज़ार में व्यापार करते हो, तीसरे रूप से आसाम में चाय की खेती करते हो ; अतएव हे त्रिमूर्त्ते ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम्हारा सत्वगुण तुम्हारे रचे ग्रन्थों में प्रकाशित है, रजोगुण तुम्हारे किए युद्धों में प्रकट है, तुम्हारा तमोगुण तुम्हारे लिखे भारतीय समाचार-पत्रों में प्रकाशित है। अतएव हे त्रिगुणात्मक ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम विद्यमान हो इसीलिए तुम सत् हो, तुम्हारे शत्रु रणक्षेत्र में चित हैं, तुम उम्मेदवारों के आनन्द हो; अतएव हे सच्चिदानन्द ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम ब्रह्मा हो, क्योंकि प्रजापति हो; तुम विष्णु हो, क्योंकि लक्ष्मी तुम्हीं पर कृपा करती हैं और तुम महादेव हो, क्योंकि तुम्हारी घर वाली गौरी है। अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम इन्द्र हो, तोप तुम्हारा वज्र है; तुम चन्द्र हो, इनकम-टैक्स तुम्हारा कलङ्क है; तुम वायु हो, रेलवे तुम्हारी गति है; तुम वरुण हो, समुद्र तुम्हारा राज्य है। अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम्हीं दिवाकर हो, तुम्हारे आलोक से हमारा अज्ञानान्धकार दूर होता है; तुम्हीं अग्नि हो, क्योंकि सब कुछ स्वाहा किए जाते हो; तुम्हीं यम हो, विशेषकर अपने मातहतों के। अतएव मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम वेद हो, मैं ऋक्, यजु आदि को नहीं मानता हूँ। तुम स्मृति हो, मन्वादि भूल गया हूँ। तुम दर्शन

हो, न्याय मीमांसादि तो तुम्हारे ही हाथ हैं। अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे श्वेतकान्त ! तुम्हारे अमल-धवल द्विरद-रद शुभ्र महाश्मश्रु-शोभित मुखमण्डल को देख कर इच्छा होती है कि तुम्हारा स्तव करूँ; अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम्हारी हरितकपिशपिङ्गललोहितकृष्णशुभ्रादि नाना वर्ण शोभित, अतियत्नरञ्जित, श्वेतमेदमार्जित कुन्तलावलि देख कर अभिलाषा होती है कि तुम्हारा गुण गाऊँ। अतएव हे अङ्गरेज़ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

कलिकाल में तुम गौराङ्ग के अवतार हो, इसमें सन्देह नहीं। हैट (टोप) तुम्हारा मुकुट, पैण्ट तुम्हारी काछनी और चाबुक तुम्हारी बाँसुरी है। अतएव हे गोपीवल्लभ ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे वरद ! मुझे वरदान दो। मैं सिर पर समला रख कर तुम्हारे पीछे-पीछे फिरूँगा, मुझे नौकरी दो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे शुभशङ्कर ! मेरा भला करो। मैं तुम्हारी ख़ुशामद करूँगा, ठकुरसुहाती करूँगा, जो कहोगे वही करूँगा। मुझे बड़ा आदमी बना दो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।

हे मानद ! मुझे ख़िताब दो, ख़िलअत दो, पदवी दो, उपाधि दो, मुझे अपना प्रसाद दो। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।

हे भक्तवत्सल ! मैं तुम्हारा उच्छिष्ट खाना चाहता हूँ, तुमसे हाथ मिला कर लोगों में महा सम्मानित होने की मेरी इच्छा है, तुम्हारे हाथ की लिखी दो-चार चिट्ठियाँ अपने सन्दूकचे में रख कर औरों को नीचा दिखाना चाहता हूँ। अतएव हे अङ्गरेज़ ! तुम मुझ पर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे अन्तर्यामी ! मैं जो कुछ करता हूँ सो तुम्हारे रिझाने के लिए। तुम दाता कहोगे, इसलिए दान करता हूँ। तुम परोपकारी कहोगे, इसलिए परोपकार करता हूँ। तुम विद्वान कहोगे, इसलिए पढ़ता हूँ। अतएव हे अङ्गरेज़ ! तुम मुझ पर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

मैं तुम्हारे इच्छानुसार अस्पताल बनवाऊँगा, तुम्हारे प्रीत्यर्थ विद्यालय बनवाऊँगा, तुम्हारे आज्ञानुसार चन्दा दूँगा। तुम मुझ पर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे सौम्य ! जो तुम्हारी इच्छा है, वही मैं करूँगा। मैं कोट-पैण्ट पहनूँगा, ऐनक लगाऊँगा, काँटे-चम्मच से मेज़ पर खाऊँगा। तुम मुझ पर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे मिष्टभाषी ! मैं मातृ-भाषा त्याग कर तुम्हारी भाषा बोलूँगा, बाप-दादों का धर्म छोड़ कर तुम्हारा धर्म ग्रहण करूँगा। लाला-बाबू न कहला कर मिस्टर बनूँगा। तुम मुझ पर प्रसन्न हो, प्रणाम करता हूँ।

हे सुन्दर भोजन करने वाले ! मैं रोटी छोड़ कर पावरोटी खाता हूँ, निषिद्ध मांस से पेट भरता हूँ। मुर्ग़ी का कलेवा करता हूँ। अतएव हे अङ्गरेज़ ! मुझे चरणों में स्थान दो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

मैं विधवाओं का ब्याह कराऊँगा, जाति-भेद उठा दूँगा, क्योंकि तुम मेरी बड़ाई करोगे। अतएव हे अङ्गरेज़ ! तुम मुझ पर प्रसन्न हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे सर्व्वद ! मुझे धन दो, मान दो, यश दो, मेरी सब इच्छाएँ पूरी करो। मुझे बड़ी नौकरी दो, राजा बनाओ, रायबहादुर बनाओ, कौन्सिल का मेम्बर बनाओ। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

यदि यह न दो तो अपनी गोठ और ज्योनारों में मुझे न्यौत बुलाओ, बड़ी-बड़ी कमेटियों का मेम्बर बनाओ, सिनेट का मेम्बर बनाओ, असेसर बनाओ, अनाड़ी मजिस्टर बनाओ, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

मेरी स्पीच सुनो, मेरा प्रबन्ध पढ़ो, तारीफ़ करो और वाह वा कहो, फिर मैं सारे हिन्दू-समाज की निन्दा की भी परवा न करूँगा। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

हे भगवान् ! मैं अकिञ्चन हूँ, मैं तुम्हारे द्वार पर खड़ा हूँ, भूल न जाना, मैं तुम्हें डाली भेजूँगा। तुम मुझे याद रखना, मैं तुम्हें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

(लोक रहस्य से)

203
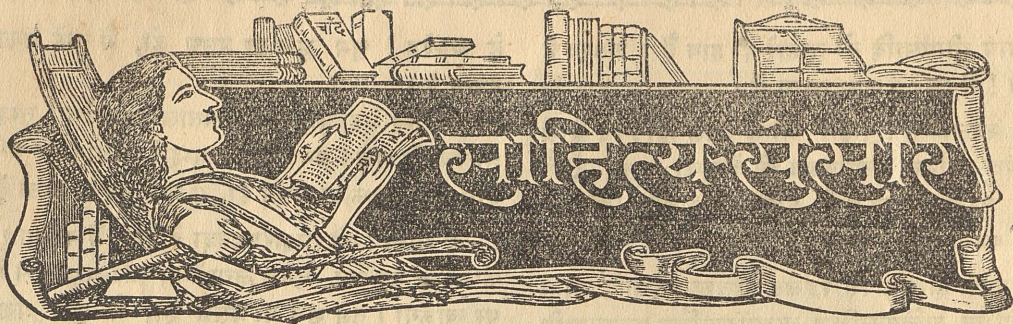
[आलोचक—श्री० अवध उपाध्याय जी]

चन्द्रकला—लेखक, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार। प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, बम्बई। पृष्ठ-संख्या १२२; मूल्य ॥।=), सजिल्द का १।=)

यह (१) मचाकोस का शिकारी (२) बचपन (३) भूल (४) पगली (५) आँसू (६) गोरा (७) ताड़ का पत्ता, और (८) सन्देह नामक आठ कहानियों का संग्रह है। इसकी सब कहानियाँ वास्तव में बहुत रोचक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि श्री० चन्द्रगुप्त जी विद्यालङ्कार एक नए लेखक हैं, तथापि इनकी कहानियाँ वास्तव में बहुत सुन्दर होती हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कहानी-लेखकों के अखाड़े के सर्वश्रेष्ठ पहलवानों में विद्यालङ्कार जी का नाम शीघ्र ही लिख लिया जायगा। कहानी लिखने में, उसके प्रारम्भ करने तथा अन्त करने के ढङ्ग का सदा ख़ूब ध्यान रखना चाहिए। हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि विद्यालङ्कार जी की कहानियों के अन्त करने का ढङ्ग सर्वथा प्रशंसनीय है। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ तो ऐसी सुन्दर तथा उचित हैं कि उनमें उन्नति नहीं हो सकती। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि विद्यालङ्कार जी इसी प्रकार लिखते रहे तो बहुत ही शीघ्र वह एक सिद्धहस्त कहानी-लेखक मान लिए जायँगे। वह कहानियों को रोचक बनाने का अच्छा ढङ्ग जानते हैं।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि विद्यालङ्कार जी मेरी निम्न-लिखित प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे। कहानियाँ कई प्रकार से रोचक बनाई जा सकती हैं। यदि हम लोग आग लगने, फाँसी देने, ज़हर खाने, मार-पीट करने और इसी प्रकार की असाधारण घटनाओं का वर्णन करें तो पाठक का मन अवश्य इस ओर आकर्षित हो जाता है। परन्तु केवल इन्हीं असाधारण घटनाओं का वर्णन करके ही, लेखक को अपनी कहानियों को रोचक बनाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। साधारण घटनाओं की सहायता से कहानियाँ रोचक बनाई जा सकती हैं और बनाई जाती हैं। इस संग्रह में ऐसी बातों का एक प्रकार से अभाव है और विद्यालङ्कार जी को ऐसी कहानियों के लिखने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

इस संग्रह की सब कहानियाँ अच्छी हैं। परन्तु मुझे 'भूल' नामक कहानी सबसे अधिक सुन्दर लगी। आदि से अन्त तक यह कहानी रोचक तथा सुन्दर है। इस कहानी से विद्यालङ्कार जी की प्रतिभा का अच्छा प्रमाण मिलता है। इस संग्रह की एक कहानी 'पगली' है। यह कहानी भी अन्य कहानियों की तरह बहुत रोचक तथा सुन्दर है, तथापि उसके अन्त करने का ढङ्ग अच्छा नहीं है और उसमें मेरा लेखक से पूर्ण मतभेद है। क़ासिम के अन्त समय की बातें और अन्त में उसकी मृत्यु बहुत खटकती है। क़ासिम के मार डालने का ढङ्ग मेरी राय में अच्छा नहीं है। जब क़ासिम ब्राह्मण (काका) के उपकारों का बदला चुकाना चाहता है और जब वह ब्राह्मण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत हो जाता है, तब उसे केवल आग में कूद कर जान दे देने से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए था। सम्भव है कि क़ासिम की सब बातें मनोवैज्ञानिक भी हों, तथापि कला की दृष्टि से वह सुन्दर नहीं हैं। यदि क़ासिम नवाब के दरबार में गया होता और कम से कम उतनी वीरता तथा निर्भीकता भी दिखलाई होती, जितनी ब्राह्मण ने दिखलाई थी और यदि उसके बाद वह आत्मघात करता अथवा नवाब के नौकरों से मारा जाता तो इससे कहीं अच्छा होता। यदि क़ासिम अपने हाथ में एक नङ्गी तलवार लेकर

नवाब के दरबार में पहुँचता और वहाँ पर नवाब को ख़ूब फटकारता अथवा दो-एक आदमियों को घायल करता और तब उसके बाद मरता अथवा मारा जाता तो इससे कहीं अच्छा होता।

अन्त में मैं इतना और लिखना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ कि विद्यालङ्कार जी ऐसे लेखकों से हिन्दी का मुख उज्ज्वल होगा और प्रत्येक साहित्य-प्रेमी को इस संग्रह की एक प्रति अवश्य मँगानी चाहिए।

* * *

रावणा-राजपूत दर्शन—लेखक और प्रकाशक, ठाकुर नारायण सिंह पँवार, जेनरल सेक्रेटरी आल-इण्डिया रावणा राजपूत महासभा, किशनगढ़, राजपूताना। पृष्ठ-संख्या २६; मूल्य ॥)

इस पुस्तक में उन सब आक्षेपों का उल्लेख किया गया है जो रावणा-राजपूत जाति पर प्रायः सब लोगों ने किए हैं। इस ग्रन्थ को ठाकुर नारायणसिंह जी ने अपनी जाति की सद्भावना से प्रेरित होकर लिखा है। जाति की कुरीतियों के हटाने के विचार से ही उन्होंने ऐसा किया है।

* * *

औपसर्गिक सन्निपात—लेखक, स्व० ला० राधावल्लभ जी वैद्यराज; प्रकाशक, मैनेजर धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, ज़िला अलीगढ़। पृष्ठ-संख्या ४०; मूल्य ।) ; इसमें प्लेग का इतिहास, विवेचन और प्लेग की चिकित्सा आदि का वर्णन है।

* * *

किसान—(भाग २) लेखक, पं० ज्योतिःशरण रतूड़ी, टिहरी—गढ़वाल। पृष्ठ-संख्या ९३; मूल्य ॥=) ; इसमें भारतीय कृषक तथा अन्य लोगों के जानने योग्य कई विषयों का अच्छा वर्णन है। बग़ीचा, फलों के बाग़ और फुलवाड़ी आदि का इसमें अच्छा वर्णन है।

* * *

रुद्र-क्षत्रिय-प्रकाश—अर्थात् क्षत्रिय जाति का इतिहास। लेखक, ठा० रुद्रदत्तसिंह तोमर; मन्त्री, इन्द्रप्रस्थ क्षत्रिय-सभा। तोमर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या १७४; मूल्य गुप्त। इसमें क्षत्रिय-जाति का इतिहास है और उनके वंश, गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा, शिखा, सूत्र और देवता आदि का भी वर्णन है।

* * *

आयरलैण्ड के ग़दर की कहानियाँ—लेखक, सत्यभक्त। पृष्ठ-संख्या १५४; मूल्य ॥=) ; इसमें आयरलैण्ड के स्वयंसेवकों के सङ्गठन, राष्ट्रीय सेना का घेरा और सरकारी सेना पर छापा मारने आदि का वर्णन है। वास्तव में यह कहानियों का संग्रह नहीं, किन्तु एक ही बड़ी कहानी है।

* * *

उपन्यास-कुसुम—सम्पादक पं० रामलोचन शर्मा; वार्षिक मूल्य ४) ; प्रकाशक, मैनेजर उपन्यास-कुसुम; सिद्धेश्वरी, काशी।

इसमें कविता तथा लेखों का अच्छा संग्रह है।

* * *

राज्य-ग्वालियर प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन विवरण—इसमें प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का इतिहास तथा और सब विवरण है।

श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार के २२वें वार्षिकोत्सव पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति **लाला कन्नोमल एम० ए० का अभिभाषण**—मुद्रक, पद्मसिंह जैन; प्रोप्राइटर, जैन प्रेस, जौहरी बाज़ार, आगरा।

* * *

अग्रवाल-इतिहास—लेखक, वी० एल० जैन अग्रवाल, सी० टी०; प्रकाशक, एस० सी० जैन, बुलन्दशहरी, बाराबङ्की (अवध); मूल्य ≡) ; पृष्ठ-संख्या २४। इसमें अग्रवालों का इतिहास है।

* * *

सूर्यरश्मि-चिकित्सा—लेखक, बाँकेलाल वैद्य सम्पादक "धन्वन्तरि"; प्रकाशक, मैनेजर धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, ज़िला अलीगढ़। मूल्य ॥।) ; पृष्ठ-संख्या ६०; छपाई और काग़ज़ सुन्दर। इस ग्रन्थ में सूर्य की किरणों से औषधियों का वर्णन है।

* * *

राजपूतों का आदर्श—लेखक ठा० केसरीसिंह देवड़ा, जागीरदार गलथनी राज, मारवाड़; रिटायर्ड स्काडर्न कमाण्डर, जोधपुर स्टेट। इस ग्रन्थ को देवड़ा जी ने क्षत्रिय-जाति के लाभ के लिए लिखा है तथा इसका वह अमूल्य वितरण करते हैं। आशा है, क्षत्रिय-जाति का इस ग्रन्थ से उपकार होगा।

* * *

श्री० श्रीचण्डी प्रथम चरित्र मधु-कैटभ-वध—श्रीमान राजा शशिशेखरेश्वर रायबहादुर कृत। राजनैतिक व्याख्या सहित।

यह मार्कण्डेय पुराण के भीतर चण्डी-ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। इसमें राजा साहब ने बड़ा परिश्रम किया है।

* * *

श्रीदासबोध—मासिक। मूल्य ।)

श्रीहनुमान-व्यायाम-प्रसारक-मण्डल का चतुर्थ वार्षिक प्रतिवृत्त—अमरावती।

* * *

श्रीहनुमान व्यायाम-प्रसारक-मण्डल अमरावती का परिचय—अध्यक्ष डॉ० शि० ग० पटवर्धन और सञ्चालक अं० कृ० वैद्य। इसमें उक्त मण्डल का साधारण परिचय है।

* * *

(२०१ पृष्ठ का शेषांश)

काम अपने हाथ से ही करती हैं; चाहे कितने ही धनी-मानी पुरुष की कन्या तथा बहू क्यों न हों। दो कार्य तो उनके लिए बहुत आवश्यक समझे जाते हैं। (१) कुएँ से जल भर कर लाना (२) कुटुम्ब के लिए आटा पीसना। दोनों कार्यों के करने में उनका ख़ासा व्यायाम हो जाता है। लेकिन संसार की बहती हुई लहर अब वहाँ भी पहुँचती जा रही है। इन सब बातों का दोष यदि पुरुषों के मत्थे रक्खा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, कारण वे ही स्त्रियों को उचित शिक्षा से वञ्चित रखते हैं, जिससे उनका जीवन नरक-तुल्य हो जाता है।

बहिनो, यदि वास्तव में तुम सुन्दरता की उपासिका हो, तो स्वास्थ्य को प्राप्त करके शरीर को सुडौल बनाओ। यही एक सुन्दरता प्राप्त करने का मूल-मन्त्र है। यथाशक्ति निम्न-लिखित नियमों का पालन करो :—

(१) विद्या पढ़ कर ज्ञान उपार्जन करो, जिससे इस संसार-सागर में अपने जीवन की नौका को अच्छे प्रकार खेकर ले जा सको।

(२) ब्रह्मचारिणी बनो। प्रत्येक बहिन गृहस्थ-आश्रम में रह कर नियमानुसार जीवन बिताते हुए ब्रह्मचारिणी रह सकती हैं। इससे तुममें आत्मिक बल, सहिष्णुता, निर्भीकता और सत्य आदि सद्गुण आ जावेंगे। इन गुणों के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(३) बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह की कुप्रथा को समाज से निकाल दो।

(४) महा विनाशकारी परदे का परित्याग कर दो।

(५) घर का काम स्वयं करने में कभी सङ्कोच मत करो। परन्तु जिस काम में अधिक व्यायाम पड़ता हो, अवश्य करो।

(६) सात्विक भोजन करो, भोजन का आचार-विचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

(७) प्रातःकाल उठो और खुली वायु में टहलो।

(८) ईश्वरोपासना करो। इससे अन्तःकरण की शुद्धि होती है। यदि जीवन को उन्नत बनाना चाहती हो तो प्रातःकाल या सायङ्काल ईश्वर की उपासना करना कभी मत भूलो।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

पञ्चम खण्ड

सन्तोषानन्द

१

ब से अलिन्द मेरे पास से तिल-मिला कर भागा, फिर लौट कर नहीं आया। सारी रात बीत गई। दूसरा दिन भी गुज़र गया। तब तो मुझे बड़ी चिन्ता हुई। उसके मकान पर गया, उसे ज्यों का त्यों बन्द पाया। इधर-उधर ढूँढ़ा। उसका कहीं पता न चला। सिर्फ़ पोस्टमैन से इतनी ख़बर मिली कि कल शाम की डाक लाने में उसे बहुत देर हो गई थी। अलिन्द के नाम बस एक ही पत्र था, जिसे उसने चिराग़ जलने के बाद लगभग साढ़े सात बजे अलिन्द को दिया था, जब वह कुछ घबड़ाया हुआ इस मकान के फाटक से निकल रहा था। उसके बाद एक मेरे जान-पहचान वाले से मालूम हुआ कि उसने उसको गङ्गा के पुल पर लम्प के खम्बे के पास खड़ा हुआ उसकी रोशनी में कोई काग़ज़ पढ़ते देखा था। यह सुनते ही मेरे होश उड़ गए। रह-रह कर सोचता था, या ईश्वर! वह दरिया के पुल पर किस नीयत से गया था और वहाँ से वह एकाएक कहाँ लापता हो गया! उसकी सम्पूर्ण आशाएँ भङ्ग होकर उसके लिए संसार असार पहिले ही हो चुका था। मेरी ही सहानुभूति ने उसमें कुछ पुनर्जीवन का सञ्चार किया था। और अन्त में हाय! मैंने ही उस पर वज्राघात किया। इसके लिए मैं विवश था। क्षणिक आवेश में मैं अपने भावों को छिपा न सका।

उससे मुझे हद दर्जे की सहानुभूति थी। उसकी व्यथाओं पर मैं आँसू बहाता था। फिर भी न जाने क्यों इधर कुछ दिनों से मेरी तबीयत उससे कुछ जल सी गई थी। शायद इसलिए कि वह मन ही मन तारा को प्यार करने लगा था; मगर मुझे भुलावे में रखने के लिए वह मेरे सामने सरोज ही का दम भरता जाता था। तारा का मेरे यहाँ होना जान कर उससे मिलने के लिए बेताब हो जाना, अपनी इस ग़रीबी की हालत में भी उस पर अपना सब कुछ न्योछावर कर देना, मेरी अनुपस्थिति में उससे लपझप करना, यह सब बिना प्रेम के कैसे सम्भव था? यद्यपि मैंने ही इस प्रेम की उत्पत्ति के लिए इतनी युक्तियाँ की थीं, तथापि यह मैं नहीं चाहता था कि मेरी युक्ति सफल होने पर भी वह मुझे जान-बूझ कर धोखे में रखने का उद्योग करे। मैंने तो इसके लिए यहाँ तक किया कि तारा को आधी रात के समय इसके कमरे में देखते ही यहाँ से कई महीनों के लिए ग़ायब हो गया। ताकि इन लोगों के प्रेम में मेरी मौजूदगी से जो कुछ ख़्याली बाधा हो भी तो वह उठ जाए। इसका तो मुझे आभास मिल चुका था कि यह दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे हैं, मगर यह मैं नहीं जानता था कि इन लोगों की घनिष्टता इस हद तक पहुँची हुई है और वह मुझसे इस तरह छिपाई जा रही है। इसीसे मैं तारा से भी चिढ़ उठा था। मगर इसका उलटा असर पड़ा। वह बजाय मुझे अपना हिती समझने के न जाने क्या समझ कर मुझसे दिनोंदिन खिंचती गई। यहाँ तक कि उसे मुझसे बातें तक करने में सङ्कोच होने लगा। वह जो कुछ मुझसे कहना भी चाहती थी वह अलिन्द ही के द्वारा। यह पाखण्ड मेरे लिए असहनीय हुआ ही चाहे। यद्यपि अलिन्द सरोज के प्रेम में अन्धा होने के कारण, सम्भव है, मेरे उद्योग और सहायताओं को ठीक-ठीक समझ न सका हो या अपने हृदय की नवीन गति से अभी तक बिल्कुल अज्ञान हो और धोखे में अब भी यही जानता हो कि वह दिल में सरोज ही को प्यार करता है या यह भी सम्भव है कि वह तारा को मेरी स्त्री जान कर, मेरे आगे अपने भावों पर पर्दा डाल कर मुझे

भ्रम में रखने के लिए और ही दृश्य दिखा रहा है। तथापि तारा को तो न स्वयं धोखे में रहने और न मुझे धोखे में डालने के लिए कोई कारण था। इसीसे इसके इन दिनों के बर्तावों से मेरे दिल में एक जलन सी रहा करती थी। इसी के मारे मेरा चित्त बहुधा व्याकुल रहता था। किसी काम में जी नहीं लगता था। और इसीलिए आजकल अलिन्द से पूर्णरूप से सहानुभूति नहीं कर पाता था। उसकी कहानी कौतुकवश सुनता था। मगर उस पर पहिले की भाँति तर्स खाने के बदले बीच-बीच में तबीयत को हज़ार रोकने पर भी व्यङ्ग-वर्षा कर बैठता था। और अन्त में तो हाय! मैं वह आग उगल बैठा कि जिसका परिणाम यह हुआ कि वह मुझे ही छोड़ कर भाग गया। यदि मेरे हृदय में इतनी अशान्ति न होती तो ऐसा अनर्थ जान-बूझ कर कदापि नहीं कर सकता था।

मगर मेरे वाक्य से अलिन्द को इतनी चोट क्यों लगी? क्या उसके हृदय में सरोज का प्रेम वैसा ही बना हुआ है? क्या तारा का प्रेम अब तक उसे फीका नहीं बना सका? क्या केवल तारा ही उसे चाहती है और वह नहीं? आह! तब तो मुझी को उसके विषय में भ्रम हुआ और नाहक़ जले को मैं और जला बैठा। मगर अब पछताने से क्या होता?

मैं इसी तरह के सोच-विचार में अपने दिल को कुढ़ाने लगा। उस पर उसके पुल पर जाने का ख़्याल मुझे और भी परेशान कर रहा था। मगर मुझे अपने विचारों को किसी पर प्रगट करने का भी साहस नहीं होता था। माँ जी से और अपने यहाँ के नौकरों से यही कह दिया कि अलिन्द को एक विशेष काम से बम्बई चला जाना पड़ा है। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। इसलिए सब लोग तो बेफ़िक्र थे। मगर मैं अपनी घबड़ाहट को कैसे रोकता? कब तक इन लोगों को बहाने पर रखता? उसका इस तरह अलोप हो जाना रह-रह कर मेरे कलेजे में बर्छियाँ चलाता था। जानता था, मैं ही इस अनर्थ का कारण हूँ। ईश्वर जाने वह जीता है या...? अन्त में मैंने सेठ जी से मिल कर किसी तरह बातों-बातों में सरोज के विषय में और हाल जानने की ठानी। शायद इस तरह अलिन्द को पाने की आशा बाँधने के लिए मुझे कोई सूत मिल जाए। मगर अफ़सोस! वह कई दिनों पहिले ही सपरिवार कलकत्ते चले जा चुके थे। कोठी के चौकीदार और माली से पूछ-पाछ करने पर जाना कि पुत्री ब्याहने के एकाध साल बाद ही सेठ जी ने बङ्गाल में स्वदेशी कपड़ों की माँग बढ़ते देख कर डिप्टी साहब की सलाह से कलकत्ते में कपड़ों का एक नया मिल खोल दिया था, और तभी से वह अधिकतर वहीं रहते हैं। यहाँ तो कभी-कभी साल में बस एकाध बार कुछ दिनों के लिए आ जाते हैं। डिप्टी साहब के विषय में पता चला कि उन्होंने इस काम में सेठ जी की बड़ी मदद की। यहाँ तक कि उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ कर इस कारख़ाने की मैनेजरी ख़ुद अपने हाथ में ले ली और उन्हीं के आग्रह से सेठ जी को मय अपने घराने के फिर वहीं जाकर रहना पड़ा, ताकि मालिक के समीप रहने से इस नए कारबार में किसी प्रकार की आँच न आने पाए। डिप्टी साहब की यह चाल मेरी कुछ समझ में आई नहीं और न इन बातों से मुझे अलिन्द के विषय में कोई सन्तोषजनक आधार ही मिला।

कई महीनों से मुझसे और तारा से किसी प्रकार की बातचीत की नौबत नहीं आई थी। अलिन्द के जाने के बाद मुझे उससे भी इस सम्बन्ध में कुछ पूछ-पाछ करने की बड़ी इच्छा थी। मगर संयोग की ख़ूबी कि इन दिनों जब कभी वह किसी काम से मेरे रहने के मकान में आई तब मैं ही घर पर नहीं होता था। और जब मैं इस इरादे से आश्रम में जाता था तो काम की भीड़ के मारे उसे मुझसे मिलने की फ़ुरसत नहीं मिलती थी!

इस तरह अलिन्द के लिए मेरी परेशानी बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि मेरा दिमाग़ उसे अधिक सहन न कर सका और मैं बीमार पड़ गया। मेरी बीमारी की ख़बर पाते ही माँ जी दौड़ी हुई आईं और अपने साथ तारा को भी लेती आईं। मगर माँ जी के सामने अलिन्द के विषय में तारा से कुछ पूछना न तो उचित ही था और न उसकी चिन्तामग्न सूरत देख कर उससे बोलने का मेरा साहस ही पड़ सकता था। मैं समझ गया कि अलिन्द के लिए यह स्वयं ही चिन्तित है। ऐसी दशा में यह प्रसङ्ग उसके लिए और भी दुखदाई होगा। इसलिए मैंने उसे आश्रम में जाने को कह कर अपना काम-काज देखने को विवश किया।

सन्ध्या को माँ जी जब मेरे पास बैठी हुईं मेरी तबी-

देशभक्ति के अपराध में जेल जाने वाली तीन महिलाएँ
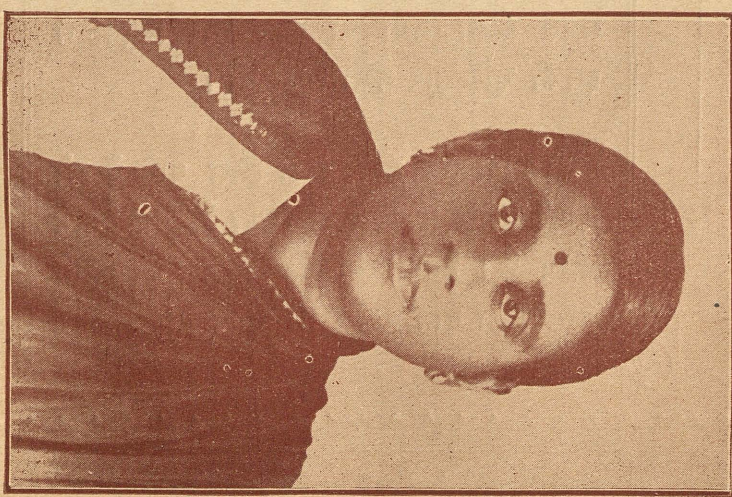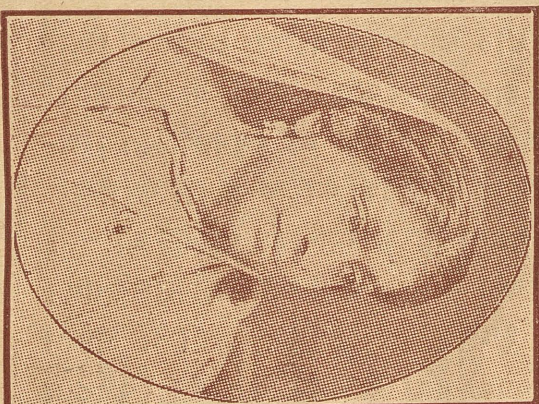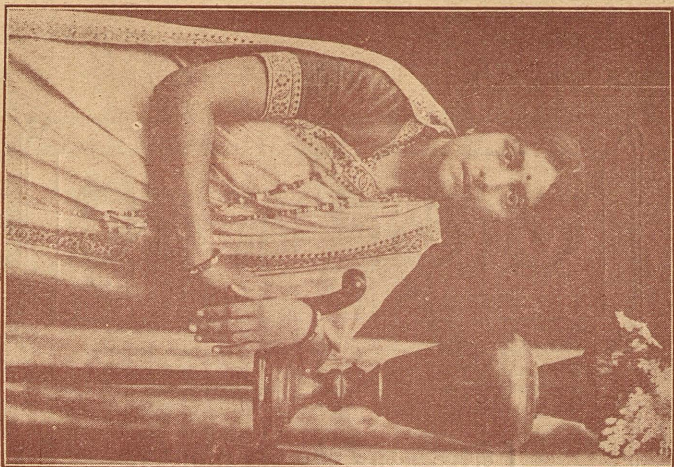
श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय
आपको ६½ मास के क़ैद की सज़ा दी गई है

श्रीमती सरोजिनी नायडू
आपको ६ मास के क़ैद की सज़ा दी गई है

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति
आप वर्तमान आन्दोलन में जेल जाने वाली सर्व-प्रथम महिला हैं, जिन्हें एक वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया है।

लाल बुझक्कड़
[लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]
श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ्रान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक सर्व-प्रथम सन् १६५३ या १६५५ ईस्वी में लॉयन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ्रान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और सारे विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।
श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!! मूल्य २)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

यत का हाल पूछ रही थीं, तब मैं बातों-बातों में उनसे अपने मतलब की बात पूछने लगा। सबसे पहिले मैंने अलिन्द की शादी का प्रसङ्ग उठाया। इसे सुनते ही वह रो पड़ीं। आँखों में आँसू भर कर कहने लगीं—घर में कोई बड़ा-बूढ़ा होता तो अब तक मैं भला बहू के सुख देखने के लिए तरसती? हाय! यह सुख मेरे नसीब में लिखा ही नहीं है। इधर हमारी बिरादरी के लोग हैं कहाँ? और हमारे देश में हमारी जाति में लड़कियाँ भी तो कम हैं। इसीलिए हमारी बिरादरी में लड़के वालों को लड़की ढूँढ़नी पड़ती है। अलिन्द से मैं कहते-कहते हार गई कि एक बार देश चल कर शादी कर ले। मगर नहीं सुनता। यही कहता है कि बहू आएगी तो तुमको मार के निकाल देगी। आख़िर इसकी अब उमर भी बीत गई। क्या करूँ? अपना दुर्भाग्य!

मैंने अवसर पाकर इसी तरह सेठ जी के घराने की चर्चा करते हुए सरोज के विवाह का भी प्रसङ्ग छेड़ दिया। इस पर वह बड़ी देर तक सरोज की सिधाई और भलमनसाहत की तारीफ़ करती रहीं। उसके बाद कहने लगीं—मैं तो उसके विवाह में अलिन्द की बीमारी में फँसी थी। मगर सुनती हूँ, उसे बड़ा अच्छा घर मिला है। बड़ी भाग्यवान लड़की है। वह रानी बनने योग्य थी और ईश्वर की कृपा से भाग्य ने भी उसे रानी ही बनाया। यों तो सेठ जी के यहाँ की लड़कियों की बड़ी अच्छी-अच्छी जगह शादी हुई है, मगर ऐसा घर किसी को नहीं नसीब हुआ। उसके पति एक बहुत ही बड़े जागीर के मालिक हैं। राजा कहलाते हैं। रङ्गून में उनके कई जहाज़ चलते हैं। कलकत्ते में उनकी अनगिनती कोठियाँ हैं ...।

मैं—उसकी ससुराल कहाँ है?

माँ जी—नाम नहीं याद पड़ता। पर है कलकत्ते के पास ही कहीं। तभी तो जब पहले-पहल सरोज ससुराल से आई थी तो सोने से लदी हुई थी, और सभी गहने बङ्गाली सुनारों के हाथ के बने थे। अहाहा! गले का चन्द्रहार तो बस देखने लायक़ था। हाथ के कङ्गन का क्या कहना था...!

मैं—तो मालूम होता है कि उसका रहना कलकत्ते में भी हुआ करता होगा?

माँ जी—हाँ-हाँ, जब वहाँ उसकी सैकड़ों कोठियाँ हैं तब वहाँ क्यों न रहे? राजा साहब तो नाच-रङ्ग, ठेठर-फेठर के बड़े शौक़ीन ही ठहरे। साल में महीनों कलकत्ते में रहा करते हैं। सरोज की दासियाँ तो यहाँ तक कहती थीं कि राजा साहब गाना सुनने के ऐसे लती हैं कि जब तक वह गाना नहीं सुन लेते तब तक उनका खाना ही नहीं पचता। इसीलिए उन्हें कलकत्ता पसन्द है। जहाँ किसी नाटक में किसी नर्तकी का उन्हें गाना पसन्द आया तहाँ उसे दो-चार महीने के लिए नौकर रख कर अपने राज्य में ज़रूर बुला लेते हैं। फिर तो रातोदिन उसका गाना हुआ करता है। नाच-गाने का आदर राजा-महाराजा के यहाँ होता ही है।

अब जाकर डिप्टी साहब के कलकत्ते में सेठ जी से नया कारख़ाना खुलवाने का कारण कुछ समझ में आया।

माँ जी ने फिर कहना शुरू किया—इसी गाने ही के कारण तो सरोज को ऐसा घर नसीब हुआ। यद्यपि सेठ जी दौलत में किसी से कम नहीं हैं, फिर भी राजा राजा ही होता है।

मैं—गाने के कारण कैसे?

माँ जी—सरोज की आवाज़ में एक अजीब मिठास और सुरीलापन है। इसी की तो तारीफ़ सुन कर राजा साहब ऐसे रीझे कि अपनी पहिली रानी के जीवित होते हुए भी सरोज से विवाह कर लिया।

मैं—क्या सरोज के पति की दो पत्नियाँ हैं?

माँ जी—हाँ, इसमें अचरज की कौन बात है? राजाओं के यहाँ दो कौन कहे, सैकड़ों रानियाँ हुआ करती हैं। और सरोज का तो सुनती हूँ वहाँ बड़ा मान है। राजा साहब के मनेजर हुकुम के लिए उसका मुँह निहारा करते हैं।

मैं—मनेजर कौन?

माँ जी—राजा साहब ही के कोई रिश्तेदार हैं। असल में वही रियासत के मालिक हैं। राजा साहब को तो लोग अभी लड़का ही समझते हैं। वह राज-काज सँभालना क्या जानें? वह नाम के राजा हैं। उन्हें बस अपने गाना सुनने से मतलब। इसीलिए तो उनके मनेजर ने जब यहाँ के हिन्दू-सङ्गठन के जलसे में—जिसके वह सभापति बन कर आए थे—सरोज को और लड़कियों के साथ 'बन्देमातरम्' गाते सुना, तब उसे अपने राजा की

छोटी रानी बनाने के लिए चुना था। उसी जलसे में उनसे डिप्टी साहब से जान-पहचान हुई और उनसे उन्होंने अपनी इच्छा कही। बस डिप्टी साहब ने सेठ जी से कह-सुन कर झट ब्याह तय करा दिया। तभी तो सेठ जी डिप्टी साहब को अपने पुत्र से भी बढ़ कर मानते हैं।

मैं—यह कहिए सरोज के गाने पर राजा साहब नहीं, बल्कि मनेजर साहब रीझे थे।

माँ जी—हाँ-हाँ बात तो वही हुई। अपने मालिक की पसन्द जान कर इन्होंने उसे पसन्द किया। और वह भी तो इसकी तारीफ़ ही सुन कर ब्याह के लिए राज़ी हुए होंगे। वरना इसके साल ही भर पहले उनकी पहिली शादी हो चुकी थी। बिना रीझे हुए इतनी जल्दी भला कौन अपनी दूसरी शादी कर सकता है? यह तो सोचिए।

मुझे मामला कुछ रहस्यमय जान पड़ने लगा। इसलिए इधर-उधर की बातें करके मैंने पूछा—भला इस शादी से सरोज ख़ुश थी?

माँ जी—क्यों? ख़ुश क्यों न होती? कौन ऐसी अभागी लड़की है जो रानी होने में अपना अहोभाग्य न समझेगी?

मैं—यह तो सही है। मगर सरोज के रङ्ग-ढङ्ग से क्या मालूम होता था?

माँ जी—बड़ा अच्छा रङ्ग-ढङ्ग था। यों तो देह में एक न एक बीमारी लगी ही रहती है, मगर ब्याह होने के बाद जब पहले-पहल आई थी तब भली-चङ्गी थी। गुलाब के फूल की तरह खिली हुई थी। हीरे-मोती के जड़ाऊ गहनों से लदी थी। मगर वाह! बेचारी को तनिक गुमान नहीं था। हमसे उसी तरह आकर मिली थी। मिज़ाज में वही लड़कपन था। मुँह पर वही हँसी बल्कि पहिले से और ज़्यादा। हाँ, अब ज़रा शर्माने लगी थी। ससुराल की बातों पर भाग खड़ी होती थी। यह तो सभी में होता है।

मैं—राजा साहब के सम्बन्ध में क्या कहती थी?

माँ जी—भला उनकी बातें हम वृद्धाओं के आगे थोड़े ही कह सकती थी? अपनी सखियों में उनका बखान करती थी। मगर उन दिनों तो राजा साहब दुनिया घूमने के लिए देश से रवाना हो चुके थे।

मैं—अलिन्द से भी पहिले ही की तरह मिली थी?

इस पर माँ जी चौंकीं। फिर कुछ सोच कर कहने लगीं—पहिले की तरह कैसे मिल सकती थी? ब्याह हो जाने पर अपने भाई-बाप तक से लड़कियाँ शर्माती हैं। यही उन्हें चाहिए भी।

मैं—तो क्या अलिन्द से उसने भेंट ही नहीं की?

माँ जी—भेंट करती क्यों नहीं? मगर उसके लजाने पर अलिन्द ही लिहाज़ कर गया।

मैं—कैसे?

माँ जी—वह मिलने के लिए हमारे यहाँ आई हुई थी। इतने में अलिन्द वहाँ आ गया। बस वह उठ खड़ी हुई और झट ज़रा घूँघट निकाल कर मुँह फेरने लगी। यह देख कर अलिन्द चुपचाप लौट गया। मैंने उसे वहाँ लाख बुलाया, मगर फिर वह नहीं आया। कई दफ़े मैंने बाद को उससे कहा भी कि सेठ जी के यहाँ जाकर ज़रा उससे मिल आ। जब वह हम लोगों को इतना मानती है कि रानी होकर भी हमारे घर आई तो हम लोगों को भी उसे उसी तरह मानना चाहिए। मगर वह नहीं गया। बल्कि उल्टे यही कहता था कि जब वह हमें अब बेगाना समझ कर हमारे आगे घूँघट निकालती है तो उसके सामने हमारा जाना बेकार है। हम उसे कितना मानते हैं, यह इसीसे समझ सकती हो कि हमें उसे घूँघट निकालने तक का भी कष्ट देना गवारा नहीं है। अब तो जब हमें वही बुलाएगी तभी उसके पास जा सकते हैं।

अलिन्द की दिली चोट को मैं समझ गया। मैंने माँ जी से फिर पूछा—अच्छा उसने अलिन्द को फिर कभी बुलाया?

माँ जी—उस दफ़े नहीं। क्योंकि जिस दिन वह ससुराल जा रही थी, उस दिन भी मैंने अलिन्द को उसके पास जाने को कहा था। मगर उसने ऐसा ही कुछ कहा था कि उसकी मर्ज़ी नहीं है और मेरी भी तबीयत अच्छी नहीं है। क्या बताऊँ, यह अपने मिज़ाज के आगे किसी को कुछ नहीं समझता है। इसमें उसका भी दोष नहीं; उसकी उस बीमारी ने उसका मिज़ाज ही सत्यानाश कर दिया। तभी से वह बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। न किसी से बोलता है, न चालता। हर वक़्त न जाने क्या सोचा करता है।

अलिन्द के मिज़ाज बदलने का कारण मैं ख़ूब

समझता था। इसलिए मैंने यह बात छोड़ कर पूछा—भला इसके बाद सरोज कब आई ?

माँ जी—आह ! उसके बाद तो सेठ जी सब लोगों को ले जाकर कलकत्ते में रहने लगे। फिर उसका यहाँ आना-जाना कैसे होता ? जहाँ उसके माता-पिता रहते वहीं तो आती-जाती। हाँ, वह लोग यहाँ भी कुछ दिनों के लिए आ जाया करते थे। तब अलबत्ता हम लोगों की यही लालसा रहती थी कि इस बीच में अगर उसका आना हो जाता तो क्या कहना था। अन्त में ईश्वर ने हम लोगों की प्रार्थना सुनी और पारसाल जब सेठ जी पिछले दफ़े यहाँ आए थे तो वह भी उनके साथ हवा-पानी बदलने की ख़ातिर चली आई थी, क्योंकि वहाँ का पानी अच्छा नहीं है। वहाँ वह हमेशा बीमार रहती है। हम लोगों ने जब इस दफ़े उसे देखा तो बस कलेजा धक् से होकर रह गया। वह सूख कर काँटा हो गई थी। सूरत पर मुर्दनी छाई हुई थी। आँखें गड्ढे में घुसी हुई थीं। रङ्ग बिलकुल पीला पड़ गया था; और तो और, अलिन्द भी उसे देख कर रो पड़ा।

मैं—क्या अलिन्द से उससे इस दफ़े भेंट हुई थी ?

माँ जी—हाँ, उसने अपने घर में पाँव रखते ही अलिन्द को बुलाने के लिए अपनी दासी भेजी। अब उसमें पहिले सी झिझक न थी। अलिन्द उस वक्त घर पर नहीं था। जैसे ही आया, मैंने उससे कहा। वह दौड़ा हुआ गया। लौट कर आया तो मारे ख़ुशी के फूला नहीं समाता था। आपे से बाहर होकर कहता था कि सरोज सचमुच हम लोगों को वैसा ही मानती है। देखो आते ही उसने बुला भेजा। फिर आँखों में आँसू भर कर कहने लगता था कि बेचारी बहुत दुबली हो गई है, जैसे बरसों की बीमार। चेहरे पर वह चमक-दमक कुछ भी नहीं है। यह ज़रूर हमी लोगों के बिछुड़ जाने के कारण उसकी ऐसी दशा है। हा ! ऐसा जानते तो उसीके नगर में हम लोग कुटी बना कर रहते। इतना कहते-कहते वह रो पड़ा था। क्या करे, उसका दिल बड़ा मुलायम है। उससे किसी का भी दुख देखा नहीं जाता।

मेरी आँखों में आँसू भर आए। सच है, प्रेम का अभाव राज्य का वैभव नहीं पूरा कर सकता।

माँ जी फिर कहने लगीं—वह आते ही सफ़र की थकान के कारण बीमार पड़ गई। डॉक्टरों और अस्पताल की दाइयों से बराबर घिरी रहती थी। उसकी देख-रेख के लिए सभी थे, फिर भी अलिन्द का जी नहीं मानता था। वह दिन में कई बार उसे देखने जाता था। अलिन्द की तबीयत ही ऐसी है कि अगर कोई एक दफ़ा भी उससे मीठी बोली बोल दे तो उसकी जूतियाँ तक उठाने को तैयार हो जाता है। मैं भी तीसरे-चौथे उसे देखने जाती थी। उसका चाँद सा मुखड़ा कुम्हलाया हुआ देख कर मेरी छाती फटने लगती थी। वह मुझे देखते ही हाय ! बिलख-बिलख कर कहती थी—माँ जी, क्या आपके घर मुझे अब सेव खाना नहीं बदा है ?

माँ जी रोने लगीं। आँसू पोंछ कर बोलीं—उसे मेरे हाथ का बना सेव बहुत पसन्द था। वह पहिले जब कभी आती थी, ज़िद करके मुझसे सेव बनवा कर खाती थी। इसीलिए इस दफ़े भी जैसे ही वह कुछ अच्छी हुई, वह मेरे घर दौड़ी आई। मैं झट कड़ाई चढ़ा कर उसके लिए सेव बनाने लगी। वह भी मेरे साथ चौके में बैठी और कमज़ोरी के कारण वहीं ज़मीन ही पर लेट गई। रानी होकर उसका ज़मीन पर इस तरह लेट जाना भला मुझसे किस तरह देखा जाता ? मैं झट उठ कर क़ालीन बिछाने लगी। उसने मना करके कहा—नहीं-नहीं, मुझे इस मकान की ज़मीन में जो सुख है वह महलों के सिंहासन पर भी नहीं। मैं इस मकान के लिए, इस ज़मीन के लिए तरस-तरस गई हूँ माँ जी ! इसीके लिए मैं सौ-सौ तरकीबें करके इस दफ़े बनारस आई हूँ। ईश्वर के लिए मुझे इस सुख का कुछ आनन्द लूटने दीजिए। उसका हम लोगों के प्रति इतना प्यार देख कर मेरा हृदय उमड़ आया।

मैंने व्यग्र होकर पूछा—उसकी यह बातें भला अलिन्द ने भी सुनी थीं ?

माँ जी—हाँ, वह तो रसोई-घर के द्वार ही पर खड़ा था। बल्कि उसीने दौड़ कर क़ालीन लाकर मुझे दिया और सरोज से कहा था कि सरो, तुम रानी होकर हम लोगों को क्यों इतना काँटों में घसीट रही हो ? इस पर सरोज ने जवाब दिया कि रानी कह कर आप ही मुझ पर अन्याय कर रहे हैं। मैं तो आप लोगों के लिए वही सरो हूँ। क्या ब्याह हो जाने से हृदय थोड़े ही बदल जाता है ?

मेरे मुँह से सहसा एक आह निकल पड़ी। मैं यह सोच कर दिल ही दिल कसमसा उठा कि उसकी बातों का अलिन्द के हृदय पर कितना बड़ा प्रभाव पड़ा होगा। तभी वह सरो को अब भी अपनी ही समझता है और उसका प्रेम किसी प्रकार से भी शिथिल नहीं होने पाता।

माँ जी मेरी परेशानी देख कर बोल उठीं—क्या हुआ क्या?

मैं—कुछ नहीं। आगे कहिए।

माँ जी—आगे क्या कहूँ। इसके बाद सरोज अलिन्द के नए चित्र देखने के लिए चित्रशाला में गई। साथ में उसके घर के बच्चे भी थे। थोड़ी देर में सेव लेकर मैं भी वहीं पहुँची। देखा, वहाँ बच्चे ऊधम मचाए हुए हैं। सरोज फ़र्श पर बड़े सोच में बैठी हुई आँसू बहा रही है। और अलिन्द कमरे में पागलों की भाँति टहल रहा है। उस दिन सरोज न जाने क्यों इतनी रञ्जीदा थी कि उससे मेरे सेव भी खाए न गए। वह तुरन्त उठ कर घर जाने लगी। मैंने उसे बहुत रोका। मगर वह यह कह-कर चली गई कि अब तो मैं चित्रकारी सीखने जल्दी-जल्दी आया करूँगी। आज जाने दीजिए। मगर चित्र-कारी सीखने का मनसूबा उसके दिल ही में रह गया। क्योंकि फिर वह हमारे यहाँ आ न सकी और इसी बीच में उसके मनेजर की बीमारी का तार आ गया और उसे ससुराल चला जाना पड़ा। तब से उसका आना नहीं हुआ और तभी से उसका दुख देख कर अलिन्द का सर कुछ फिर सा गया है। यों तो उसका दिमाग़ पहिले ही से ख़राब था, मगर हाय! अब तो उसकी हालत और भी बत्तर हो गई। रात-रात भर कमरे में टहला करता था। सोते में चौंक कर चिल्ला उठता था—बचाओ! बचाओ! हाय! सरो को वह मार रहा है? रातोदिन वह ऐसी ही धुन में रहा करता था? मैं बार-बार उससे पूछती थी कि तुझे क्या हो गया है। इसका वह यही उत्तर देता था कि सरो बड़े दुख में है। मैंने बहुतेरा समझाया कि पराए दुख पर इतना परेशान नहीं होना चाहिए। तब वह कहता था कि वह जब हम लोगों को इतना मानती है तब वह पराई क्यों, अपनी ही है। उसका दुख मुझसे नहीं सहा जाता। ईश्वर न करे, किसी दुश्मन के भी ऐसा नर्म दिल हो। उसकी हालत देख कर जब मैं उसे बहुत समझाने-बुझाने लगी तब एक दिन ऊब कर न जाने कहाँ वह चला गया। रोते-रोते हम लोगों की बुरी दशा हो गई। मगर धन्य ईश्वर, कुछ दिनों के बाद लौट आया। और तभी शायद रेल में आपसे और उससे पहिले-पहल जान पहचान हुई थी। वह कहता था।

माँ जी की बातें किसी साधारण आदमी को या स्वयं उन्हीं को साधारण प्रतीत हों तो हों, मगर किसी औप-न्यासिक जासूस के लिए, जो मेरे बराबर अलिन्द का हाल जान चुका हो, बड़े ही महत्व की थीं। इसीलिए मैं रात भर उन्हीं पर विचार करता रहा और हर बार इसी निर्णय पर पहुँचता था कि सरोज के दुख के कारण में अवश्य ही प्रेम के अतिरिक्त कोई भयङ्कर रहस्य है, जिसका कुछ-कुछ आभास अलिन्द को भी मिल चुका है और जिसको उसने स्वयं ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण मुझसे नहीं कहा या जान-बूझ कर ही मुझसे छिपाया है। मने-जर का सरोज के गाने पर इतना मुग्ध होना कि अपने विवाहित राजा से, जिसकी एक ही साल पहले पहली शादी हो चुकी थी, सरोज के सङ्ग ब्याह कराना, उसके बाद ही उसके पति का संसार-भ्रमण के लिए चला जाना, उससे मिलन के समय अलिन्द की पागलों सी हालत इत्यादि कोई बेढब भेद अवश्य रखते हैं। मगर वह है क्या? इसी को जानने के लिए मैं अब छटपटाने लगा। क्योंकि उसी पर अलिन्द का पाना या न पाना तथा उसके प्रेम का परिणाम समझना मुझे बहुत-कुछ निर्भर जान पड़ा।

(क्रमशः)
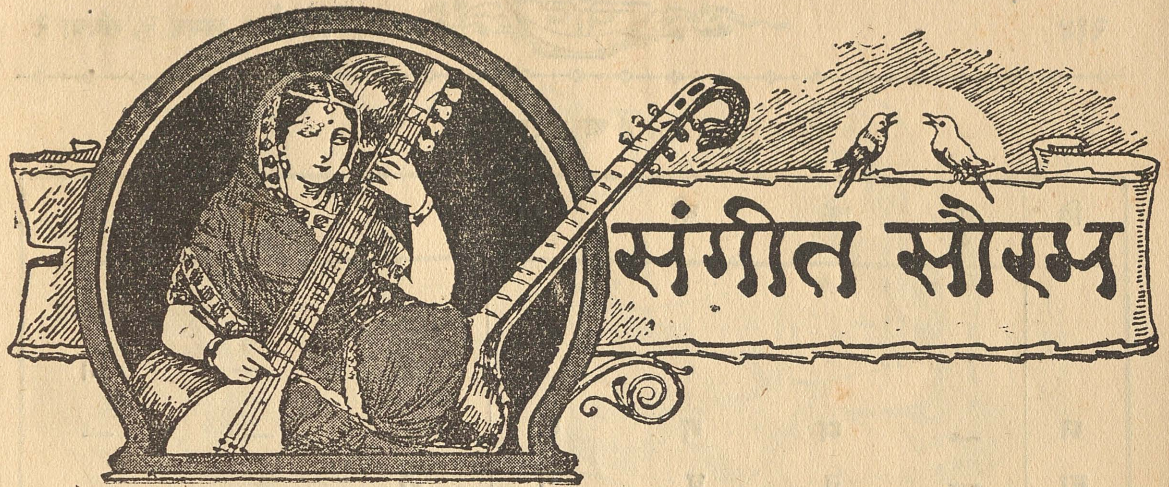
[सम्पादक—श्री० किरण-
कुमार मुखोपाध्याय
(नीलू बाबू)]

आर्तनाद

लावनी—ताल कहरवा (८ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वरलिपिकार
पं० केदारनाथ जी 'बेकल'
बी० ए०, एल० टी०]

मदन मन मोहन गिरिधारी, मेरी सुधि लेना बनवारी

ज्ञान, मान, धन हीन हूँ, रहा न कुछ भी पास
कभी जो अपने दास थे, बना हूँ उनका दास
बहुत हो चुकी मेरी ख्वारी
मेरी सुधि लेना बनवारी

सङ्कट भारत के हरो, आन बचाओ प्राण
फिर इस भूमि को करो, सुख-सम्पति की खान
पधारो शङ्ख चक्रधारी
मेरी सुधि लेना बनवारी

शरण नाथ मैं आपकी, सुनो मेरी फ़रियाद
मोम हुआ पाषान भी, सुन कर आरत नाद
तुम्हीं सोये हो गिरिधारी
मेरी सुधि लेना बनवारी

'बेकल' की विनती सुनो, कहूँ नाथ कर जोर
बलिहारी मुख-चन्द्र के, दीन मलीन चकोर
शीघ्र दो दर्शन सुखकारी
मेरी सुधि लेना बनवारी

स्थायी

ति	न ०	के	धी	ना	धा ×	गे	ना
स	ऩ	स	स	स	स	रग	ग
म	द	न	म	न	मो	—	ह
ग	ग	ग	र	ग	स	र	—
न	गि	रि	धा	—	री	ई	—
ध	प	ध	म	प	ग	म	र
मे	रि	—	सु	धि	ले	—	ना
ग	स	र	ग	र	स	—	—
—	ब	न	वा	—	री	—	—

अन्तरा

ति	न°	के	धी	ना	धा ×	गे	ना
					म	—	म
					ज्ञा	—	न
म	—	म	ग	म	प	—	—
मा	—	न	ध	न°	ही	—	—
प	प	ध	न̲	स	न̲	न̲	—
न	हूँ	—	—	—	र	हो	—
ध	प	ध	मग	म	प	—	—
न	कु	छ	भी	—	पा	—	—
—	—	—	—	—*	म	म	—
—	—	—	स	—	क	भी	—
म	म	म	म	ग र	र	र	र
जो	अ	प	ने	—	दा	—	—
मम	मप	ध	—	—	ध	ध	न̲
स —	थे	—	—	—	ब	ना	—
ध	प	ध	म	प	ग	म	र
हूँ	उ	न	का	—	दा	—	स
ग	स	र	न°	स		सर	ग
ब	हु	त	हीं	—	चु	की	—
ग	ग	—	र	ग	स	र	—
मे	री	—	ख्वा	—	री	—	—
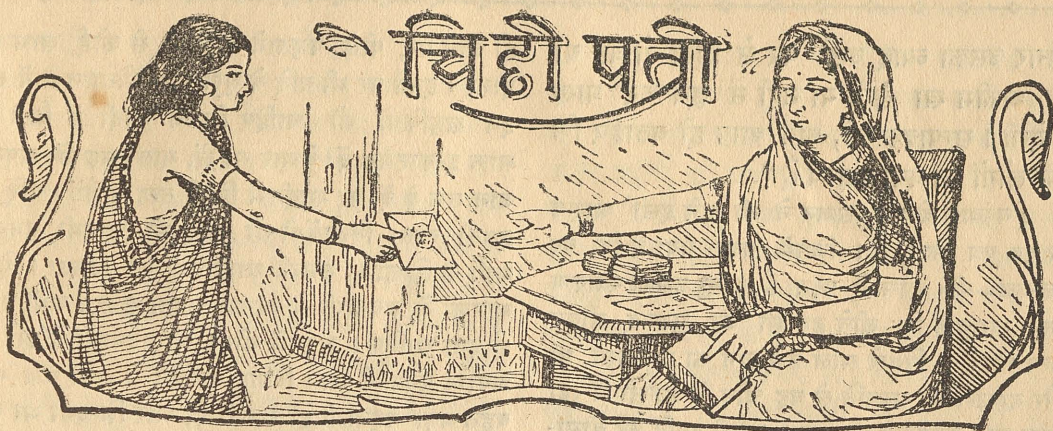
पिता-माता का अविवेक

(१)

एक बहिन लिखती हैं :—

श्रीमान सम्पादक जी,

सादर नमस्ते !

मैं अपनी दुख-भरी कहानी आपको सुनाना चाहती हूँ। मैं एक उच्च कुल की लड़की हूँ। मेरी उम्र १४ साल की है। मेरी माता का देहान्त हो चुका है। मेरी दूसरी माता ने एक ऐसे लड़के से मेरी शादी ठीक की है जो बी० ए० में पढ़ता है, आयु ३५ साल की है। वह लड़का आठ साल से बी० ए० में फ़ेल हो रहा है। घर पर तो बहोत ही सीधे रहते हैं, पर बाहर खूब शराब पीते हैं। सम्पादक जी, और बहोत सी बातें हैं, मैं कहाँ तक लिखूँ? मेरी आपसे एक विनय है। अगर कहीं मुफ़्त में पढ़ाया जाय तो मैं बी० ए० तक पढ़ना चाहती हूँ। मैं सच लिखती हूँ, मैं तीन साल में एण्ट्रेन्स पास कर लूँगी। आप ज़रूर कहीं न कहीं ऐसा इन्तेज़ाम करके जवाब 'चाँद' में दीजिए। मैं हिन्दी कुछ नहीं जानती हूँ, सिर्फ़ घर पर ही थोड़ा-बहुत पढ़ी हूँ। सम्पादक जी! ज़रूर मुझे इस कूड़े से उठाइए। मैं सच कहती हूँ, वह लड़का मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं है। हाँ, मालदार बहोत है। सिर्फ़ माल पर ही मुझे बलिदान किया जा रहा है। हाय! मुझे बहोत ही गन्दे कूड़े में ढकेल रहे हैं। मैं उसमें से कैसे निकल सकती हूँ। मुझे आप ज़रूर ही बचाइए।

* * *

(२)

एक कायस्थ सज्जन लिखते हैं :—

श्रीमान सम्पादक जी, जै राम जी की!

मेरे एक मित्र हैं, जिनके रिश्ते की एक बहिन ××× में रहती हैं। लड़की की उम्र इस समय २० वर्ष की होगी। घर में उसके पिता हैं, सौतेली माँ है, और पितामह हैं। ये लोग कान्य-कुब्ज ब्राह्मण हैं। पिता स्वभाव से ही नीच है। लड़की देखने में सुन्दर और पढ़ी-लिखी है, उसके नीच पिता ने इस समय उसका ब्याह एक खूसट और कुरूप वकील से ठीक किया है, जिसकी आयु लगभग ४२ वर्ष के होगी। लड़की के पितामह ने इस ब्याह में आपत्ति की थी, परन्तु दुष्ट पिता ने उनको बहुत बुरा-भला कहा और मारने पर उतारू हो गया। इस ब्याह में उसने वर से काफ़ी धन लिया है और जामाता को अपने घर रख कर उनकी आय को हथियाने का भी इरादा करता है। लड़की ने अभाग्यवश अपने भावी स्वामी को देख लिया है। उसको उसकी सूरत देख कर घृणा हो गई है। उसने खाना-पीना छोड़ दिया है और सूख कर काँटा हो गई है। वह कहती है कि

अगर उसका ब्याह उसी वर से होगा तो वह या तो अफ़ीम खा लेगी या नदी में डूब कर प्राण दे देगी। सम्पादक जी, अब आप ही बताइए कि हम लोगों का क्या कर्तव्य है?

[गढ़वाल के एक सज्जन ने भी हमें इसी आशय का एक पत्र भेजा है। जिसमें कहा गया है कि वर एल-एल० बी० क्लास में पढ़ता है, परन्तु उसका स्वास्थ्य इतना ख़राब है कि जीते हुए भी वह मृतवत् जीवन बिता रहा है। पिछले साल उसे ख़ून का क़ै होता था और डॉक्टरों की सम्मति से वह चीड़ के जङ्गलों में रहा करता था। आजकल भी बुख़ार, खाँसी आदि कई बीमारियाँ उसे घेरे हुए हैं। इसके पहले इस लड़के की शादी एक बार हो चुकी है, परन्तु वह स्त्री यौवनकाल में जब अपनी काम-प्रवृत्ति न दबा सकी तो लज्जा छोड़ कर इधर-उधर भटकने लगी। इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें इस पत्र में लिखी गई हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ निरर्थक है।

जो माता-पिता बुद्धि और विवेक को इस प्रकार तिलाञ्जलि दे बैठे हैं, उनसे क्या कहा जाय? परन्तु इन अभागिनी कन्याओं के अन्य कुटुम्बियों तथा स्वयं इन कन्याओं से दो शब्द कहना आवश्यक है। इन शादियों को ठीक करने में जिन लोगों का हाथ हो, उन्हें इनके परिणामों को एक बार अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। ऐसी शादियों से होने वाली बुराई प्रत्यक्ष है। ऐसी शादियों का जो घातक प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ता है, उसके अनेक करुणाजनक उदाहरण 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में प्रायः छपा करते हैं। अतः इन सभी कन्याओं के सम्बन्धियों का यह परम आवश्यक कर्तव्य है कि माता-पिता की अर्थ-लिप्सा पर इन निरपराधिनी कन्याओं के बलिदान को रोकने में वे अपनी सारी शक्ति लगा दें।

परन्तु इस विपत्ति से छुटकारा पाने का सब से बड़ा उपाय स्वयं इन लड़कियों के ही हाथ में है। इनके लिए घर से भाग जाने अथवा आत्म-हत्या कर लेने की अपेक्षा यह कहीं अधिक हितकर है कि ये अपने माता-पिता से साफ़ शब्दों में कह दें कि ऐसी शादी ये किसी भी हालत में नहीं कर सकतीं। जहाँ जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित है, वहाँ झूठी लज्जा को दो मिनट के लिए त्याग कर साफ़-साफ़ बातें कर लेना ही अच्छा है। शादी हो जाने पर, पीछे पछताने या रोने से कोई लाभ न होगा। इतने पर भी यदि ये मूर्ख माता-पिता न मानें तो इन लड़कियों को चाहिए कि वे शादी में बैठने से साफ़ इन्कार कर दें। वे मार सह लें, गाली सह लें, अपनी जान तक दे दें, पर शादी में किसी तरह न बैठें। यदि वे इतनी दृढ़ता दिखावेंगी तो कोई भी आदमी उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उनकी शादी नहीं कर सकता। ऐसे मामलों में बदनामी से डर कर अपना सङ्कल्प कभी नहीं छोड़ना चाहिए। शुरू में थोड़ी सी बदनामी के डर से अयोग्य पुरुष के साथ विवाह कर लेने से आगे चल कर बहुत बड़ी बदनामी हो सकती है, और ज़िन्दगी भर जो नरक का दुःख भोगना पड़ेगा उसका पूछना ही क्या है! यदि ये बहिनें प्राण देकर भी अपनी बात पर अटल रहने का प्रण कर लें तो संसार की कोई भी शक्ति इनका अहित नहीं कर सकती।

पहिली बहिन यदि वास्तव में शिक्षा प्राप्त करने के लिए लालायित हों तो वे स्थानीय मातृ-मन्दिर में ली जा सकती हैं।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

सधवा या विधवा?

(१)

एक दुखिनी बहिन लिखती हैं :—

महाशय जी, नमस्कार!

आज मैं अपनी दुःख-कहानी लिखने बैठी हूँ। क्या इसका कोई इलाज है? मैं ××× एक छोटे से गाँव की रहने वाली हूँ। जब मेरी शादी हुई, मैंने समझा दुनिया की कुल ख़ुशी मेरे हाथ में आ गई। अच्छा घर, अच्छे आदमी, सब कुछ अच्छा मिला। मेरे मालिक में कोई ऐब न था। मैं समझती थी मेरे जैसी कोई ख़ुश क़िस्मत नहीं है। शादी के तीन साल बाद तक मैं अपने सास के घर रही। मेरे मालिक बहुत थोड़ा पढ़े थे। कॉलेज की शकल उन्होंने नहीं देखी थी; मगर क़िस्मत बड़ी अच्छी थी। २० साल की उमर में ही १५०) महीना की आमदनी शुरू हो गई। तीन साल के

अन्दर ही ४००) महीना मिलने लगा। व्यापार वे अब भी करते हैं और इस समय ६००) महीना की आमदनी है। मगर मेरी बदक़िस्मती से यार-दोस्त शराबी इकट्ठे हो गए। पहले लुके-छिपे सब कुछ होता रहा, फिर मेरे सामने होने लगा। जब कभी तीन-चार रात लगातार जगते हैं, तो कोई न कोई तकलीफ़ खड़ी हो जाती है। जब मैं मना करती हूँ, तो आगे न करने के लिए क़समें खाते हैं, मगर जब वक्त आता है तो वही हाल हो जाता है। मिन्नत से, प्यार से, लड़ कर—हर तरह समझा कर थक गई हूँ, कुछ असर नहीं होता। अब तो शराब भी महीने में २५ दिन उड़ने लगी है। वेश्या के घर भी वे जाते हैं। उनके दोस्तों में से एक भी ऐसा नहीं जो शराब न पीता हो। मैंने शराब पीनी तो काफ़ी बर्दाश्त की, मगर दूसरी बात मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। रोने-खपने के सिवा मेरे पास और कोई इलाज बाक़ी नहीं रहा। मैंने अपनी एक पढ़ी-लिखी बहिन से सलाह ली तो वे कहने लगीं कि ज़्यादा वक्त इनके साथ रहने की कोशिश किया करो। मेरे पास एक आख़िरी इलाज था। मैंने ख़ुद भी शराब पीनी शुरू कर दी। उससे पहले तो वे डरे, मगर अब उसकी भी परवाह नहीं करते, बल्कि ख़ुद अपने हाथ से पीने को देते हैं। वह भी डर के मारे मैंने छोड़ दी कि कहीं मुझे ही आदत न पड़ जाय। इस वक्त रात के १२ बजे हैं, जब कि मैं रोकर थक गई हूँ तो यह सोच कर कि 'चाँद' की ही शरण लूँ, शायद वही कोई उपाय बतला दे, यह चिट्ठी मैं आपको लिख रही हूँ।

सम्पादक जी, देश में चारों ओर लोग सुधार-सुधार चिल्ला रहे हैं, पर सुधार कहाँ होना चाहिए, इस तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं है। वेश्या-गमन के विरुद्ध कोई आवाज़ ही नहीं उठाता। सम्पादक जी, विधवाओं का रोना तो परमात्मा के आगे है, मगर सधवाएँ किसके आगे फ़रियाद करें ? जिस वक्त मेरा मालिक वेश्या के घर जाता है, कभी दिल चाहता है कि कुछ खा मरूँ, कभी दिल चाहता है घर से निकल जाऊँ, कभी दिल में ख़याल आता है कि इस समय कोई ५०) रुपए महीने की आमदनी वाला आदमी आकर कह दे कि मैं यह सब कुछ नहीं करता तो उसके साथ चली जाऊँ; मगर इन सब बातों में रुकावट डालते हैं मेरे दो बच्चे, जो एक ५ साल और एक २ साल की उमर के हैं और इस वक्त भी पास ही सोए पड़े हैं। अगर बच्चे न होते तो कब की कुछ कर छोड़ती। बदक़िस्मती से पढ़ी भी कुछ ज़्यादा नहीं हूँ। इतनी हिम्मत भी नहीं रखती कि घर छोड़ कर नौकरी कर लूँ।

*　*　*

(२)

एक दूसरी दुःखिनी बहिन लिखती हैं :—

सम्पादक जी,

नमस्ते !

मैं कायस्थ जाति की स्त्री हूँ और ××× की रहने वाली हूँ। मेरे पति थोड़े वेतन के सरकारी नौकर हैं। बुरे मनुष्यों के सङ्ग से उन्हें मदिरा-पान तथा वेश्यागामी होने का चाव पैदा हो गया है। इस कारण वह अब न तो अपने माता-पिता की ख़बर लेते हैं और न बच्चों की। जो कुछ पैदा करते हैं, सब वेश्या के यहाँ दे आते हैं। घर की आर्थिक दशा बिगड़ती जाती है। माता-पिता के समझाने पर उन्हें अनुचित गाली देते हैं और मुझे मारने पर तैयार हो जाते हैं ! मुझे दो बातों की अधिक चिन्ता है। एक तो अपना शेष जीवन बिताने की, दूसरे इन बच्चों की क्या दशा होगी ? बहुत सम्भव है कि वे उस वेश्या को भगा कर कहीं चले जावें। ऐसी दशा में भगवान ही जानें हम लोगों की क्या दशा हो ! मैंने कई बार यह सोचा कि छिपे-छिपे उनकी शिकायत किसी अफ़-सर से कराऊँ। मगर ऐसी दशा में नौकरी जाने का भय है। फिर गुज़ारे की कोई सूरत न

रहेगी। सम्पादक जी, मैं पढ़ना-लिखना भी जानती हूँ। इसलिए विचार होता है कि कहीं नौकरी कर लूँ, मगर वह मुझे नौकरी क्यों करने देंगे? सम्पादक जी, यह भी मेरा ही दुर्भाग्य है जिससे ऐसे पति मिले हैं। मैं ऐसे पति को पाकर प्रसन्न नहीं हूँ; परन्तु क्या करूँ, हिन्दू कुल की स्त्री हूँ। आज कई वर्ष से इसी प्रकार के दुख पा रही हूँ। इतना भी ज्ञान है कि आत्मघात पाप है; और फिर छोटे बच्चों का क्या होगा? ६-६ दिन हो जाते हैं, उनके दर्शन नहीं होते। क्या आपकी राय में वह वेश्या भाग्यशालिनी नहीं है जो प्रतिदिन उनके दर्शन करती है? अब बताइए, मैं क्या करूँ?

[ऊपर जो दो पत्र प्रकाशित किए गए हैं, उनकी लेखिकाओं के हृदय की वेदना, उनकी भाषा में प्रतिबिम्बित हो उठी है। हम हृदय से उनकी पीड़ा अनुभव करते हैं। इस प्रकार की घटनाएँ हमारे समाज के लिए नई नहीं हैं। अक्सर हम ऐसी घटनाएँ देखते हैं, सुनते हैं और उन पर विचार भी करते हैं, किन्तु फिर भी ऐसी बातें सुन कर हृदय पर आघात लगता है। पाप और पुण्य की दुहाई देने वाले समाज से हम पूछते हैं, उसने ऐसी दुःखिनी बहिनों के लिए क्या व्यवस्था की है? क्या वह इनके सुख-दुख का, इनके जीवन के उत्थान-पतन का उत्तरदायी नहीं है? क्या उसका निर्माण केवल धार्मिक व्यवस्था देने और 'पतन' की व्याख्या करने के लिए ही हुई है?

पहले पत्र की लेखिका ने लिखा है—"जिस समय मेरा मालिक वेश्या के यहाँ जाता है, दिल चाहता है घर से निकल जाऊँ, किसी ऐसे आदमी के साथ चली जाऊँ जो ऐसा न करता हो।" हर तरफ़ से सताए और उत्पीड़ित हृदय का इस प्रकार की बात सोचना कुछ अस्वाभाविक नहीं है।

अपनी इन बहिनों को हम क्या उपाय बतावें जिससे ये अपना जीवन सुखमय बना सकें? हिन्दू-समाज ने इनके लिए कोई व्यवस्था नहीं की, कोई उपाय नहीं निकाला। उसकी तो आज्ञा है—

अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
... ...
ऐसेहु पति कर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

पति योग्य हो या अयोग्य, चरित्रवान हो या दुश्चरित्र, लेकिन स्त्री उसकी सेवा करने, उसकी अनुगत होकर रहने के लिए वाध्य है। यदि वह ऐसा न करेगी तो उसे 'यमपुर' में न जाने कितने दुःख भोगने पड़ेंगे। इस 'यमपुर' की कल्पना ने सदियों से हमारी बहिनों के दुर्बल हृदय पर आतङ्क जमा रक्खा है। अब उनके लिए कौन सा पथ है? हमारे समाज ने तो उन्हें मूक होकर सब कुछ सहने की आज्ञा देकर ही अपनी इतिकर्तव्यता समझ ली; किन्तु क्या इससे उसकी वेदना कुछ भी कम हो सकी?

तलाक़ का नाम सुनते ही हमारा समाज उन्मत्त हो जाता है, झूठे अहङ्कार से अधीर हो जाता है। हम यह नहीं कहते कि तलाक़ बहुत अच्छी प्रथा है और उसका होना समाज के लिए आवश्यक है, किन्तु जैसी परिस्थितियों में होकर हम गुज़र रहे हैं, उन्हें देखते हुए उसकी उपयोगिता स्वीकार करने से हम मुँह भी नहीं मोड़ सकते। ऐसी अवस्थाओं में पड़ कर क्या अन्य देशों की स्त्रियाँ भी इतनी ही विवश और असमर्थ रहती हैं? क्या वे अपने दुराचारी और अयोग्य पति से सम्बन्ध-विच्छेद करके जीवन को सुखमय नहीं बना सकतीं? लेकिन ठीक यही बात हमारे समाज की स्त्रियों के लिए नहीं कही जा सकती। वे कितनी विवश हैं, कितनी असमर्थ! हमारे समाज ने उनके जीवन को सुखमय बनाने के सभी द्वार बन्द कर रक्खे हैं!!

लेकिन ऐसी दशा में उनके लिए पथ कौन सा है? किस पथ पर अग्रसर होकर वे अपने इस घृणित और नारकीय जीवन से छुटकारा पाकर सुख और शान्ति प्राप्त कर सकेंगी? हमारी समझ में, उपाय उनके अपने ही हाथों में है। जब तक वे स्वयं साहस से काम न लेंगी, जब तक वे स्वयं अपने ही पैरों पर उठ खड़ी न होंगी, तब तक उनकी दशा में सुधार होने की कोई गुञ्जायश नहीं है। अपने लिए उन्हें स्वयं ही लड़ना पड़ेगा, अपना रास्ता साफ़ करना पड़ेगा।

पति-पत्नी का सम्बन्ध प्रेम और कर्त्तव्य-पालन की भित्ति पर स्थित है। जहाँ प्रेम और कर्त्तव्य-पालन की भावना नहीं, वहाँ कोई भी पति, 'पति' होने का दावा

नहीं कर सकता । यह अन्याय और असङ्गत है। हम जानते हैं, हमारी ये बातें कितनी ही कोमल-प्राण, कुसंस्काराच्छन्न बहिनों को पसन्द न आवेंगी, पर विवश होकर ही हमें यह कठोर बात कहनी पड़ती है! इसके सिवा और कोई गति नहीं!

इन बहिनों के लिए दो ही मार्ग हैं। या तो प्रारब्ध और समाज के नाम पर रोते-रोते अपना सारा जीवन ये इसी नरक में बिता दें अथवा साहस और तेजस्वितापूर्वक इन अत्याचारों और अन्यायों का मुक़ाबला करें। दृढ़तापूर्वक कह दें कि हम इन अत्याचारों को न सहेंगी। इसके लिए यदि ज़रूरत हो तो वे न्यायालयों की भी सहायता ले सकती हैं। हमारा विश्वास है, इस पुनीत कार्य में उनका आत्मबल और ईश्वर उनकी सहायता करेगा और इस प्रकार उन्हें अग्रसर होते देख कर समाज भी उनके लिए कोई न कोई उचित मार्ग निर्माण करने का प्रयत्न करेगा।

दूसरी बहिन की दशा और भी शोचनीय है। पति के दुर्व्यवहार के साथ ही साथ उन्हें दरिद्रता से भी द्वन्द्व करना पड़ता है। वे पढ़ी-लिखी हैं, किन्तु नौकरी कर लेने की स्वतन्त्रता भी उन्हें नहीं प्राप्त है। वे लिखती हैं—"ऐसे पति को पाकर मैं प्रसन्न नहीं हूँ, किन्तु क्या करूँ, हिन्दू कुल की स्त्री हूँ। × × × इतना भी जानती हूँ कि आत्मघात पाप है।"

उनके इन वाक्यों में कितनी वेदना है, कितनी बेबसी! कोई भी सहृदय इन पंक्तियों को पढ़ कर तड़प उठेगा, मगर अभागे हिन्दू-समाज में ऐसे भी नारकीय जीव वर्तमान हैं, जो ऐसी सर्वगुण-सम्पन्ना स्त्रियों को छोड़ कर, बाज़ार की जूठी पत्तलें चाटने में ही सुख मानते हैं। हम उनसे क्या कहें? हमारी बातों का उन पर असर ही क्या होगा? लेकिन इतनी बात तो उन्हें भी याद रखनी चाहिए कि उनका यह दुराचार—पतिव्रता और सुन्दरी पत्नी के प्रति उनका यह दुर्व्यवहार ही उनका सर्वनाश करेगा, उन्हें ले डूबेगा। उन्हें यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि सुख और आनन्द की खोज में जिस ओर वे अग्रसर हुए हैं, वह उनका प्रकृत मार्ग नहीं है। उन्हें हताश होना पड़ेगा, पछताना होगा, क्योंकि वे मार्ग भूल गए हैं, भटक गए हैं।

इन बहिनों को क्या कह कर हम सान्त्वना दें? इनका जीवन तो शायद इसी प्रकार दुःखों और विपत्तियों में ही बीतेगा। ये खुल्लमखुल्ला इन अत्याचारों का विरोध कर सकती हैं, दुराचारी पतियों से सम्बन्ध-विच्छेद करके जीवन को अपेक्षाकृत शान्त भी बना सकती हैं, किन्तु सदियों से जमे हुए संस्कार—जिन्हें दूसरे शब्दों में दुर्बलता कह सकते हैं—इन्हें ऐसा करने नहीं देंगे। घुल-घुल कर ही ये अपना जीवन विसर्जन करेंगी। किन्तु यदि इन घटनाओं का भी समाज पर कुछ प्रभाव पड़ सके, इन चोटों से भी यदि उसके मन में ऐसी असहाय बहिनों के त्राण के लिए कुछ हलचल पैदा हो सके तो इनका बलिदान बहुत हद तक असफल न समझा जायगा।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

पिशाचिनी या सास?

एक दूसरी देवी के पत्र का आशय है—

श्रीयुत सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

मैं वैश्य-कुल में उत्पन्न हुई हूँ। इस समय मेरी आयु १६-१७ वर्ष की है। मेरे पतिदेव २५ वर्ष के हैं। किन्तु कभी उनके साथ सुख और शान्ति के साथ रहने का मौक़ा मुझे नहीं मिला।

शादी के बाद जब मैं ससुराल आई उस समय मेरी अवस्था छोटी थी। मेरे पति पढ़ाई के कारण बाहर रहते थे। घर में सास और उनका एक सौतेला बड़ा लड़का रहता था। सास जी मेरा बिछौना उसी कमरे में बिछाती थीं, जिसमें मेरा जेठ सोया करता था। कुछ दिनों बाद, मेरी चारपाई हटा ली गई और कमरे में एक ही बिस्तर बिछने लगा। मैंने जब सास जी से पूछा तो उन्होंने जेठ के पास ही जाकर सो जाने को कहा। जब मैं न गई तो ज़बर्दस्ती मुझे कमरे में ढकेल आईं। उस दिन मुझे उसी जेठ के साथ सोना पड़ा और रात में उसने मेरा सर्वनाश कर डाला!

यही क्रम कुछ समय तक चलता रहा। फिर

मुझे जब कुछ अक़्ल आई तो मैं इस पाप-मार्ग से दूर हो गई और जेठ के पास जाना या उससे मिलना-बोलना मैंने छोड़ दिया। इससे सास जी मुझसे बहुत चिढ़ गईं और उन्होंने मुझ पर तरह-तरह के ज़ुल्म करने शुरू कर दिए। कुछ दिनों तक मैं धैर्यपूर्वक सब सहती रही, फिर मैके चली गई।

जब मेरे पति अपनी पढ़ाई ख़तम करके घर आए तो वे मुझे मैके से लेकर नौकरी पर चले गए। यहाँ आकर उनके साथ मेरा समय बड़ी निरुत्साहता के साथ कटने लगा, क्योंकि वे नपुंसक हैं। ख़ैर, मैं उसीमें सन्तोष करके दिन बिताने लगी। लेकिन दुर्भाग्य ने यहाँ भी मेरा पिण्ड न छोड़ा। एक दिन अपने सौतेले बेटे को लेकर सास जी यहाँ भी आ पहुँचीं। एक दिन मेरे पति की अनुपस्थिति में उन्होंने मुझे जेठ के पास जाने को कहा। जब मैं किसी प्रकार राज़ी न हुई, तो वे बहुत नाराज़ हुईं और तभी से मेरी दुश्मन बन बैठी हैं। पतिदेव को भी उन्होंने बहका लिया है और अब वे भी मुझसे बुरा व्यवहार करने लगे हैं। पहले और कुछ न था, तो उनसे बोल-चाल कर ही मन को सन्तोष देती थी।

अब मेरा जेठ तो मेरे सौभाग्य से मर गया है, लेकिन सास जी के कारण मैं अपने पति से मिल-जुल भी नहीं सकती, बातचीत तो कहाँ कर सकूँगी। रात में भी वे अपनी चारपाई मेरे पति के पास ही बिछाती हैं, जिसमें मैं या वे किसी प्रकार भी एक दूसरे से मिल न सकें। मेरे लिए एक छोटे गन्दे कमरे में सोने का प्रबन्ध है। सास जी और पतिदेव घी-दूध, मलाई और तरह-तरह के अच्छे खाने खाते हैं, मुझे ज्वार और बाजरे की सूखी रोटी भी भरपेट नसीब नहीं होती! पहनने के लिए मुझे कपड़ा भी नहीं मिलता, न जाने कितने दिनों की पुरानी और काली दो-तीन धोतियों पर मैं गुज़र कर रही हूँ। सम्पादक जी, मेरी सास १८-१९ वर्ष से विधवा हैं, किन्तु वे नित्य नया शृङ्गार करतीं और पति की ग़ैरहाज़िरी में मुहल्ले भर में घूमा करती हैं, लेकिन मैं अगर आईना भी उठा लेती हूँ तो मुझे तरह-तरह की बातें बोलतीं और गालियाँ देती हैं!!

सम्पादक जी, यहीं तक बस नहीं है। वे मुहल्ले भर में तरह-तरह की मेरी बदनामी करतीं और अपने बेटे की दूसरी शादी कराने की कोशिश करती हैं। वे लोगों से कहती हैं कि बहू बाँझ है, उसे अमुक रोग है, अमुक बुराई है; हालाँकि न तो मैं बाँझ ही हूँ और न मुझे कोई रोग ही है। मैं तो यह नरक-यातना भोग ही रही हूँ, सबसे अधिक चिन्ता मुझे उस लड़की के जीवन की है जो अब ब्याह कर आवेगी!!!

अब सम्पादक जी, आप ही बतलाइए कि मैं इस प्रकार कब तक सहन करती रहूँगी? पति का सुख तो मेरे भाग्य में है ही नहीं—बचा क्या आसमान से उतार कर मैं सास जी को दे दूँ? अब मुझसे सहा नहीं जाता। यदि यही ढङ्ग रहा तो या तो मैं ही इस असार संसार से चल दूँगी, अन्यथा यदि उन्हें दूसरी शादी करने का अधिकार है तो मैं बिना अधिकार के ही शादी कर लूँगी। यदि ऐसा न कर सकी तो जो दिल में आवेगा वही करके अपनी आपत्तियों का अन्त कर दूँगी!

[इस पत्र-लेखिका के अन्तिम वाक्यों का हम बड़े ज़ोरों से समर्थन करते हैं। यदि किसी अविचारी पुरुष को यह अधिकार है कि वह एक निरपराध स्त्री को छोड़ कर दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्रियों को बिना अधिकार के भी दूसरा विवाह कर लेने के लिए अवश्य प्रस्तुत होना पड़ेगा। यही एक उपाय है, जिससे ऐसी अभागिनी स्त्रियों के दुःख दूर हो सकते हैं। यदि दो-चार स्त्रियाँ भी इतना साहस दिखावें तो इससे स्त्री-जाति का अनन्त उपकार हो सकता है। हमें हर्ष है कि इस पत्र-लेखिका में इतना साहस दीखता है, जिससे वे इस दुरूह कार्य में हाथ डाल सकें।

वह लिखती हैं—"यदि ऐसी ही दशा रही तो मैं इस असार संसार से चल दूँगी।" हमारी समझ में नहीं

आया, इस 'असार संसार' से चल कर वह कहाँ जायँगी। यह संसार तो इतना छोटा नहीं, जितना वह समझती हैं। संसार से भाग कर भी कहीं संसार में ही जाना पड़ेगा। फिर इससे लाभ? दुःख तो सर्वत्र है। जो दुःख से घबरा कर भागना चाहता है, उसे बार-बार दुःख के समुद्र में गिरना पड़ता है। परन्तु जो लोग बहादुर हैं, बुद्धिमान हैं, वे दुःख से घबरा कर भागते नहीं, बल्कि उसका सामना करते हैं। सामना करने से ही दुःख का अन्त होता है। अतः इस बहिन को हमारी निश्चित सम्मति है कि वह इस 'असार संसार' से भागने की चेष्टा न करें, बल्कि इसकी सभी असारताओं, अनित्यताओं और तज्जनित सभी दुःखों का सामना करें।

इस बहिन को सब बातें खोल कर अपने पति से कहनी चाहिए। हमें विश्वास है, सभी बातें जानने के बाद वह अभागा अपने कर्त्तव्य के पालन से विमुख न रहेगा। परन्तु यदि उस पर उसकी माता का इतना ज़बर्दस्त आतङ्क छा गया हो कि वह उनका विरोध करने में असमर्थ हो तो इस बहिन के सामने सीधा और सच्चा मार्ग यह है कि वह अपना दूसरा विवाह कर लें। यह बहिन यदि पुनः अपना विवाह करना चाहें तो वह इलाहाबाद के मातृ-मन्दिर (कृष्ण-कुटीर रसूलाबाद, इलाहाबाद) से इस विषय में पत्र-व्यवहार कर सकती हैं। यह संस्था अपनी शक्ति भर उनकी सहायता करेगी।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

कृतज्ञता

चाईबासा (बिहार) से एक बहिन लिखती हैं :—

मान्यवर सहगल जी,

सविनय प्रणाम !

जिस लड़की के बारे में आपने मई के अङ्क में मेरे पत्र को छापा था, उसका शुभ विवाह गत फाल्गुन मास की पूर्णमासी को, ईश्वर की दया से उन्हीं के एक स्वजातीय, साहसी युवक के साथ सानन्द सम्पन्न हो गया।

सहगल जी! मैं आपके अपार उद्योग और स्त्री-जाति के प्रति आपकी असीम करुणा को स्मरण कर भक्ति-विमुग्ध हो जाती हूँ। मुझे आपको रूखा धन्यवाद देते लज्जा मालूम पड़ती है। मैं तथा यहाँ की शिक्षित बहिनें आपकी दीर्घायु-कामना करती हुई, ईश्वर से 'चाँद' की भी दीर्घ जीवन प्रार्थिनी हैं। मान्यवर भ्राता जी! आपकी सूचना से अनेक साहसी भाई और दयावती बहिनें, लड़की की मङ्गल-कामना से आश्रय देने और विवाह करने को उत्सुक हुए थे। अभी तक ३५ चिट्ठियाँ विवाह-प्रार्थी साहसी, पुरुष-सिंहों की मेरे पास आई हैं। देश की जाग्रति और साहस देख कर मुझे अपार आनन्द अनुभव होता है। ईश्वर युवाओं को दीर्घ जीवन प्रदान कर समाज और देश का आदर्श बनावें। महोदय! कृपापूर्वक यह पत्र 'चाँद' के जून महीने के अङ्क में छाप कर चिन्तित भाई-बहिनों की चिन्ता निवारण कीजिएगा। यही मेरी प्रार्थना है।

आपकी बहिन,

—सु० दे० सामन्त

[गत मई मास के अङ्क में पृष्ठ १०५ पर उपरोक्त बहिन की दुःखपूर्ण कहानी छपी थी। हमें अत्यन्त हर्ष है कि उसे पढ़ कर अनेक सुशिक्षित और साहसी युवक उस बहिन के कष्ट दूर करने तथा आश्रय देने को तैयार हो गए। इसी प्रकार के एक सुयोग्य युवक के साथ गत फाल्गुन मास की पूर्णिमा को उस बहिन का विवाह हो गया। अन्य भाई-बहिनों से प्रार्थना है कि अब उस बहिन के सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता अथवा पत्र-व्यवहार करने का कष्ट न करें।

—सं० 'चाँद']
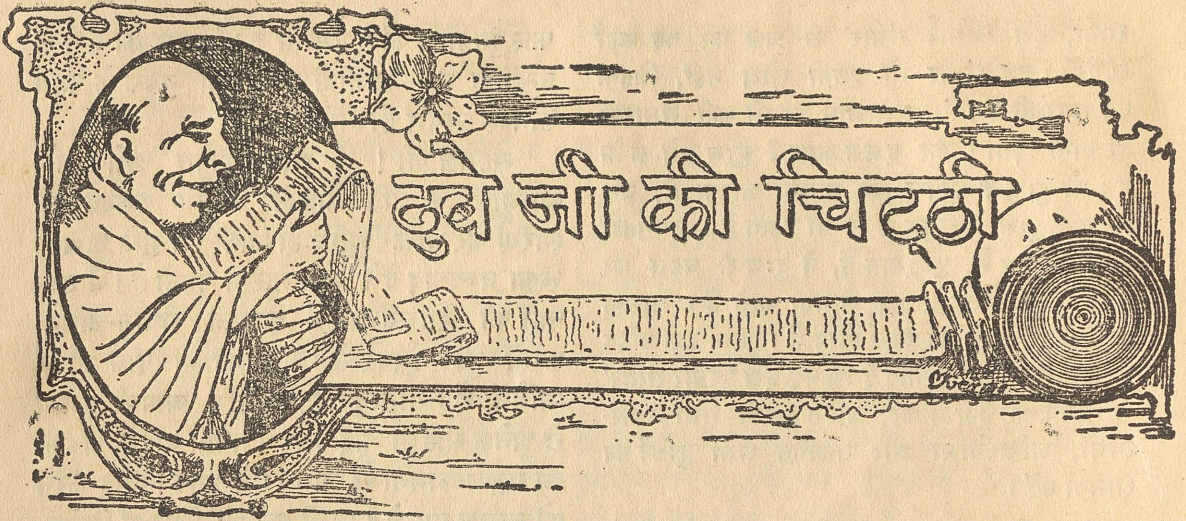
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

उस दिन कुछ आदमियों में बड़ी गर्मागर्म बहस हो गई। ऐसी गर्मागर्म बहस हुई कि लोगों के मुँह धुँआ हो गए। बहस का विषय अश्लील था—अर्थात अश्लीलता था। अश्लीलता पर बहस करना भी अश्लील न समझ लिया जाय, इसलिए बड़ी सावधानी से काम लिया गया था। जिस कमरे में बहस हुई थी उसके द्वार पर एक सन्तरी खड़ा किया गया था। एक महोदय की यह भी राय थी कि सन्तरी के हाथ में नङ्गी तलवार दे दी जाय; परन्तु फिर यह सोच कर कि नङ्गी तलवार लेकर खड़े होना कहीं अश्लील न समझ लिया जाय—ऐसा नहीं किया गया। अजी वैसे तो कोई बात नहीं थी, तलवार लेकर खड़ा होना कोई ऐब नहीं; परन्तु नङ्गी तलवार ! हरे-हरे ! नङ्गी शब्द अश्लील है, इसलिए उसका स्मरण करना भी बुरा है। दुर्बल हृदय लोग 'नङ्गी' शब्द पर न मालूम क्या-क्या सोच लेंगे। और वह जो कुछ सोचेंगे वह निश्चय ही अश्लील होगा, इसलिए इस शब्द का सङ्केत बुरा है। ख़ैर साहब ! बहस आरम्भ होने के पहले यह तय हो जाना आवश्यक था कि इस शास्त्रार्थ का निर्णायक कौन बनाया जाय। निर्णायक ऐसा होना चाहिए जो निष्पक्ष हो। एक सज्जन ने एक वृद्ध महोदय का नाम पेश किया। उन्होंने कहा—"श्रीमान् त्रिवेदी जी महाराज इतने वृद्ध हैं कि बड़ी से बड़ी अश्लील बात भी इनका चित्त नहीं बिगाड़ सकती, इसलिए इनके सम्मुख सब बातें निस्सङ्कोच कही जा सकती हैं। अतएव मेरा प्रस्ताव यह है कि निर्णायक यही बनाए जावें।" इस पर मिश्र जी महाराज बोले—"त्रिवेदी जी निर्णायक नहीं बनाए जा सकते; क्योंकि इन्हें कोई भी बात अश्लील नहीं दिखाई पड़ेगी। जब यह श्लीलता तथा अश्लीलता में कोई अन्तर न समझेंगे तो निर्णय क्या करेंगे ?"

त्रिवेदी जी बोले—भई, मैं तो ब्रह्मरूप हो गया हूँ। मेरे लिए तो यह संसार असार है। चित्त इतना शान्त तथा स्थिर हो गया है कि चाहे जितनी अश्लील बातें बकिए—वह टस से मस न होगा—बशर्ते कि जवानी की याद न आए। जवानी की याद आ जायगी तो थोड़ी देर के लिए मस्तिष्क बिगड़ जायगा—यद्यपि चित्त तब भी न बिगड़ेगा।

एक तीसरे सज्जन ने प्रस्ताव किया—मेरी सम्मति में निर्णायक मिश्र जी बनाए जावें, क्योंकि यह अपनी जोरू का नाम लेना भी अश्लील समझते हैं। क्यों मिश्र जी, आपकी जोरू का क्या नाम है ?

मिश्र जी तुनक कर बोले—गन्दी बातें बकते हो—जोरू का नाम भी कहीं लिया जाता है ?

मैंने पूछा—अच्छा आपकी जोरू आपका नाम लेती है कि नहीं ?

मिश्र जी बोले—यह और भी गन्दी बात है। पत्नी पति का नाम कभी नहीं ले सकती।

"मन में तो लेती ही होगी?"—मैंने पूछा।

"मन की राम जाने।"—मिश्र जी ने उत्तर दिया।

"आप अपने मन में अपनी जोरू का नाम लेते हैं?"

मिश्र जी स्त्रियों की तरह लज्जापूर्वक मुस्कराते हुए बोले—कभी-कभी तो ध्यान आ ही जाता है।

मैंने कहा—यह बेजा बात है। ऐसा ध्यान न आना चाहिए।

चलिए मिश्र जी भी अलक़त हो गए।

अब फिर निर्णायक का प्रश्न उठा।

एक महोदय बोले—निर्णायक ऐसा होना चाहिए कि जो सब कुछ सुन सकता हो।

"इसे ज़रा स्पष्ट कीजिए"—एक दूसरे महाशय बोले।

"अर्थात् जो किसी बात को सुन कर कानों में उँगली न डाल ले और उठ कर भाग न जाय। साथ ही वह ऐसा भी हो कि अश्लीलता को उसी प्रकार सूँघ ले जैसे बिल्ली चूहे को सूँघ लेती है। सात पर्दों में छिपी हुई अश्लीलता को भी देख सके।"

त्रिवेदी जी बोल उठे—सात पर्दों में छिपी हुई अश्लीलता को देख सके! बाप रे! तब तो हम लोग यहाँ बैठ भी न सकेंगे।

"क्यों-क्यों?"—मैंने पूछा।

"हमारी अश्लीलता तो केवल एक पर्दे के अन्दर छिपी हुई है। हम तो उसे नङ्गे ही दिखाई पड़ेंगे।"

"तो आप लिहाफ़ ओढ़ कर बैठिए।"

"तो ख़ाली मुझे ही क्यों, सबको लिहाफ़ ओढ़ कर बैठना चाहिए। क्योंकि सबके शरीर पर केवल एक ही पर्दा है।"

मैंने कहा—लिहाफ़ ओढ़ कर बैठने की क्या आवश्यकता है, निर्णायक की आँखों पर पट्टी बाँध दी जायगी। वह केवल कानों से सुन सकेगा—आँखों से देख नहीं सकेगा।

यह राय सबको पसन्द आई।

एक महोदय ने झट से प्रस्ताव कर दिया—मेरी सम्मति में दुबे जी ऐसे ही व्यक्ति हैं, अतएव वह ही निर्णायक बनाए जायँ।

इस पर ताबड़तोड़ अनुमोदन-समर्थन सब हो गया और मैं निर्णायक चुन लिया गया। एक महोदय रूमाल लेकर आगे बढ़े। मैं समझ गया कि आँखों पर पट्टी बाँधेंगे। मुझे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया कि मैंने पट्टी बाँधने का प्रस्ताव व्यर्थ किया। परन्तु कर ही क्या सकता था, चुपचाप पट्टी बँधवा ली। पट्टी बँध जाने पर मैंने कहा—अब एक-एक महोदय अपनी बात कहें।

सब से पहले मिश्र जी बोले—मेरी राय में अश्लील बात वह है जिसके पढ़ने, सुनने या देखने से अश्लील बात का ध्यान आवे।

त्रिवेदी जी बोले—तब तो श्रीमद्भागवत तथा रामायण दोनों अश्लील ग्रन्थ हैं।

मैंने कहा—प्रमाण दीजिए।

त्रिवेदी जी बोले—भागवत में श्रीकृष्ण तथा गोपियों का प्रेमालाप, रासलीलाएँ इत्यादि सब अश्लीलता का स्मरण कराने वाली बातें हैं। रामायण में रावण द्वारा सीता का हरण किया जाना अश्लीलता की ओर सङ्केत करता है। इसलिए यह प्रमाणित हुआ कि रामायण तथा भागवत दोनों में अश्लीलता है।

मैंने पूछा—महाभारत के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

"वह भी अश्लीलता से नहीं बचा। पाण्डु, विदुर तथा धृतराष्ट्र का जन्म अश्लीलतापूर्ण है। पञ्च-पाण्डवों का जन्म भी अश्लीलता से नहीं बचा। दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीरहरण अश्लीलतापूर्ण है। कीचक और द्रौपदी की घटना भी अश्लील है।"

"और कुछ?"

"बस अब और क्या? इसी प्रकार अन्य बातों को भी समझ लीजिए।"

मैंने पूछा—अश्लीलता के सम्बन्ध में और भी किसी को कुछ कहना है?

एक सज्जन उठ कर बोले—अश्लीलता वह है जिसे देखने अथवा पढ़ने से अश्लीलता का ध्यान आवे—सुनने से नहीं।

"सुनने से क्यों नहीं?"

"अजी सुनी-सुनाई बातों का क्या विश्वास? और जब तक विश्वास न हो तब तक अश्लीलता कैसी? सुनने को तो हम बहुधा स्त्रियों को गलियों तथा सड़कों

पर गालियाँ तथा गन्दे गीत गाते हुए सुनते हैं ; परन्तु उनका किसी पर कोई प्रभाव पड़ता है ? क्यों नहीं पड़ता ? इसीलिए कि वह केवल सुनी हुई बात है—देखी या पढ़ी हुई नहीं । अफ़वाहों पर विश्वास करना बुद्धिमानी नहीं है ।"

"अफ़वाह कैसी ?"—मैंने पूछा ।

"अपने गीतों में स्त्रियाँ जो बातें कहती हैं वह केवल अफ़वाह ही अफ़वाह होती है । उसमें सत्य कितना होता है, यह भगवान जानें । इसलिए उन पर विश्वास करना मूर्खता है ।"

"तो आपका तात्पर्य यह है कि जिसमें सत्य न हो वह अश्लील नहीं ।"

"हाँ, बात तो ऐसी ही है ।"

"पढ़ी हुई बात सत्य होती है ?"

"बिल्कुल ! वह तो प्रत्येक समय आँखों के सामने रहती है । छपी हुई बात ब्रह्म-वाक्य हो जाती है । उससे इन्कार ही कौन कर सकता है ?"

इसके पश्चात एक अन्य महोदय बोले—मेरी समझ में अश्लील बात वह है जिसे मनुष्य चार आदमियों के सम्मुख सुने, पढ़े अथवा देखे ।

मैंने प्रश्न किया—यदि एकान्त में सुने, पढ़े या देखे ?

"तो वह अश्लील नहीं है ।"

"प्रमाण दीजिए !"

"एक मनुष्य नङ्गा होकर नहाता है । जब तक वह एकान्त में है तब तक अश्लीलता नहीं है, परन्तु यदि वह चार आदमियों के सम्मुख आकर खड़ा हो जाय तो वह अश्लीलता हो जायगी ।"

"नाँगे साधु लोग तो हज़ारों के सम्मुख नङ्गे घूमते हैं ।"

"उसमें अश्लीलता नहीं है ।"

"क्यों ?"

"वह तो दर्शनीय लोग हैं । दर्शनीय मनुष्य किसी भी दशा में देखा जाय, उसमें कुछ भी अश्लीलता नहीं है ।"

"यह बात कुछ समझ में नहीं आती ।"

"समझ में तो मेरी भी नहीं आती, परन्तु व्यवहार में ऐसा ही देखा जाता है ।"

त्रिवेदी जी बोले—अश्लीलता केवल वह है जिसका प्रभाव दुर्बल-हृदय मनुष्यों के हृदय पर पड़े । यदि कोई दुर्बल-हृदय व्यक्ति, पति-पत्नी को पास बैठे देख कर कुछ अश्लीलतापूर्ण बातें सोचता है, तो पति-पत्नी का एक स्थान पर बैठना भी अश्लील है ।

"वेश्याओं का अस्तित्व भी अश्लील है ।"—एक अन्य महोदय बोले ।

"क्यों ?"—मैंने पूछा ।

"वेश्याओं को देखने से अश्लीलता की ओर ध्यान जाता है ।"

"तब तो वेश्याएँ नेस्तोनाबूद हो जानी चाहिएँ ।"

"सबको तोपदम करा दिया जाय ।"

"शायद इसीलिए म्यूनिसिपैलिटियाँ उनका मुहल्ला अलग बसाने का उद्योग कर रही हैं ।"

"केवल इससे काम न चलेगा । उन्हें पर्दे में रखने का प्रबन्ध भी होना चाहिए ।"

"परन्तु पर्दे का तो बहिष्कार हो रहा है ।"

"वह केवल भले आदमियों में । भले घरों की स्त्रियाँ बेपर्द तथा वेश्याएँ पर्दे में रहें ।"

"यह युक्ति अच्छी है ।"

"पशु बड़ी अश्लीलता करते हैं । इन्हें भी पर्दे में रखना चाहिए । इनके कृत्य देख कर स्त्रियों तथा बालकों पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।"

"बहुत ठीक । जितने पशु बस्तियों में रहते हों उन सबको पर्दे में रक्खा जाय । म्युनिसिपैलिटियों को ऐसा क़ानून बनाना चाहिए ।"

मैंने कहा—अच्छा यह तो एक प्रकार से प्रमाणित हो गया कि संसार में चारों ओर अश्लीलता ही अश्लीलता है ।

एक महोदय बोले—कैसे प्रमाणित हो गया ? मैं कहता हूँ कि अनेक बातें ऐसी हैं कि जिनमें अश्लीलता नहीं है ।

"प्रमाणित कीजिए ।"—मैंने कहा ।

"रोटी खाने में अश्लीलता नहीं है । पानी पीने में अश्लीलता नहीं है । ईश्वर-भजन में अश्लीलता नहीं है । देशभक्ति में अश्लीलता नहीं है । रोने में अश्लीलता नहीं है । खड़ी बोली की कविता में अश्लीलता नहीं है । ईसप की कहानियों में अश्लीलता नहीं है ।

वेदों में अश्लीलता नहीं है। संसार में भलाई ही भलाई है—बुराई कुछ भी नहीं—इस विचार में अश्लीलता नहीं है। बुरी बातों को बिल्ली के मल की तरह छिपाए रखने में अश्लीलता नहीं है।"

"अच्छा! तब तो ऐसी बहुत सी बातें निकल आईं जिनमें अश्लीलता नहीं है।"—मैंने कहा।

"यदि पता लगाया जाय तो अभी ऐसी बातें बहुत निकल सकती हैं जिनमें अश्लीलता नहीं है।"

"हाँ, एक और बात याद आई। अन्धे और बहरे बन कर बैठ जाने में भी अश्लीलता नहीं है।"

मैंने पूछा—और किसी को कुछ कहना है?

"अब किसी को कुछ कहना नहीं है। आप अपना निर्णय दें।"

मैंने कहा—भाइयो, ऊपर कही हुई जिन बातों में अश्लीलता नहीं है, मनुष्य को वही करना चाहिए, अन्य सब बातें छोड़ देनी चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो सब ओर अश्लीलता का ही साम्राज्य हो जायगा।

"परन्तु यह सम्भव नहीं कि केवल वे ही बातें की जायँ और सब बातें छोड़ दी जायँ।"

"यदि यह सम्भव नहीं तो अश्लीलता से बचना भी सम्भव नहीं।"

"एक प्रकार से सम्भव है।"—मैंने कहा।

"कैसे?"

"मनुष्य को पहाड़ की कन्दरा में जाकर तपस्या में लीन हो जाना चाहिए। तभी अश्लीलता से बचत हो सकती है।"—मेरे इस निर्णय को सबने मान लिया और शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। सम्पादक जी, आपकी इस सम्बन्ध में क्या राय है? लिखिएगा।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)
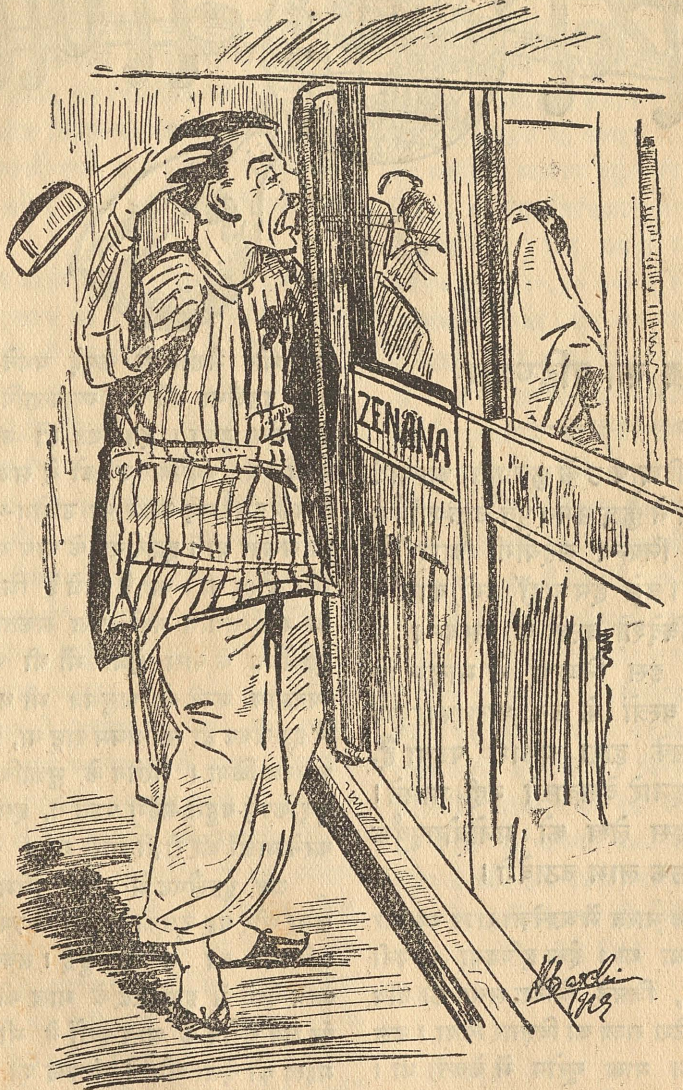
पुरुष-समाज (स्टेशन पर)

विदेशी वस्त्र का वहिष्कार

काशी राष्ट्रीय विद्यापीठ के कुलपति, आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने कुछ समय पूर्व उक्त शीर्षक से एक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध सहयोगी 'आज' में प्रकाशित कराया था। उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं। विदेशी वस्त्रों के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें इस निबन्ध से मालूम हो सकती हैं। विदेशी वस्त्रों के उन अन्धकारपूर्ण पहलुओं पर भी इसके द्वारा प्रकाश पड़ता है, जिन्हें आमतौर पर हमारे देशवासी नहीं जानते। हमारा विश्वास है, इस लेख को मनोयोगपूर्वक पढ़ कर 'चाँद' के पाठक लाभ उठावेंगे।

यह खुली बात है कि भारत में अङ्गरेज़ी राज्य व्यापार के लिए ही क़ायम हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारी कम्पनी थी, जिसने ब्रिटिश सत्ता की नींव भारत में रक्खी और ब्रिटिश राज्य का विस्तार किया। उस समय कम्पनी भारत का माल यूरोप में बेचती थी। इङ्गलैण्ड के जहाज़ हिन्दुस्तान से गरम मसाला, मोती, जवाहिरात इत्यादि ले जाते थे। उस समय भारतवासियों के लिए पर्याप्त कपड़ा हिन्दुस्तान में ही तैयार होता था। यही नहीं, यहाँ के बारीक कपड़े विलायत भी जाते थे और वहाँ के अमीर लोग उनको बड़े चाव से पहनते थे, पर जब इङ्गलैण्ड में उद्योगवाद का आरम्भ हुआ और मैशीन से कपड़े बनने लगे, तब भारत के प्रति इङ्गलैण्ड की जो व्यावसायिक नीति थी उसमें परिवर्त्तन हुआ। इङ्गलैण्ड ही उद्योगवाद के युग का प्रवर्त्तक था, क्योंकि उसको वे सब सुविधाएँ प्राप्त थीं जिनके द्वारा नए प्रकार का उद्योग-व्यवसाय उन्नतिशील हो सकता था। इङ्गलैण्ड के पास बहुतायत से कोयला और लोहा था। यह वे चीजें हैं जिनके बिना आजकल का कोई उद्योग नहीं चल सकता। इसके अतिरिक्त इङ्गलैण्ड के पास पूँजी भी थी और बड़े परिमाण में व्यवसाय करने का अनुभव भी था। इसीलिए यूरोप में इङ्गलैण्ड ही सर्व-प्रथम राष्ट्र था, जिसने उद्योगवाद का आरम्भ किया। मैशीन के मुक़ाबिले में करघे पर बने हुए कपड़े बहुत महँगे पड़ते थे, इसलिए करघों पर काम करने वालों की रोज़ी मारी गई।

जब इङ्गलैण्ड में प्रचुर परिमाण में कपड़ा बनने लगा और वह उसकी ज़रूरत से ज़्यादा हुआ तब उसको मण्डियों की तलाश हुई। सबसे पहले यूरोप के अन्य देशों में इङ्गलैण्ड के माल की खपत होने लगी; पर जब यूरोप के अन्य देशों ने भी उद्योग-व्यवसाय के महत्व को देखा और वे संरक्षण की नीति का अवलम्बन कर इङ्गलैण्ड के प्रहार से अपने देश के उद्योग-धन्धों की रक्षा करने में समर्थ हुए और स्वयं उद्योगवादी हो गए और उन देशों में ब्रिटिश माल का आना बहुत कम हो गया, तब इङ्गलैण्ड को अपने माल के लिए यूरोप के बाहर बाज़ार ढूँढ़ने की फ़िक्र हुई। हिन्दुस्तान ऐसा बड़ा मुल्क था जो अङ्गरेज़ी माल के लिए अच्छा

बाज़ार बन सकता था। इसलिए ऐसे उपाय किए गए जिसमें भारतवर्ष के वस्त्र का व्यवसाय नष्ट हो। इसीलिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने की सुगमता के लिए बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाई गईं और रेल निकलवाई गई। अङ्गरेजी शिक्षा ने शिक्षित वर्ग की रुचि को बदल दिया, वह अङ्गरेज़ी पोशाक पसन्द करने लगा। उस नवीन शिक्षा का यह भी फल हुआ कि लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। लोग ज़्यादा कपड़े का इस्तेमाल करने लगे। इस प्रकार विदेशी माल की माँग बढ़ने लगी।

यूरोपीय युद्ध के पहले तक अङ्गरेज़ सरकार की यही नीति रही कि हिन्दुस्तान का उद्योग-व्यवसाय न पनपे और वह अपने कपड़े की आवश्यकता के लिए लङ्काशायर और मैन्चेस्टर पर सदा निर्भर रहे। इसीलिए अहमदाबाद की देशी मिलों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया गया। बल्कि इस बात की चेष्टा रही कि इङ्गलैण्ड का कपड़ा किसी प्रकार देशी मिलों के कपड़े से महँगा न पड़े। भारत का काम केवल इतना ही रहा कि वह इङ्गलैण्ड को कच्चा माल देता रहे और इङ्गलैण्ड के बने माल को लेता रहे। पर यूरोपीय युद्ध के कारण विवश होकर बहुत सा माल हिन्दुस्तान में ही सरकार को तैयार कराना पड़ा और यह विचार हुआ कि यदि भारत के उद्योग-धन्धों को कुछ तरक्क़ी दी जाय तो किसी दूसरे महासमर के समय भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा में बहुत-कुछ समर्थ हो सकेगा। इसीलिए भारतवर्ष में एक इण्डस्ट्रियल कमीशन बैठाया गया और उसने इस बात की सिफ़ारिश की कि सरकार को भारत की औद्योगिक उन्नति में सहायक होना चाहिए। माण्टेगू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में एक स्थल पर यह कहा गया है कि यदि भारतवर्ष औद्योगिक राष्ट्र हो जाय तो उससे साम्राज्य की बड़ी पुष्टि हो। सन् १९२२ में फ़िस्कल कमीशन ने यह सिफ़ारिश की कि कुछ दर्जे तक भारत में संरक्षण-नीति का प्रयोग होना चाहिए। जहाँ तक भारत को आर्थिक हानि न हो वहाँ तक और देशों के माल की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत माल को तरजीह देना चाहिए और विदेशी पूँजी के आने में किसी प्रकार की रुकावट न होनी चाहिए। इस नई नीति से विदेशी महाजनों और व्यापारियों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। संरक्षण की नीति से लाभ उठाने के लिए कई नए विदेशी कारख़ाने हिन्दुस्तान में खुल गए।

इधर देश में स्वदेशी का आन्दोलन भी बढ़ रहा था; लोग विदेशी माल का बहिष्कार करने लगे। स्वदेशी कपड़ा भी अब अधिक परिमाण में तैयार होने लग गया था। लड़ाई के ज़माने में जापान को अपने व्यापार की उन्नति करने का अच्छा मौक़ा मिला। जापानी माल का भारत में आयात बहुत बढ़ गया। जहाँ सन् १९१० में २६,००० (छब्बीस हज़ार) गज़, १९१३ में ९०,००,००० (नब्बे लाख) गज़ कपड़ा जापान से आया था वहाँ १९२७ में ३३,००,००,००० (तैंतीस करोड़) गज़ कपड़ा जापान से आया। इन सब कारणों से इङ्गलैण्ड के कपड़े के व्यवसाय को धक्का पहुँचा। स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव से बचने के लिए अङ्गरेज़ व्यापारियों ने यह उचित समझा कि हिन्दुस्तान में ही पूँजी लगाएँ, कारख़ाने खोलें और अपना नाम भारत के कारख़ानों की सूची में दर्ज करा लें। इस प्रकार ख़रीदार को यह पता न चल सकेगा कि जिस कपड़े को वह ख़रीदता है वह किसी ऐसे कारख़ाने का बना हुआ है जिसमें अधिकतर अङ्गरेज़ों की पूँजी लगी है, जिसका प्रबन्ध भी अङ्गरेज़ों के ही हाथ है और जिसका मुनाफ़ा भी हिन्दुस्तान के बाहर ही ख़र्च होता है। सन् १९२३ में 'फ़िनान्शल न्यूज़' नामक समाचार-पत्र ने यह लिखा था कि वह समय शीघ्र आ रहा है जब राजनीतिक दृष्टि से जो विदेशी कम्पनियाँ इस समय भारत में कारबार कर रही हैं, यह उनके हित की बात होगी कि वह अपना नाम भारतवर्ष के रजिस्टर में दर्ज करा लें और इस प्रकार 'भारतीय' बन जायँ। युद्ध के बाद से, इङ्गलैण्ड की जो पूँजी भारत में लगी है, बहुत बढ़ गई है। नीचे लिखे अङ्कों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

			१० लाख पौण्ड में
सन् १९१९	...	...	१·४
,, १९२०	...	...	३·५
,, १९२१	...	...	२·६५

मोटे तौर से ऐसा अनुमान किया जाता है कि जो कम्पनियाँ काम कर रही हैं उनकी ८५ प्रतिशत पूँजी अङ्गरेज़ों की है। इसके अतिरिक्त भारत से इङ्गलैण्ड का

व्यापार भी अच्छा ख़ासा है। जो माल इङ्गलैण्ड से हिन्दुस्तान आता है उसमें दो की प्रधानता है—

(१) विलायती कपड़ा और सूत।

(२) लोहा, फ़ौलाद, मैशीन, रेलगाड़ी, इत्यादि।

इन सभी में कपड़े का प्रथम स्थान है। ब्रिटिश राजनीति में कपड़े और लोहे के व्यवसाय का बड़ा प्रभाव है और इनका भारत को अधीन रखने में स्वार्थ है। सन् १९२७-२८ में पैंसठ करोड़ सोलह लाख रुपयों का कपड़ा विदेश से आया था। विदेशी माल मुख्य रूप से पाँच बन्दरगाहों में आता है। कलकत्ता, बम्बई, कराची, रङ्गून और मद्रास। इसका ब्यौरा इस प्रकार था—

कलकत्ता—अट्ठाइस करोड़ इक्कीस लाख रुपया;

बम्बई—अट्ठारह करोड़ इकहत्तर लाख;

कराची—नौ करोड़ छ लाख;

रङ्गून—पाँच करोड़ साठ लाख;

मद्रास—तीन करोड़ अट्ठावन लाख;

इस प्रकार विदेश से आने वाले कपड़े का ४३ फ़ी सदी कलकत्ते के बन्दरगाह में आता है और यहाँ से उत्तर भारत में फैल जाता है।

जहाँ पहले थोड़े से स्पष्टवक्ता अङ्गरेज़ ही इस बात को स्वीकार करते थे कि हमने भारतवासियों के लाभ के लिए भारत को नहीं जीता है, बल्कि इङ्गलैण्ड के माल के लिए भारत को एक बड़ी मण्डी बनाने के लिए ही हिन्दुस्तान में अपनी हुकूमत क़ायम की है, वहाँ अब पिछले कुछ महीने में इङ्गलैण्ड के बहुत से समाचार-पत्रों और राजनीतिज्ञों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है, कि अङ्गरेज़ी हुकूमत भारतवासियों के लाभ के लिए नहीं है, बल्कि इङ्गलैण्ड के व्यापार और इङ्गलैण्ड की भारत में लगी हुई पूँजी की रक्षा के लिए है। जिस प्रकार द्विचक्र शासन चला कर कुछ भारतीयों को शासन-विधान में थोड़ा-बहुत अधिकार देकर प्रसन्न करने की चेष्टा की गई है, उसी प्रकार उद्योग-व्यवसाय के क्षेत्र में भी इस बात का प्रयत्न किया गया है कि ब्रिटिश प्रभुत्व को सुरक्षित रखते हुए भारत के व्यवसायियों को छोटा-मोटा साझीदार बना लिया जाय। यह नीति बहुत भयङ्कर है, क्योंकि इससे भारतीयों में ही एक ऐसा नया समुदाय बन जाता है जो विदेशी व्यवसाय का समर्थक हो। भविष्य में भी इसी नीति से काम लिया जायगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हिन्दुस्तानियों का हिस्सा कुछ बढ़ाया जा सकता है, पर अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व नहीं हटाया जा सकता। जब कभी इङ्गलैण्ड के स्वार्थ की बात आती है, तब भारत के स्वार्थ की सदा उपेक्षा की जाती है। टैरिफ़ बिल के सम्बन्ध में जो वादविवाद असेम्बली में हुआ, उससे गवर्नमेण्ट की नीति बिलकुल स्पष्ट हो गई।

थोड़े शब्दों में यदि कहा जाय तो कहना होगा कि ब्रिटिश साम्राज्य का उद्देश्य भारतवर्ष से आर्थिक लाभ प्राप्त करना है और यह लाभ पूँजी के सूद और माल के मुनाफ़े की शक्ल में ही अधिकतर होता है। यही साम्राज्यवाद का उद्देश्य है। यदि साम्राज्यवाद का अन्त करना है और भारत में पूर्ण स्वराज्य की स्थापना करना है, तो साम्राज्यवाद के उद्देश्य को विफलीभूत करना आवश्यक होगा। इसलिए प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करे। इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ युद्ध के पहले ७० फ़ी सदी कपड़ा इङ्गलैण्ड से आता था वहाँ अब इङ्गलैण्ड से ३१ फ़ी सदी ही आता है और भारतवर्ष में ४१ फ़ी सदी कपड़ा तैयार होता है, तिस पर भी देशी मिलों के कपड़े की पैदावार पर्याप्त नहीं है। इस कमी को पूरा करने के लिए खद्दर की पैदावार बढ़ाना आवश्यक है। कलकत्ते इत्यादि के थोक व्यापारियों को इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वे कम से कम एक वर्ष तक विदेशी कपड़े का कोई नया ऑर्डर न देंगे। प्रसन्नता की बात है कि अमृतसर और कानपुर के थोक व्यापारियों ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की है। आशा है, और जगहों के व्यापारी इनका अनुकरण करेंगे। जो व्यापारी कलकत्ते आदि बड़े-बड़े नगरों से थोक माल ख़रीदते हैं, उनको भी इस प्रकार की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। काशी के बहुत से थोक व्यापारियों ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर अपने देश-प्रेम का परिचय दिया है। आशा है, अन्य स्थानीय व्यापारी इसका अनुकरण करेंगे। ख़रीदारों को भी इस बात की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि वे भविष्य में केवल स्वदेशी वस्त्र का ही व्यवहार करेंगे। सब वर्ग और श्रेणी के लोगों को इस कार्य में सहयोग करना चाहिए। मुहल्ले-मुहल्ले विदेशी

(शेष मैटर २३१ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

मातृमन्दिर

मातृमन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत मई मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृमन्दिर-कोष में ९८२ रु० ८ पाई नक़द प्राप्त हुए थे। विगत अप्रैल तथा मई मास में ४०) नक़द और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

१—एक गुप्तदान ... ... १०)

२—श्रीमती सावित्री देवी मार्फ़त श्रीयुत एस० आर० वर्मा, एम० ए०, ई० ए० सी०, पो० समराला (लुधियाना) ... ... ५)

३—कुँवर प्रतापबहादुर, मार्फ़त कुँवर लालबहादुर साहब, डिप्टी कलेक्टर, गोंडा ... ... १०)

४—श्रीमती वी० एन० वर्मा, डी० टी० एस० बी० एस० रेलवे, बीकानेर ... ... १५)

योग ४०)

इस प्रकार अब १०२२) रु० ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। अब देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे शीघ्र ही और भी सहायता भेज कर हमारा हाथ बटावें।

* * *

स्वीकृति

गत मास के अङ्क में प्रकाशित किया जा चुका है कि "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" वाले मुक़द्दमे तथा अन्य मुक़द्दमों के ख़र्च में सहायता देने के लिए जो अपील प्रकाशित हुई थी, उसके उत्तर में ता० १२ अप्रैल से २५ अप्रैल तक हमें ४६) रु० मिले थे, अब २५ अप्रैल से २५ मई तक २६) रु० और निम्न-लिखित सज्जनों की सहायता प्राप्त हुई है, जिसे हम सधन्यवाद प्रकाशित करते हैं :—

१—श्रीयुत हीरालाल जी, स्टोरकीपर यू० एस० क्लब लिमिटेड, शिमला ... ... ५)

२—श्रीयुत रामलौटनप्रसाद वर्मा, अध्यापक स्टेट स्कूल, गङ्गानगर, बीकानेर ... ... २)

३—एक गुप्तदान १०)

४—मेसर्स गनेसप्रसाद बसन्तलाल, पो० डौंकिनगञ्ज (मिर्ज़ापुर) ... ... १)

५—श्रीयुत मङ्गलदास पो० डौंकिनगञ्ज (मिर्ज़ापुर) ... ... १)

६—श्रीमती सत्यवती देवी, मार्फ़त डॉक्टर लालबहादुर एल० एम० पी०, ६६ चेतराम स्ट्रीट, पो० गुलाबनगर (बरेली) ... ५)

७—श्रीयुत टी० एस० गुप्त, एस० पी० डब्ल्यू० आई०, जी० आई० पी० रेलवे, जेरूवाखेरा (सागर) ... ... २)

पिछले मास के ... ... ४६)

कुल जोड़ ७२)

* * *

महिलाओं का जुलूस

गत सप्ताह जालन्धर में शराब की दूकानों पर धरना देते हुए प्रायः तीन दर्जन स्वयंसेवक गिरफ़्तार किए गए। गिरफ़्तारी पुलिस ऐक्ट की ३४ वीं धारा के अनुसार हुई। इसके विरोध में वहाँ की बहुसंख्यक महिलाओं ने एक जुलूस निकाला। स्वदेशी गीत गाते तथा शराब के बहिष्कार का आग्रह करते हुए उस जुलूस ने शहर भर में भ्रमण किया।

* * *

१४४ के विरोध में

समाचार-पत्रों की पाठक-पाठिकाओं से यह बात छिपी न होगी कि पिछले दिनों दिल्ली में दङ्गा हो गया था। दङ्गे के बाद वहाँ के अधिकारियों ने १४४ दफ़ा जारी कर दिया। इस दफ़ा के अनुसार वहाँ न कोई सभा की जा सकती थी, न कोई व्याख्यान दिया जा सकता था और न अधिक संख्या में मिल कर लोग घर के बाहर ही निकल सकते थे। सबसे पहले तत्स्थानीय ६ स्वयंसेवकों ने इस दफ़ा को तोड़ा और वे गिरफ़्तार कर लिए गए। उसके बाद वहाँ की स्त्रियों ने एक जुलूस निकाला और खुली तौर से यह दफ़ा तोड़ा। दिल्ली की प्रमुख कार्यकर्त्री श्रीमती सत्यवती देवी जी गिरफ़्तार कर ली गई हैं। आप स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की पोती और श्रीयुत धनीरामजी एडवोकेट की विदुषी कन्या हैं। आपको ६ मास की क़ैद की सज़ा हुई है।

* * *

ठाकुर जी ने खद्दर पहना

विगत २९ मई को स्थानीय वेणीमाधव-मन्दिर (दारागञ्ज) के अधिकारियों ने वेणीमाधव जी की मूर्ति को खद्दर परिधान कराया। प्रातःकाल बड़े समारोह के साथ यह उत्सव सम्पन्न हुआ। शहर के बहुतेरे गण्य-मान्य व्यक्ति निमन्त्रित किए गए थे। सन्ध्या को एक आम सभा भी हुई। वेणीमाधव जी प्रयाग के सर्वश्रेष्ठ और प्रथम पूज्य देवता माने जाते हैं। प्रति वर्ष माघ महीने में देश-देश के सहस्रों यात्री यहाँ आकर और गङ्गा-स्नान तथा वेणीमाधव का दर्शन करके अपना जीवन सफल समझते हैं।

* * *

विलायत में हिन्दू-नारी का व्याख्यान

मैनचेस्टर स्थित डीन्सगेट के फ़र्नले हॉल में श्रीमती ए० के० विल्किन्सन की अध्यक्षता में पिछले सप्ताह महिलाओं की एक विराट सभा हुई थी। सभा 'भारतीय स्त्रियों की अवस्था' पर विचार करने के लिए हुई थी। प्रधान व्याख्याता मैसूर की श्रीमती इन्दिरा देवी थीं।

अपने प्रभावशाली और ओजस्वी व्याख्यान में श्रीमती इन्दिरा ने भारतीय स्त्रियों की अवस्था का वर्णन करते हुए कहा कि भारतवर्ष की स्त्रियाँ इस समय प्रगतिशीला हैं। उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था देश में हो रही है। वे डॉक्टरी, वकालत, नर्स और अध्यापिका के पदों की ओर उचित दिलचस्पी लेने लगी हैं। साहित्यिक कार्यों में भी उनकी रुचि बढ़ रही है। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कन्याओं के लिए पाठशालाएँ और कॉलेज खुल गए हैं और खुल रहे हैं। देशवासी विधवाओं के प्रति अच्छा व्यवहार करने के लिए प्रयत्नशील हैं। बाल-विवाह की प्रथा रोकने के लिए वहाँ निरन्तर उद्योग हो रहा है। अनेक प्रान्तों में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार भी मिल गए हैं और वे बड़े-बड़े ओहदों पर भी नियुक्त होने लगी हैं। कुछ समय पूर्व जब बाल-विवाह के विरोध में एक क़ानून भारत-सरकार ने पास किया था तो जनता की उसके साथ पूर्ण सहानुभूति थी, आदि।

सभानेत्री श्रीमती ए० के० विल्किन्सन ने कहा कि मुझे हर्ष है कि भारतवर्ष की स्त्रियाँ उन्नत हो रही हैं। हमारी आशा है कि शीघ्र ही भारतवर्ष ब्रिटिश राज्य का एक स्वायत्त शासित देश हो जायगा।

श्रीमती मोसेस बैरिज़ ने कहा कि भारतीय स्त्रियाँ जब अपनी उन्नति की समस्या हल करने के लिए स्वयं उद्यत हो गई हैं तो अवश्य ही उन्हें सफलता मिलेगी। श्रीमती बैरिज़ ने भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए सभा में एक प्रस्ताव पेश किया, जिसके द्वारा—उनका विचार था—भारतीय स्त्रियाँ अपने मतों और विचारों में परिवर्तन कर सकेंगी, जैसा कि स्वतन्त्र भारत की स्त्रियाँ ही कर सकती हैं।

* * *

'सरदार' की कन्या

सरदार वल्लभ भाई पटेल की विदुषी कन्या श्रीमती मणीबेन पटेल ने, श्रीमती कस्तूरीबाई गाँधी द्वारा निर्मित स्वयं-सेविकाओं के दल में नाम लिखाया है। वे जलालपुर ताल्लुक़ा में सत्याग्रह-सम्बन्धी कार्य करेंगी।

* * *

अछूतों का मन्दिर-प्रवेश

ढाका के मुन्शीगञ्ज नामक स्थान में काली जी का एक मन्दिर है। मन्दिर के अधिकारियों ने अछूतों को मन्दिर में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है। इसी के अनुसार कई दिन पहले बड़े समारोह के साथ अछूतों ने मन्दिर में प्रवेश किया और काली जी की पूजा की। मन्दिर-प्रवेश के इस प्रथम उत्सव में शामिल होने के लिए पूर्वी बङ्गाल के भिन्न-भिन्न स्थानों से बहुत से अछूत एकत्रित हुए थे।

* * *

(२२८ पृष्ठ का शेषांश)

वस्त्र वहिष्कार के लिए सभा कर और स्वदेशी की प्रतिज्ञा लेकर, लोगों को विदेशी वस्त्र के वहिष्कार के कार्य को बहुत शीघ्र ही सफल करना चाहिए। आशा है, देश-वासी इस नम्र प्रार्थना पर ध्यान देंगे। शीघ्र ही स्वयं-सेवक घर-घर घूम कर स्वदेशी का प्रचार करेंगे। आशा है, शहर के प्रभावशाली लोग इस कार्य में स्वयंसेवकों की सहायता करेंगे। कपड़े के दूकानदारों से भी प्रार्थना है कि वे इस आन्दोलन से अनुचित लाभ उठा कर माल की क़ीमत न बढ़ा दें। इस समय सबको थोड़ा-बहुत स्वार्थ का त्याग करना ही होगा। लोगों को कपड़े की आवश्यकता को कुछ दिनों के लिए कम भी करना होगा। इससे कपड़े की निर्ख़ भी नहीं बढ़ सकेगी।

कपड़ा ख़रीदते हुए इस बात की जाँच कर लेना चाहिए कि किस मिल का बना हुआ कपड़ा है। कुछ मिलें ऐसी भी हैं जिनके मालिक अङ्गरेज़ हैं और जिनका प्रबन्ध अङ्गरेज़ों के हाथ में है, ऐसी मिलों के कपड़ों का उसी प्रकार वहिष्कार होना चाहिए, जिस प्रकार विदेशी वस्त्र का।

* * *

कॉङ्ग्रेस के कार्यक्रम में स्त्रियाँ

हाल ही में बाराबङ्की में स्त्रियों की एक विराट सभा हुई थी, जिसमें लखनऊ की श्रीमती मित्रा और श्रीमती भटनागर ने जोशीले व्याख्यान दिए। सभा में स्त्रियों को भारतीय स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने के लिए विशेष रूप से उत्साहित किया गया और श्रीमती सरोजिनी नायडू की गिरफ़्तारी पर हर्ष प्रकट किया गया। वहाँ विदेशी कपड़ों की दूकानों पर स्त्रियाँ धरना भी दे रही हैं।

* * *

दिल्ली का चूड़ी-सङ्घ

दिल्ली की अनेक प्रतिष्ठित महिलाओं ने "चूड़ी-सङ्घ" नाम की एक संस्था क़ायम की है। अब तक प्रायः १०० से अधिक स्त्रियाँ इस संस्था की सदस्या हो चुकी हैं। ये विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देती हैं और जो लोग जबरन् विलायती वस्त्र ख़रीदना चाहते हैं, उन्हें कपड़े ख़रीदने के पहिले ये स्त्रियाँ एक जोड़ी चूड़ियाँ नज़र करती हैं। उनका कहना है कि यदि तुममें विदेशी वस्त्रों के छोड़ देने तक का साहस नहीं है, तो ये चूड़ियाँ पहन कर और घूँघट काढ़ कर घर में बैठो!

* * *

श्रीमती गाँधी का उद्योग

महात्मा जी की आज्ञा के अनुसार श्रीमती गाँधी, गुजरात में शराब और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का काम बड़े उत्साह और लगन के साथ कर रही हैं। उनके साथ कुमारी मीठूबेन पेटिट, कुमारी मणिबेन पटेल, श्री० जमुनालाल जी बजाज़ की धर्मपत्नी आदि अनेक सम्भ्रान्त महिलाएँ भी काम कर रही हैं।

* * *

एक सत्याग्रही कुमारी

गोपीगञ्ज (बनारस स्टेट) के रईस श्री० जङ्गबहादुर-सिंह की भतीजी श्रीमती कृष्णाकुमारी साबरमती आश्रम में गई हैं और वहाँ आपने सत्याग्रहियों में अपना नाम लिखवाया है। आपकी अवस्था अभी केवल १६ साल की है। आश्रम में आपको शिक्षा दी जा रही है।

* * *

महिला-दिवस

गत २३ मई को स्थानीय पुरुषोत्तमदास पार्क में पण्डित मोतीलाल नेहरू की धर्मपत्नी श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू के सभा-नेतृत्व में महिलाओं की एक विराट सभा हुई। यह सभा श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति और श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय की गिरफ़्तारी के सम्बन्ध में हुई थी। श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू और श्रीमती उमा नेहरू के अतिरिक्त और भी कई वक्ताओं ने ओजस्वी भाषण दिए और वर्तमान आन्दोलन में स्त्रियों को समान रूप से भाग लेने के लिए उत्साहित किया। श्रीमती स्वरूपरानी जी ने कहा कि अब स्त्रियों को परदे से निकल आना चाहिए और अपने आपको जेलों के निवास के योग्य बनाना चाहिए। जेल हमारे लिए सबसे बड़े पुण्य-तीर्थ हैं। भगवान श्रीकृष्ण का जन्म जेल ही में तो हुआ था!

* * *

स्त्रियों ने आज्ञा भङ्ग की

श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य महिला नेताओं की गिरफ़्तारी के सम्बन्ध में कलकत्ता के श्रद्धानन्द पार्क में महिलाओं की एक सभा हुई थी। सभानेत्री थीं स्वर्गीय देशबन्धु दास की बहिन श्रीमती उर्मिला देवी। जिस समय सभा की कार्रवाही प्रारम्भ हुई, उसके थोड़ी ही देर बाद असिस्टेण्ट पुलीस कमिश्नर ने श्रीमती उर्मिला देवी को एक आज्ञापत्र दिखाया जिसमें उस सभा को बन्द करने की आज्ञा दी गई थी। स्त्रियों ने उसे भङ्ग करना ही निश्चय किया और सभा समाप्त होने पर एक जुलूस निकाला। पुलीस ने जुलूस पर लाठियों से आक्रमण किया, जिससे चार स्वयंसेवक घायल हुए। एक स्वयंसेवक गिरफ़्तार भी किया गया।

* * *

स्त्रियों ने नमक-क़ानून तोड़ा

बनारस की अस्सी घाट की पुलीस-चौकी के सामने श्रीमती लीलावती देवी और श्रीमती सावित्री देवी के नायकत्व में २९ स्त्रियों ने नमक बनाया और बेचा। एकत्रित जनता में स्त्रियों की काफ़ी संख्या थी। इस सम्बन्ध का चित्र अन्यत्र देखिए।

मद्रासी महिला को एक वर्ष

आर्काट की सत्याग्रही डिक्टेटर श्रीमती दुर्गाबाई अन्य कई सत्याग्रहियों के साथ पकड़ ली गईं। विचार के लिए उन लोगों की पेशी तत्स्थानीय डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के यहाँ हुई। मैजिस्ट्रेट ने भारतीय पुलीस क़ानून की ११७वीं धारा और नमक-क़ानून की ७४वीं धारा के अनुसार ९ महीने की सादी क़ैद की सज़ा उन्हें दी। इसके अतिरिक्त १४४ दफ़ा तोड़ने के अपराध में ३ महीने की और भी सज़ा उन्हें हुई। दोनों क़ैद अलग-अलग चलेंगी। मैजिस्ट्रेट ने उन्हें ए क्लास के क़ैदियों में रखने का हुक्म दिया है।

* * *

प्रयाग में स्त्रियों की विराट सभा

स्थानीय मुन्शी रामप्रसाद के बाग़ में स्त्रियों की एक विराट सभा श्रीमती सरोजिनी नायडू के गिरफ़्तार होने के उपलक्ष में हुई, जिसकी सभानेत्री श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू थीं। सभा में सभानेत्री के अतिरिक्त श्रीमती कमला नेहरू और सुभद्रा देवी के भी व्याख्यान हुए। इन लोगों ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में स्त्रियों से स्वयं-सेविकाओं में सम्मिलित होने तथा खद्दर पहनने की अपील की। कहते हैं कि जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित व्याख्यान देते हुए देश के लिए अनेक विपत्तियों को मोल लेने वाले नेताओं की बातें उपस्थित जनता को समझा रही थीं तो बहुत सी स्त्रियाँ रो पड़ी थीं!

निश्चय हुआ कि शीघ्र ही एक दूसरी महिला-सभा करके स्त्रियों को स्वयं-सेविकाओं में भर्ती किया जायगा और इस आन्दोलन को जाग्रत रखने के लिए प्रति सप्ताह स्त्रियों की एक सभा हुआ करेगी।

बहुत सी स्त्रियों ने शुद्ध खद्दर पहनने की प्रतिज्ञा की।

* * *

एक रानी का साहस

हरदोई ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी ने सत्याग्रह संग्राम के सञ्चालन के लिए श्रीमती रानी विद्यादेवी जी को निर्वाचित किया है। आपने सत्याग्रही जत्थे का सञ्चालन करना स्वीकार कर लिया है।

Regd. No. A—1154

छप गई !

व्यङ्ग - - छप गई !!

चित्रावली

छपाई सुन्दर आर्ट पेपर पर हुई है तब भी प्रचार की दृष्टि से मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है !

प्रस्तुत चित्रावली भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का जनाज़ा है ! एक-एक चित्र देखने वाले के दिल पर चोट करने वाले हैं। जो स्वयं किसी कुरीति का शिकार है वह चित्र देखते ही भेंप जायगा, जो नहीं है वह भविष्य के लिए सावधान हो जायगा। प्रत्येक स्त्री, पुरुष तथा बच्चे को इसका अवलोकन करना चाहिए। चित्रों के नीचे एक से एक चुटीली पंक्तियाँ भी आपको मिलगी।

एकरङ्गे, दुरङ्गे और तिरङ्गे

चित्रों की संख्या लगभग

२००

छपाई, सफ़ाई और जिल्द दर्शनीय और मूल्य

?

लागत मात्र केवल ४) रु० स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से ३) रु० !! एक प्रति शीघ्र मँगा लीजिए, फिर ऐसी सुन्दर और सस्ती चीज़ मिलेगी नहीं !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय,
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Printed and Published by SHUKDEVA RCY—Editor at the Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok, Allahabad.